स्वर्ण जयन्ती प्रकाशन 2013

BIHAR YOGA

देवी

स्वामी शिवानन्द सरस्वती एवं
स्वामी सत्यानन्द सरस्वती की शिक्षाओं से

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत


देवी

देवी



WORLD YOGA CONVENTION 2013
GANGA DARSHAN, MUNGER, BIHAR, INDIA
23rd–27th October 2013

देवी

स्वामी शिवानन्द सरस्वती एवं
स्वामी सत्यानन्द सरस्वती की शिक्षाओं से



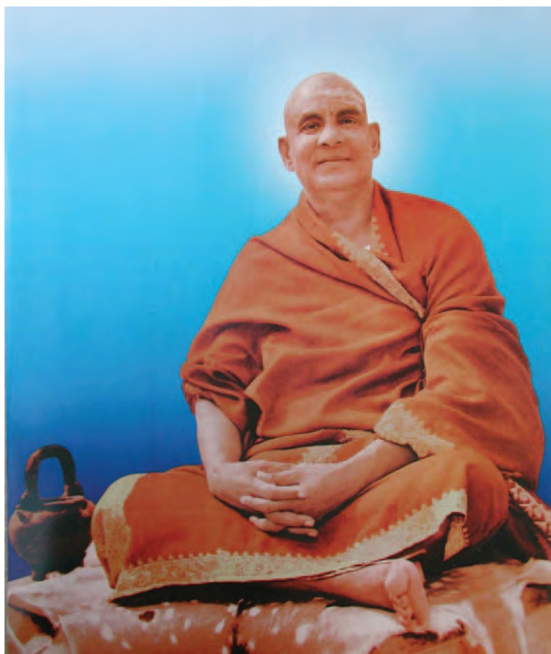
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

शिवानन्द मठ द्वारा *प्रथम संस्करण 2005*
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट द्वारा *द्वितीय संस्करण 2006*
पुनर्मुद्रण 2007, 2008, 2009
तृतीय संस्करण 2013

ISBN: 978-81-86336-48-9

प्रकाशक एवं वितरक—योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट,
मुंगेर, बिहार, भारत
मुद्रक—थॉमसन प्रेस (इंडिया) लिमिटेड,
नई दिल्ली

वेबसाइट: www.biharyoga.net
www.rikhiapeeth.net



सविनय समर्पण

स्वामी शिवानन्द सरस्वती के चरणों में
जिन्होंने स्वामी सत्यानन्द सरस्वती को योग के रहस्यों की शिक्षा दी



नमो नारायण

योगविद्या भारतवर्ष की सबसे प्राचीन संस्कृति और जीवन-पद्धति है तथा इसी विद्या के बल पर भारतवासी प्राचीनकाल में सुखी, समृद्ध और स्वस्थ जीवन बिताते थे। जब से भारत में योग विद्या का ह्रास हुआ, तभी से भारतवासी गरीब, दुःखी और अस्वस्थ हैं। पूजा-पाठ, धर्म-कर्म से शान्ति मिलती है और योगाभ्यास से धन-धान्य, समृद्धि और स्वास्थ्य। भारत में सुख, समृद्धि, शक्ति और स्वास्थ्य के लिए हर व्यक्ति को योगाभ्यास करना चाहिए।

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती
रिखियापीठ, 2005

अनुक्रमणिका

देवी

स्वामी शिवानन्द सरस्वती की शिक्षाओं से



माँ से प्रार्थना



सभी प्राणियों में दया, सुन्दरता एवं बुद्धि के रूप में स्थित हे देवी माँ, तुझे प्रणाम! भगवान शिव की अर्द्धांगिनी, हे प्रेममयी माँ, प्रणाम! हे माँ पार्वती! तुम लक्ष्मी हो, सरस्वती हो; काली, दुर्गा और कुण्डलिनी भी तुम ही हो। तुम सभी शक्तियों की प्रतीक हो। तुम पराशक्ति हो; सभी रूपों में तुम ही समायी हुई हो और सबका एकमात्र आश्रय तुम ही हो। यह संसार तुम्हारे ही तीन गुणों की लीला है। मैं कैसे तुम्हारी स्तुति कर सकता हूँ? तुम्हारी महिमा और ऐश्वर्य का वर्णन नहीं किया जा सकता। हे प्रेममयी माँ! मेरी रक्षा करो, मुझे रास्ता दिखाओ।

हे करुणामयी माँ! मैं तुझे नमन करता हूँ। तुम ही मेरा उद्धार करने वाली और एकमात्र आधार हो। तुम मेरे जीवन का लक्ष्य हो। तुम मुझे रास्ता दिखाने वाली और मेरे सभी दु:खों, कष्टों और परेशानियों को दूर करने वाली हो। तुम शुभ स्वरूप हो। पूरी सृष्टि के कण-कण में तुम ही हो और सारी सृष्टि तुझमें ही समाई हुई है। तुम सभी गुणों की खान हो। मेरी रक्षा करो। मैं बार-बार तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

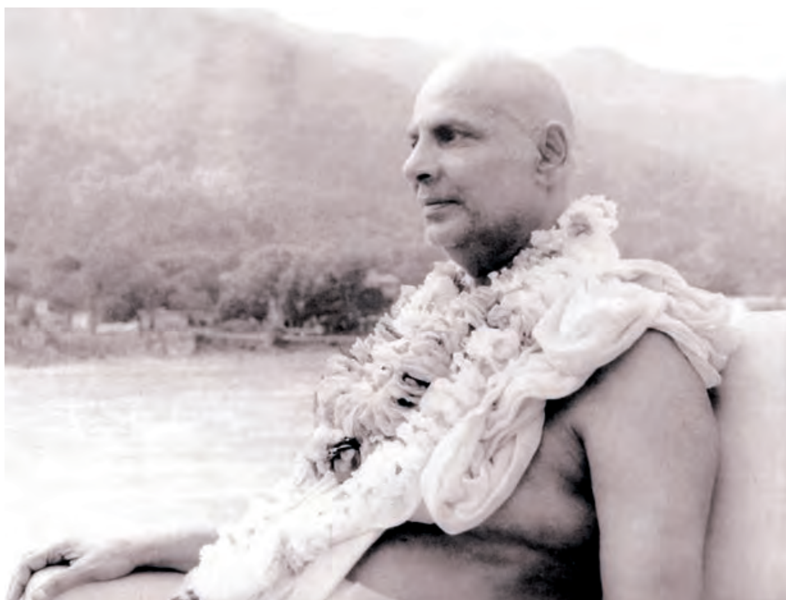
हे महिमामयी माँ! तुझे नमस्कार है। सभी नारियाँ तेरा ही रूप हैं। मन, बुद्धि, अहंकार, शरीर, प्राण और इन्द्रियाँ, सब तेरे ही रूप हैं। तुम ही परा शक्ति और अपरा प्रकृति हो। बिजली, चुम्बकीय शक्ति, बल, ऊर्जा, शक्ति और इच्छा – सब तुम ही हो। सभी रूप तेरे ही रूप हैं। सृष्टि का रहस्य मुझ पर प्रकट करो, मुझे दिव्य ज्ञान प्रदान करो।

हे प्रेममयी माँ! तुम आदि शक्ति हो। तुम्हारे दो रूप हैं – रौद्र और सौम्य। तुम ही विनम्रता, सौम्यता, संकोचशीलता, उदारता, साहस, सहिष्णुता और धीरता हो। भक्तों के दिलों में विश्वास, सज्जन पुरुषों में उदारता, योद्धाओं में शौर्य तथा व्याघ्र में उग्रता तुम ही हो। मुझे मन और इन्द्रियों को नियंत्रित करने का सामर्थ्य दो। मुझे इस योग्य बनाओ कि मैं तुममें स्थित हो सकूँ। तुम्हारे चरणों में नमन!

हे सर्वश्रेष्ठ माँ! मुझे समदृष्टि और शान्तचित्त अवस्था कब प्राप्त होगी? कब मैं अहिंसा, सत्य और ब्रह्मचर्य में स्थित हो पाऊँगा? कब मैं तुम्हारे विश्व-रूप का दर्शन कर पाऊँगा? कब मुझे गहन स्थायी शान्ति और शाश्वत आनन्द की प्राप्ति होगी? कब मुझे गहरे ध्यान एवं समाधि की अवस्था प्राप्त होगी?

हे तेजस्वी माँ! मैंने कोई आध्यात्मिक साधना या सेवा, परोपकार, जप और ध्यान या पूजा नहीं की है। मैंने धर्मशास्त्रों का भी अध्ययन नहीं किया है। मुझमें न तो विवेक है, न वैराग्य। न मुझमें शुद्धता है और न ही मुक्ति के लिए तीव्र इच्छा। तुम ही मेरी एकमात्र शरणदात्री हो, आश्रय हो। तुम्हारे चरणों में मेरा मूक नमन! अज्ञान के अन्धकार को दूर करो।

हे दयामयी माँ! तुझे साष्टांग प्रणाम। तुम कहाँ हो? मेरा त्याग मत करो। मैं तुम्हारी ही संतान हूँ। मुझे निर्भयता और आनन्द की दुनिया में ले चलो। कब मैं अपने नेत्रों से तुम्हारे चरण कमलों के दर्शन कर सकूँगा? तुम दया का ऐसा सागर हो, जिसकी कोई सीमा नहीं है। जब पारस लोहे को सोना बना सकता है और गंगा अशुद्ध जल को पावन बना सकती है, तो हे देवी माँ, क्या तुम मेरी आत्मा को पावन नहीं बना सकती? हे माँ! मैं हमेशा तुम्हारा ही नाम जपूँ!



देवी परा-शक्ति या परम सत्ता की शक्ति है। वह ब्रह्माण्ड की रचयिता है। वह सारे संसार की माँ है। दुर्गा, काली, भगवती, भवानी, अम्बा, अम्बिका, जगदम्बा, कामेश्वरी, गंगा, उमा, चण्डी, चामुण्डा, ललिता, गौरी, कुण्डलिनी, तारा, राजेश्वरी, त्रिपुर सुन्दरी, आदि सब उसके ही रूप हैं। नवरात्रि के समय दुर्गा, लक्ष्मी और सरस्वती के रूप में उनकी पूजा होती है।

देवी या शक्ति सबकी माँ है। सज्जन हो या दुर्जन, अमीर हो या गरीब, सन्त हो या पापी – सभी उसकी सन्तान हैं। वह प्रकृति की माँ है। वह स्वयं प्रकृति ही है। सारा विश्व उसकी काया है। पर्वत उसकी अस्थियाँ, नदियाँ उसकी नसें और सागर उसका पेट है। सूर्य और चन्द्रमा उसके नेत्र, वायु उसकी श्वास तथा अग्नि उसका मुख है। इस संसार को चलाने वाली वही है।

* * *

प्रतीक रूप में शक्ति स्त्री है, परन्तु वस्तुतः वह न तो पुरुष ही है, न स्त्री। वह केवल एक शक्ति है, जो अपने आपको विभिन्न रूपों में प्रकट करती है। माँ सृजन करने वाली सत्ता है। वह ब्रह्माण्डीय ऊर्जा की प्रतीक है। ऊर्जा सभी पदार्थों का आधार तथा आत्मा का प्राण है। ऊर्जा और आत्मा को एक-दूसरे से

अलग नहीं किया जा सकता, और वस्तुत: दोनों एक ही हैं। पाँचों तत्त्वों और उनके विभिन्न संयोगों के रूप में ही माँ स्वयं को बाह्य रूप से प्रकट करती है। बुद्धि, विवेक, मानसिक शक्ति और इच्छा शक्ति उसके आन्तरिक स्वरूप हैं। मानवता उसका दृश्य रूप है।

वह मूलाधार चक्र में कुण्डलिनी शक्ति के रूप में सोई हुई है। वह ब्रह्माण्ड के जीवन का केन्द्र है। वह सभी प्राणियों की मुख्य जीवनी शक्ति है। वह सुषुम्ना नाड़ी और नसों के माध्यम से शरीर को जीवन प्रदान करती है। वह शरीर में रक्त का संचार करती है। वह अपनी ऊर्जा से समस्त ब्रह्माण्ड को जीवन प्रदान करती है। सूर्य की ऊर्जा, फूलों की खुशबू, प्रकृति का सौन्दर्य, वेदमाता गायत्री, इन्द्रधनुष के रंग, मन की शक्ति, होमियोपैथी दवाईयों की स्वास्थ्य प्रदान करने वाली शक्ति, ऋषियों की इच्छा-शक्ति और विचार-शक्ति, भक्तों की श्रद्धा, योगियों का संयम और समाधि वह ही है। विवेक, शान्ति, वासना, क्रोध, लोभ, अहंकार और अभिमान, सभी उसके ही रूप हैं। उसके अनन्त रूप हैं।

* * *

भगवान को शिव के रूप में देखा जाता है और उनकी शक्ति को उनकी अर्द्धांगिनी – शक्ति, दुर्गा या काली के रूप में देखा जाता है। माँ दुर्गा भगवान शिव की शक्ति हैं। दुर्गा के बिना शिव क्रियाहीन हैं, और शिव के बिना दुर्गा का कोई अस्तित्व नहीं है। शिव दुर्गा की आत्मा हैं। दुर्गा और शिव एक ही हैं। शिव केवल मूक द्रष्टा हैं। वे अचल, निष्क्रिय एवं सर्वव्यापी हैं। वे माया से परे हैं। दुर्गा ही सब कुछ करती हैं। शिव सर्वशक्तिमान् हैं। वे विशुद्ध चेतना हैं। शक्ति क्रियाशील है। सर्वव्यापी परमात्मा की ऊर्जा या उनका गतिशील स्वरूप शक्ति ही है। शक्ति ऊर्जा का मूर्त्तरूप है। शक्ति विशुद्ध चेतना में छिपी हुई ऊर्जा है।

ईश्वर में शक्ति विद्यमान है। जिस प्रकार आप अग्नि से ताप को अलग नहीं कर सकते, उसी प्रकार आप शक्ति को ईश्वर से अलग नहीं कर सकते। शिव एवं शक्ति एक ही हैं। शिव हमेशा शक्ति के साथ ही रहते हैं। उनको एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। दुर्गा, पार्वती या काली की पूजा भगवान शिव की ही पूजा है।

* * *



सभ्यता के आरम्भ से ही शाश्वत चेतना का प्रतीक देवी माँ को ही माना गया है। जब आदि मानव मातृ-प्रधान समाज में रहता था, तब से ही देवी माँ की पूजा होती रही है। बाद में, जैसे-जैसे सभ्यता ने विकास किया, मातृ-प्रधान व्यवस्था धीरे-धीरे कमजोर पड़ने लगी और पिता को परिवार का मुखिया और अधिकृत निर्णायक माना जाने लगा, जिससे परिवार के सभी सदस्य सलाह और अनुमति लेने लगे।

परिणामस्वरूप ईश्वर का रूप भी बदल गया और उनको पिता-रूप में देखा जाने लगा। किन्तु इसके साथ ही माँ की उपासना भी जारी रही, क्योंकि यह ईश्वर की एक अस्पष्ट, निराकार, अलौकिक कल्पना से कहीं अधिक आसानी से समझ में आने वाला, घनिष्ठ, भावनात्मक और सरल स्वरूप था। बाद में ईश्वर के मातृ और पितृ स्वरूपों के बीच एक प्रेमपूर्ण सामञ्जस्य का विकास किया गया और सीता और राम, या राधा और कृष्ण, दोनों की एक साथ उपासना की जाने लगी।

* * *

हे महिमामयी माँ! तेरे चरणों में प्रणाम। तेरी कृपा के बिना कोई आध्यात्मिक साधना में सफल नहीं हो सकता और मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता।

हे करुणामयी माँ! तुम दयासागर हो। मुझे आशीर्वाद दो। यदि तुम मुझ पर थोड़ी दया कर दोगी, तो क्या तुम्हारा सागर सूख जाएगा?

हे मेरी प्यारी माँ! मुझे रास्ता दिखाओ। मेरी रक्षा करो। मुझे बचाओ। मैं तुम्हारी संतान हूँ।

* * *

देवी का सम्बन्ध किसी धर्म, समूह या सम्प्रदाय से नहीं है। देवी भगवान की चैतन्य शक्ति है। इसे कभी भूलना नहीं। देवी, शक्ति आदि शब्द तथा इनसे सम्बन्धित अन्य स्वरूप ईश्वर को मानव के ज्ञान और समझ की सीमा में लाने के लिए हैं।

भगवद्गीता में श्री कृष्ण कहते हैं, 'यह शक्ति केवल मेरी निम्न प्रकृति है; इसके ऊपर मेरी उच्च प्रकृति, मूल शक्ति या जीवनी-शक्ति है, जो इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का पालन-पोषण करती है।' उपनिषद् में कहा गया है, 'ईश्वर की सर्वोच्च शक्ति, परा शक्ति ईश्वर का स्वरूप है जो ज्ञान, सामर्थ्य एवं क्रिया के रूप में प्रकट होती है।'

वस्तुत: ब्रह्माण्ड के सभी प्राणी शक्ति के उपासक हैं, क्योंकि ऐसा कोई भी नहीं है, जो किसी-न-किसी रूप में शक्ति की कामना या उससे प्रेम न करता हो। वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिया है कि प्रत्येक वस्तु कभी नष्ट न होने वाली विशुद्ध ऊर्जा है। यह ऊर्जा दैवी शक्ति का ही एक स्वरूप है, जो सृष्टि के सभी रूपों में स्थित है।

* * *

शक्ति के कारण ही हम जीवित हैं और इस संसार में हमारा अस्तित्व है। इस संसार में बच्चे की सभी आवश्यकताएँ माँ ही पूरी करती है। बच्चे के भरण-पोषण, विकास और उन्नति का ख्याल माँ ही रखती है। इसी प्रकार प्राणी की सभी आवश्यकताओं और इस संसार में उसके क्रियाकलापों तथा इन सबके लिये आवश्यक ऊर्जा की पूर्ति शक्ति या देवी माँ ही करती हैं। मानव रूप में माताएँ देवी माँ का ही प्रकट रूप हैं। सभी नारियाँ देवी माँ का ही स्वरूप हैं।

आप किसी अन्य व्यक्ति की अपेक्षा अपनी माँ के अधिक निकट होते हैं। पिता की अपेक्षा आप अपनी माँ के सामने अपना दिल अधिक सहजता से खोल कर रख देते हैं। माँ से बड़ा कोई भगवान नहीं है। वह माँ ही आपको सुरक्षा प्रदान करती है, पालन करती है, सान्त्वना देती है, सुख प्रदान करती तथा देखभाल करती है। वह आपकी प्रथम गुरु है। लगभग सभी बच्चों के मुख

से जो पहला बोल निकलता है, वह प्यारा नाम 'माँ' ही होता है। वह अपने बच्चों की भलाई के लिये अपना सब कुछ बलिदान कर देती है।

बच्चे का अपने पिता की अपेक्षा माँ से अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध होता है, क्योंकि वह बहुत दयालु, प्रेममयी, कोमल और स्नेही होती है और बच्चे की आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। माँ का व्यक्तित्व मानव-हृदय को सबसे अधिक आकृष्ट करता है। जब भी बच्चे को किसी चीज की आवश्यकता होती है, वह हाथ फैलाकर सीधे अपनी माँ की ओर दौड़ता है, पिता की ओर नहीं। माँ को अगर बच्चे की पुकार सुनायी पड़ती है, तो वह अपना सारा घरेलू कार्य छोड़कर बच्चे की ओर दौड़ पड़ती है।

आध्यात्मिक क्षेत्र में भी साधक का पिता शिव की अपेक्षा माँ दुर्गा से अधिक अन्तरंग सम्बन्ध होता है। शिव बाह्य जगत् के प्रति बिल्कुल उदासीन रहते हैं। वे सदा ध्यान करते रहते हैं। उन्होंने अपने सभी अधिकार अपनी पत्नी, दुर्गाजी को दे दिये हैं। दुर्गा माँ ही पूरे संसार की देखभाल करती हैं। भगवान शिव की दृष्टि अपनी शक्ति, दुर्गा पर रहती है। वे स्वयं सृष्टि, पालन और संहार में व्यस्त रहती हैं।

* * *





दुर्गा सृष्टि का निर्माण, पालन तथा नाश करने वाली शक्ति है। इस महान् शक्ति को देवी माँ, महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती के रूप में पूजा जाता है, जो क्रमश: प्रकृति के तीन गुणों – तमस्, रजस् और सत्त्व की प्रतीक हैं।

व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह देवी माँ को प्रसन्न करे, क्योंकि वे ब्रह्माण्ड के स्वास्थ्य और समृद्धि की स्वामिनी हैं। प्रत्येक व्यक्ति में शक्ति निहित है। शक्ति के बिना वह स्वतन्त्र रूप से जीवित नहीं रह सकता है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ऊर्जा से निर्मित है, और ऊर्जा ही शक्ति है। भगवान व्यक्त रूप में शक्ति हैं, अव्यक्त रूप में वे चित् या चेतना हैं, जो सभी ओर सभी वस्तुओं के भौतिक कारण के रूप में मौजूद है।

* * *

प्रेम में ही बदलने की शक्ति होती है, और देवी दिव्य प्रेम का कभी खत्म न होने वाला स्रोत हैं। अपने नन्हें बच्चों के प्रति माँ की ममता जैसा प्रेम का दूसरा कोई उदाहरण नहीं है। सभी प्रकार के विकास, प्रगति, परिवर्तन और आध्यात्मिक उन्नति के लिये यह आवश्यक है। भय (घृणा का ही एक रूप) विकास को बाधित कर प्रगति को रोक देता है, जबकि प्रेम से शीघ्र विकास और त्वरित प्रगति होती है। प्रेम से ही सृष्टि का पालन होता है। दिव्य प्रेम ही देवी माँ का वास्तविक स्वरूप है।

अपने दिल में प्रेम के अलावा और कुछ मत रखिये। यह बाधाओं को हटा देगा और आपकी आध्यात्मिक प्रगति को तीव्रता प्रदान करेगा। यह आपके शत्रुओं को मित्र बना देगा। इससे सुख, शान्ति और समृद्धि के रूप में आपको देवी का आशीर्वाद प्राप्त होगा। इससे आपको सबसे बड़े उपहार – मोक्ष की प्राप्ति होगी। सभी प्राणियों के प्रति कामनारहित प्रेम का विकास करने से ही वास्तव में पराशक्ति आपके हृदय में स्थित होंगी। तभी इस धरती पर सुख,

शान्ति, समृद्धि तथा सामंजस्य की स्थापना होगी। आप सभी को माँ का आशीर्वाद प्राप्त हो!

* * *

देवी माँ सभी स्थानों में तीन रूपों में स्थित हैं। उनके तीन गुण हैं– सत्त्व, रजस् और तमस्। वे इच्छा शक्ति, क्रिया शक्ति और ज्ञान शक्ति के रूप में प्रकट होती हैं। इन्हीं तीन शक्तियों से यह विश्व संचालित होता है। ब्रह्मा के साथ वे ब्रह्मा-शक्ति (सरस्वती) के रूप में, विष्णु के साथ विष्णु-शक्ति (लक्ष्मी) के रूप में और शिव के साथ शिव-शक्ति (महाकाली या दुर्गा) के रूप में रहती हैं।

सरस्वती ब्रह्माण्डीय प्रज्ञा, ब्रह्माण्डीय चेतना और ब्रह्माण्डीय ज्ञान है। लक्ष्मी का मतलब केवल भौतिक समृद्धि, जैसे–सोना, पशु-धन आदि नहीं है। सभी प्रकार की समृद्धि, यश, भव्यता, खुशी, उत्कर्ष या महानता लक्ष्मी के ही अधीन हैं। काली दैवी सत्ता की वह शक्ति है जो परिवर्तन लाती है और विविधताओं को दूर कर एक में स्थित कर देती है।

कार्य या उद्देश्य के अनुसार देवी कई रूप धारण करती हैं, कभी मधुर और कोमल, तो कभी उग्र और विनाशक। परन्तु अपने भक्तों के लिये वे हमेशा दयालु और कृपालु होती हैं। पाण्डव प्रमुख, अर्जुन ने अधर्मी कौरवों के विरुद्ध लड़ाई करने से पहले देवी की पूजा की थी। श्री राम ने रावण से लड़ते समय दुर्गा की पूजा की थी, ताकि युद्ध में उनकी सहायता प्राप्त हो सके। वे उनकी ही कृपा से विजयी हुए।

* * *

देवी माँ सृजन, पालन और संहार की प्रतीकात्मक शक्ति हैं। सारी सृष्टि इस शक्ति का ही व्यक्त रूप है। देवी शक्ति का ही दूसरा नाम है, जो संसार को एक सूत्र में बाँधने वाली शक्ति के रूप में सृजन, पालन और परिवर्तन करती हैं। चूँकि शक्ति को उसके मूल रूप में नहीं पूजा जा सकता, इसलिए उनकी पूजा उसी रूप में की जाती है जिस रूप में हम उनकी कल्पना करते हैं। शक्ति की उपासना तीन रूपों में की जाती है, जो उनके तीन मुख्य कार्यों पर आधारित है। सृजन, पालन और संहार, इन तीन कार्यों के आधार पर तीन देवियों की उपासना सरस्वती, लक्ष्मी और



काली के रूप में होती है। ये तीनों अलग-अलग देवियाँ नहीं हैं, बल्कि एक ही निराकार देवी के तीन रूप हैं। इनसे सम्बन्धित देव ब्रह्मा, विष्णु और महेश हैं। वे भी इसी प्रकार तीन अलग-अलग देव न होते हुए एक ही निराकार परमात्मा के अलग-अलग रूप हैं। देवी माँ का आशीर्वाद आप सबको प्राप्त हो!

* * *

नवरात्रि पर्व उच्च दैवी शक्तियों की उन आसुरी शक्तियों या नकारात्मक गुणों पर विजय का प्रतीक है, जो अन्याय, क्रूरता, लालच, स्वार्थ, घृणा और मनुष्य को दुःख देने वाली अन्य कई प्रकार की शक्तियों के रूप में प्रकट होते हैं।

बाह्य रूप में नवरात्रि पर्व भयंकर राक्षसों के साथ माँ के सफल संघर्ष के प्रति समर्पित एक विजयोत्सव के रूप में मनाया जाता है। परन्तु एक साधक के लिए नवरात्रि साधना को तीन-तीन दिनों में विभक्त किया गया है, जिनमें देवी के अलग-अलग रूपों – दुर्गा, लक्ष्मी और सरस्वती की उपासना की जाती है, जो एक व्यावहारिक सत्य को उद्‌घाटित करती है। सूक्ष्म रूप में इसका सम्बन्ध जीवत्व से शिवत्व तक की यात्रा या मनुष्यत्व से ईश्वरत्व तक के विकास से है। व्यक्तिगत रूप से यह आध्यात्मिक साधना के विभिन्न सोपानों को दर्शाती है।

जीवन का मुख्य लक्ष्य भगवान के साथ अपने स्थायी सम्बन्ध को पहचानना, और अपने आप को उनके ही रूप में ढालना है। सबसे पहले साधक को अपने व्यक्तित्व के सभी अवगुणों तथा सांसारिक प्रवृत्तियों से अपने आप को मुक्त करना होगा। उसके बाद उसे शुभ दैवी गुणों का विकास करना होगा। इस प्रकार शुद्धता और सात्त्विक गुणों को प्राप्त करने के बाद उसमें ज्ञान का प्रकाश वैसे ही झलकता है, जैसे कि एक पूर्ण शान्त झील के शुद्ध जल में सूर्य की उज्ज्वल किरणें।

साधना की इस प्रक्रिया के लिये दृढ़ इच्छा-शक्ति, कृतसंकल्प प्रयास और कठिन संघर्ष की आवश्यकता होती है। अनन्त शक्ति का होना भी आवश्यक है। जब तक देवी माँ, परा-शक्ति साधक के माध्यम से कार्य नहीं करतीं, तब तक यह सम्भव नहीं है।

* * *

नवरात्रि की प्रथम तीन रात्रियों में दुर्गा, अर्थात् माँ के विनाशकारी स्वरूप की पूजा की जाती है। उसके बाद की तीन रात्रियों में रचनात्मक स्वरूप, अर्थात् लक्ष्मी की पूजा की जाती है और अन्तिम तीन दिनों में ज्ञान-स्वरूप, अर्थात् सरस्वती की पूजा की जाती है। दसवाँ दिन विजय दशमी, अर्थात् विजय दिवस होता है।

इस क्रम से देवी की पूजा का विशेष महत्त्व है। पहले तीन दिन देवी की पूजा शक्ति के रूप में होती है। आप माँ दुर्गा से अपनी पुरानी आदतों, अशुद्धियों और कमजोरियों को दूर करने की प्रार्थना करते हैं। वे आपकी साधना को खतरों और पतन से बचाती हैं। साधना की इस प्रक्रिया में तमस् पर विजय प्राप्त होती है। दुर्गा के रूप में वह मन की नकारात्मक, बुरी आदतों का नाश करती है।

इसके बाद के तीन दिनों में माँ लक्ष्मी की पूजा होती है। रजस् के प्रभाव को दूर किया जाता है। लक्ष्मी के रूप में वह आध्यात्मिक जागरण के लिए आवश्यक दिव्य गुणों का विकास करती है। इसका उद्देश्य शुभ सकारात्मक गुणों का विकास और एक दिव्य आध्यात्मिक व्यक्तित्व का जागरण है। यदि विपरीत सकारात्मक गुणों (प्रतिपक्ष भावना) का विकास लगनपूर्वक नहीं किया गया, तो पुरानी बुरी आदतें बार-बार अपना सिर उठाएँगी। एक साधक के जीवन में साधना का यह चरण भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है, जितना कि पूर्व का था। पहले चरण में अहंकारपूर्ण निम्न प्रकृति को क्रूरता के साथ निश्चयपूर्वक दूर किया जाता है, तो दूसरे चरण में व्यवस्थित, स्थिर और शान्त तरीके से विशुद्ध सात्त्विक गुणों का विकास किया जाता है। साधक की साधना का यह सुखद पक्ष माँ लक्ष्मी की पूजा के रूप में सामने आता है। वे अपने भक्तों पर कभी न खत्म होने वाले धन की वर्षा करती हैं। वे स्वयं शुद्धता ही हैं।

तीसरा चरण तब आता है, जब साधक दिव्य ज्ञान को प्राप्त करने के योग्य हो जाता है। यह दिव्य ज्ञान की स्वरूप, माँ सरस्वती की भक्तिपूर्ण पूजा है। सात्त्विक गुणों का विकास करना होता है और माँ सरस्वती स्वयं सात्त्विक स्वरूप हैं। सरस्वती के रूप में वे सत्य का ज्ञान कराती हैं। उनकी दिव्य वीणा की आवाज अलौकिक महावाक्य और प्रणव के स्वर छेड़ देती है। वे दिव्य नाद का ज्ञान कराती हैं और उसके बाद अपने पवित्र उज्ज्वल श्वेत वस्त्रों की तरह विशुद्ध, पूर्ण आत्मज्ञान देती हैं।

दसवाँ दिन लक्ष्य की प्राप्ति, अज्ञान पर ज्ञान की और बुराई पर अच्छाई की विजय के उपलक्ष्य में विजय दशमी के रूप में मनाया जाता है। इसी दिन बच्चे स्कूल जाना प्रारम्भ करते हैं, साधकों को दीक्षा दी जाती है और मजदूर लोग

अपने औजारों की पूजा करते हैं। इन औजारों में स्थित शक्ति का सम्मान करते हैं तथा अपनी सफलता, सम्पन्नता और शान्ति के लिये देवी की पूजा करते हैं।

मुक्ति का अन्य कोई उपाय नहीं है। विकास के विभिन्न स्तरों से ले जाने वाली इस प्रक्रिया से प्रत्येक व्यक्ति को गुजरना पड़ता है। अपने आप ही व्यक्ति एक स्तर से दूसरे स्तर में पहुँच जाता है। किन्तु किसी भी स्तर को छोड़कर दूसरे में कूदने का प्रयास निश्चित रूप से असफलता का कारण बनता है। ज्ञान की प्राप्ति तब तक नहीं होगी, जब तक कि अशुद्धता दूर न हो गयी हो और शुद्धता का विकास न हो गया हो।

एक अवगुण को दूर कीजिये और उसके विपरीत एक सद्गुण का विकास कीजिये। इस प्रकिया के द्वारा आप पूर्णता के उस स्तर को प्राप्त कर लेंगे, जो आखिर में आपको अन्तिम लक्ष्य, ईश्वर की प्राप्ति करा देगा। तब आप पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेंगे। सब में खुद को ही देखने लगेंगे। आप जन्म और मृत्यु के चक्र से स्थायी रूप से मुक्त हो जाएँगे।

* * *

देवी माँ की जय हो! उन्हें धीरे-धीरे आपको अध्यात्म के शिखर पर ले जाने और भगवान से आपका मिलन कराने दीजिए!

* * *



शक्ति ही सब कुछ है। आप किसी भी रूप में उनकी पूजा कर सकते हैं। इस ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति उनके ही कारण हुई है। हम सब उनके हाथों की कठपुतलियाँ हैं। शक्ति के तीन रूपों–इच्छा-शक्ति, क्रिया-शक्ति और ज्ञान-शक्ति के द्वारा ही यह संसार चलता है। शक्ति की पूजा से सम्पन्नता ही नहीं, बल्कि सभी बन्धनों से मुक्ति भी मिलती है। शक्ति देवी की कृपा से आप सबको इच्छित आशीष प्राप्त हों!

* * *

शक्ति कुछ भी कर सकती हैं। वे बना भी सकती हैं और बिगाड़ भी। विद्या माया के रूप में उन्होंने सत्य को छिपा रखा है और आपको इस संसार में बाँध रखा है। सच्ची श्रद्धा और बिना शर्त आत्म-समर्पण द्वारा जब वे खुश हो जाती हैं, तब अज्ञान के आवरण को दूर कर सत्य का ज्ञान करा देती हैं।

माँ की कृपा के बिना आप अपने आपको मन और संसार की पकड़ से नहीं छुड़ा सकते हैं। माया से बचना बहुत कठिन है। यदि आप उनकी पूजा देवी माँ के रूप में करते हैं, तो उनकी दया और कृपा से आप प्रकृति के बन्धन से छूट सकते हैं। वे रास्ते की सभी बाधाओं को दूर कर आपको सुरक्षित रूप से शाश्वत आनन्द और पूर्ण स्वतन्त्रता के राज्य में पहुँचा देंगी।



पराशक्ति देवी, जगजननी जगदम्बा आपको शान्ति, ज्ञान और अमर आनन्द का आशीर्वाद प्रदान करें!

* * *

देवी माँ मनुष्य जीवन में अच्छाई और बुराई, सत्य और असत्य, पाप और पुण्य, बन्धन और मुक्ति, प्रकाश और अंधकार के बीच होने वाले संघर्षों में नकारात्मक शक्तियों

पर दैवी शक्ति की विजय का प्रतीक हैं। परम सत्य यह है कि अंततः बुरी शक्तियों पर हमेशा ईश्वरीय इच्छा की विजय होती है।

* * *

देवी माँ की पूजा से आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है। खुले दिल से उनके पास जाइए। सरलता और नम्रतापूर्वक अपना दिल उनके सामने खोल दीजिए। अपने विचारों को शुद्ध और श्रेष्ठ बनाइए। बच्चे की तरह सरल बनिए। स्वार्थ और कपट का नाश कीजिए। माँ के प्रति स्वेच्छा से बिना शर्त पूर्ण समर्पण कीजिए। मन्त्रों से उनकी पूजा कीजिए। उनके गुणों का गान कीजिए। उनके नामों का स्मरण कीजिए। अविचलित श्रद्धा और विश्वास के साथ उनकी पूजा कीजिए।

* * *

अनुभव कीजिए कि माँ ही आपकी आँखों से देखती, आपके कानों से सुनती और आपके हाथों से कार्य करती है। अनुभव कीजिये कि शरीर, मन, प्राण, बुद्धि और उनके सभी कार्य माँ की ही अभिव्यक्तियाँ हैं। एक ब्रह्माण्डीय जीवन सबके हृदय में स्पन्दित होता है। ऐसे में घृणा और स्वार्थ के लिए स्थान कहाँ हो सकता है, क्योंकि दूसरे से घृणा कर आप अपनी आत्मा से ही अन्याय करते हैं। इस विचार को अपने दिल में गहराई से बैठा लीजिए। एकता के इस आदर्श पर हमेशा ध्यान कीजिए और इसे अपने जीवन में उतारिए।

माँ की कृपा असीम है, उसकी दया-करुणा असीम है, उसका ज्ञान अनन्त है, उसकी शक्ति अपार है, उसकी महिमा अपरम्पार, अवर्णनीय है, वह भुक्ति-मुक्ति प्रदाता है। आपका हृदय थोड़ा भी शुद्ध हो तो माँ प्रसन्न हो जाती है। माँ की कृपा प्राप्त करने के लिए निष्ठापूर्वक प्रयास कीजिए। वे आपके पूरे जीवन को बदल देंगी और आपको दिव्य ज्ञान, आध्यात्मिक दृष्टि और मुक्ति प्रदान करेंगी।

* * *

माँ के बिना कुछ भी सम्भव नहीं है। व्यक्ति की भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति पूरी तरह से उसको जन्म देने वाली माँ और देवी माँ के ऊपर ही निर्भर है। मनुष्य के व्यक्तित्त्व का निर्माण उसको जन्म देने वाली माँ ही करती है।

उसके चरित्र, उसकी मानसिक तथा बौद्धिक क्षमता और उसके पूरे जीवन को माँ ही ढालती है। यही कारण है कि शास्त्रों में माँ को ईश्वर के रूप में पूजने को कहा गया है। आध्यात्मिक क्षेत्र में यह बात और भी सच है। देवी माँ की मदद के बिना किसी भी प्रकार की आध्यात्मिक उन्नति सम्भव नहीं है।

सच्चे दिल से उनसे प्रार्थना कीजिये। वे बहुत आसानी से खुश हो जाएँगी। वे आपकी सहायता के लिये हमेशा तैयार रहती हैं। आपको केवल उन्हें स्वीकार करना है। अपने मन से सभी अशुद्धियों को दूर कीजिये और माँ को अपने दिल में स्वर्ण के सिंहासन पर बैठाइए। उनके चरणों में अपने निम्न अहंकार को अर्पित कर दीजिए। प्रार्थना कीजिए, 'आपकी इच्छा ही पूरी होगी माँ! मुझे कुछ नहीं चाहिए!' वे अपने हाथों से आपका विकास करेंगी और आपको मोक्ष दिलाएँगी।

* * *

अपनी क्षमता के अनुसार जगजननी, शक्ति या ब्रह्म की पूजा उनके निराकार या साकार रूप में कीजिए। यदि पूजा का लक्ष्य आध्यात्मिक जागरण है, तो यम और नियमों का पालन बहुत आवश्यक है। अपनी आन्तरिक बुराइयों, काम, क्रोध और लोभ को देवी दुर्गा को अर्पित कर दीजिए। किसी भी प्राणी को किसी भी कारण से चोट पहुँचाने का आपको कोई अधिकार नहीं है। जीवन में कोई भी पूजा, कोई भी प्रार्थना और कोई भी कार्य किसी जीवित प्राणी को पहुँचाए गये नुकसान की भरपाई नहीं कर सकता। विश्व प्रेम के नियम का क्षमताभर पालन कीजिये। आत्म-भाव या सर्वात्म-भाव से सेवा कीजिये। यह सबसे महान् और गौरवपूर्ण कार्य है, जिसे कोई भी कभी भी कर सकता है। आप सभी को देवी दुर्गा का आशीर्वाद प्राप्त हो!

* * *

देवी की पूजा पर ही व्यक्ति, समाज, देश और विश्व की सम्पन्नता निर्भर है। मानवीय शक्ति महान् नहीं है। दैवी शक्ति से यह कल्याण और आध्यात्मिक विकास का कारण बनती है, न कि विनाश और दुःख का। सामंजस्य और दैवी शक्ति का ज्ञान आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है, इनके बिना व्यक्ति के जीवन में कष्ट और दुःख ही बढ़ता है। उस पूर्ण ईश्वर के साथ प्रेमपूर्ण सम्बन्ध में ही उसके अंश, अर्थात् व्यक्ति की खुशी है।

हे जिज्ञासु! तुम आत्म-निर्भर और स्वतन्त्र नहीं हो। तुम्हारी महानता भगवान की महाशक्ति का ही एक प्रकट रूप है। अपने झूठे अभिमान और घमण्ड को छोड़ दो। अपने आपको देवी माँ को समर्पित कर दो। उससे प्रार्थना करो, जो ब्रह्मा शक्ति, विष्णु शक्ति और शिव शक्ति है। तुम माँ की सन्तान हो। तुम उसका निरादर कैसे कर सकते हो? तुम उसके ही अंश हो। याद रखो, वह सर्वव्यापी है। ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ वह न हो। देवी महात्म्य का पाठ और देवी मन्त्र का जप करो। देवी पर ध्यान करो और उसके आदेश के अनुसार जीवन जीयो। यही तुम्हारा लक्ष्य है, यही तुम्हारी सम्पन्नता है, इसी में तुम्हारी सबसे बड़ी महिमा है, यही तुम्हारा कैवल्य मोक्ष है।



तुम्हें सुख और शान्ति प्राप्त हो! तुम सभी को देवी माँ का आशीर्वाद प्राप्त हो!

* * *

प्रेम, भाई-चारे और निःस्वार्थ भाव की सकारात्मक शक्तियों द्वारा नकारात्मक और बुरी शक्तियों को अपने दिल और दिमाग से पूरी तरह दूर किया जा सकता है। अन्धकार कभी प्रकाश के सामने नहीं ठहर सकता।

विजय हमेशा सत्य की ही होती है। माँ का सन्देश है – सकारात्मक आदर्श का उदाहरण प्रस्तुत करो, संसार में अनासक्त रहकर लोगों के काम आओ; सम-दृष्टि, सन्तुलित मन, मानवता की आकांक्षारहित सेवा, निःस्वार्थ भाव और नम्रता को अपने व्यावहारिक जीवन में उतारो।

अतः सत्य आचरण और पवित्रता को अपने जीवन का आधार बनाओ। अपने आदर्शों और अच्छाइयों को उत्कृष्ट रूप से व्यवहार में लाओ। हमारे

सद्‌गुण जीवन्त, प्रभावशाली और जीवन में परिवर्तन लाने वाले हों। सभी के भीतर अच्छा बनने, अच्छा करने और अच्छाई को फैलाने की इच्छा होनी चाहिए। संसार की भलाई और मुक्ति दैवी जीवन जीने में ही है।

* * *

विकास की एक सकारात्मक और रचनात्मक प्रक्रिया के द्वारा व्यक्ति को जो कुछ अच्छा और श्रेष्ठ है, उसे अपनाना चाहिए। यदि व्यक्ति सुख और कल्याण चाहता है, तो उसे हर प्रकार की हिंसा और घृणा को दूर करना होगा तथा प्रतिक्षण शान्ति, स्थिरता और करुणा को स्वयं अनुभव करना होगा और दूसरों में भी बाँटना होगा। स्वार्थ, वासना, क्रोध, लालच और घमण्ड रहित जीवन ही दिव्य जीवन है। प्रेम के पौधे को विकसित करने के लिये व्यक्ति को ईर्ष्या, घृणा, शक और बदले की भावना रूपी मोथों को उखाड़ फेंकना होगा।

बुरे कार्य नहीं करना, छोटे-से-छोटे प्राणी को जरा भी चोट नहीं पहुँचाना, किसी की निन्दा नहीं करना, दूसरों का नुकसान करके अपना लाभ नहीं करना, अशुद्ध एवं अपवित्र नहीं होना, छल और कपट रहित होना, अच्छे के बदले सुखदायक को नहीं चुनना – ये सब दुनिया के सभी सन्तों और अवतारों की शिक्षाएँ रही हैं। किसी प्राणी के प्रति क्रूर होना माँ के प्रति ही क्रूरता है।

सभी मिलकर घृणा को प्रेम से, बुराई को अच्छाई से, अन्याय को न्याय से, असत्य को सत्य से, स्वार्थ को निःस्वार्थता से जीतने का प्रयास करें। सभी को शान्ति प्राप्त हो। देवी माँ की कृपा से सभी असत्य से सत्य, अन्धकार से प्रकाश और मृत्यु से अमरता की ओर बढ़ें।

* * *

अगर आप एक बच्चे की तरह सरलता और मासूमियत से माँ के पास जाते हैं, उनके प्रति समर्पण करते हैं और उनसे प्रार्थना करते हैं, 'हे माँ! आप ही सब कुछ हैं; अच्छा या बुरा जैसा भी हूँ, मैं आपकी सन्तान हूँ। हे करुणा और प्रेममयी माँ! मेरा विकास कीजिए।' तो माँ आपको शक्ति प्रदान करेंगी।

दुर्गा के रूप में वे आपके व्यक्तित्व के सभी पक्षों को शक्ति प्रदान करती हैं। वे आपकी सभी बाधाओं को दूर करतीं और आपकी आध्यात्मिक उन्नति को रोकने वाले बुरे संस्कारों को समाप्त करती हैं। लक्ष्मी के रूप में वे आपमें दिव्य गुणों का विकास करती हैं और साथ-ही-साथ भौतिक सम्पदा भी प्रदान करती हैं,



ताकि सांसारिक चिन्ताओं से मुक्त होकर आप आध्यात्मिक लक्ष्य के लिये प्रयास कर सकें। सरस्वती के रूप में वे विवेक और आध्यात्मिक ज्ञान के द्वार खोलती हैं। वे आपकी अन्तर्दृष्टि और विवेक को जागृत करती हैं। आप सत्य को जानने और संसार के भ्रामक और असत्य स्वरूप के प्रति उदासीन होने लगते हैं।

सभी नारियों में देवी माँ के ही दर्शन कीजिये। संसार की सभी वस्तुओं में माँ की ही पूजा कीजिये। वे आपको सभी कलाओं और विज्ञान में प्रवीण बना देंगी। एक योगी, ज्ञानी और जीवन्मुक्त की तरह आपका गौरव फैलेगा।

* * *

माँ की कृपा के बिना आप आध्यात्मिक उन्नति नहीं कर सकते हैं। शक्ति के बिना आप कुछ भी नहीं कर सकते हैं। उनके नाम और महिमा का गान कीजिए। उनके चरणों में पूर्ण समर्पण कीजिए। एक बच्चे की तरह उनके सामने अपना दिल खोल कर रख दीजिए। उनसे प्रार्थना कीजिए और कहिए, 'हे माँ! मैं तुम्हारा हूँ। सब कुछ तुम्हारा ही है। तुम्हारी ही इच्छा पूर्ण होगी। मेरी रक्षा कीजिए।' वे आपके लिये सब कुछ करेंगी। उनके नाम और कृपा पर पूर्ण विश्वास रखिए। वे आपको आशीर्वाद प्रदान करें!

* * *

देवी माँ सृष्टि के सभी प्राणियों में व्यक्त रूप में हैं। कर्मकाण्डों द्वारा या समारोहपूर्वक माँ की पूजा भी फलदायक है, परन्तु व्यावहारिक पूजा ही

वास्तव में तेजी से परिवर्तन लाती और आपको आध्यात्मिक बनाती है, और अन्त में आपको ईश्वर दर्शन कराती है।

देवी माँ की शक्ति को अपने अन्दर जागृत करना, सेवा और परोपकार के लिए जीना ही देवी माँ, दुर्गा की पूजा का सबसे अच्छा और व्यावहारिक तरीका है। माँ लक्ष्मी को जागृत करने के लिये आपको सभी के जीवन में सम्पन्नता लाने का अथक प्रयास करना होगा। विशाल-हृदय, उदार, परोपकारी और दयालु बनिए। अपनी क्षमता के अनुसार सभी के जीवन से दु:ख और तकलीफ दूर करने और उनके जीवन में सुख लाने के लिये कठिन प्रयास कीजिए। जो सम्पन्न हैं, उनके लिए मेरी सलाह है कि उन्हें गरीब मरीजों के लिये मुफ्त चिकित्सालय और बेसहारा लोगों के लिये अन्न क्षेत्र खोलने चाहिए, अनपढ़ लोगों की शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए और हर तरह से देश की सम्पन्नता को बढ़ाने में सहायता करनी चाहिए। जहाँ सुख और सम्पन्नता होती है, वहीं लक्ष्मी माँ सरलता से खुश होती हैं।

सरस्वती माँ को जागृत करने के लिये आपको पहले स्वयं को ज्ञान-सम्पन्न बनाना होगा। आपको प्रकाशवान बनना होगा, और सभी ओर दिव्य ज्ञान का प्रकाश फैलाना होगा। ऐसे सच्चे साधक पिछड़े, दरिद्र और अनपढ़ लोगों की बस्ती में जाकर उन्हें लौकिक और आध्यात्मिक ज्ञान दे सकते हैं। इस प्रकार आप सरस्वती माँ की सबसे बड़ी और महान् सेवा कर सकते हैं।



* * *

अपना जीवन देवी माँ की वास्तविक और व्यावहारिक सेवा में बिताइए। सभी प्रकट रूपों में देवी की पूजा कीजिए। मानवता उसका प्रकट रूप है। मानवता की सेवा देवी माँ की सेवा है। जब जीवन में विवेक और दिव्य गुण जागृत हो जाते हैं, तब वह जीवन दिव्य बन जाता है। आध्यात्मिक उन्नति करने का प्रयास कीजिए और शुद्धता, दिव्य व्यावहारिक गुणों एवं विवेक से पूर्ण जीवन जीने की आकांक्षा रखिए।

देवी माँ के आशीर्वाद से सभी के जीवन में सुख, शान्ति और सम्पन्नता आए!

देवी

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती की शिक्षाओं से



विश्व-परम्परा में देवी

सृष्टि के आरंभ से ही देवी माँ का स्वरूप विद्यमान रहा है। देवी की आराधना शक्ति की आराधना है। शक्ति का अर्थ होता है ऊर्जा, सामर्थ्य, क्षमता, अन्त:शक्ति। देवी का मतलब होता है, ज्योतिर्मय, देदीप्यमान, द्युतिमान्, अन्तर की ज्योति। सभी सभ्यताओं, संस्कृतियों, जातियों एवं जनजातियों में प्राचीन काल से ही देवी माँ की पूजा विभिन्न नामों, रूपों और परम्पराओं में होती रही है।

वैदिक परम्परा में मातृशक्ति, दैवी शक्ति को सर्वोच्च सत्ता माना गया है। जगन्माता, देवी माँ, जगज्जननी ही परम सत्य है। तन्त्र में शक्ति ही आद्य ऊर्जा है, जो सृष्टि का कारण है। प्राचीन जगत् में सभी सभ्यताओं में शिव-शक्ति की पूजा होती रही है। आदि शक्ति को प्रथम स्रष्टा माना जाता है। हालाँकि पितृ-सत्तात्मक धर्म इसे स्वीकार नहीं करते हैं।



विश्व में दो आध्यात्मिक परम्पराएँ विद्यमान हैं – एक मातृ-सत्तात्मक है और दूसरी पितृ-सत्तात्मक। मातृ-सत्तात्मक परम्पराओं में ईश्वर को जगन्माता, देवी, प्रकृति-शक्ति के रूप में माना गया है। पितृ-सत्तात्मक परम्पराओं में सृष्टिकर्ता ईश्वर को पिता माना गया है, माँ नहीं। यहूदी, ईसाई और इस्लाम

धर्म पितृ-सत्तात्मक हैं। तंत्र, हिन्दू, बौद्ध और पारसी धर्म, शिन्तो मत, ताओवाद और अमेरिका की आदिवासी परम्पराएँ मातृ-सत्तात्मक हैं।

अनेक जनजातीय परम्पराओं में आज भी सृष्टिकर्ता के रूप में माँ की अवधारणा पायी जाती है। वे अपनी-अपनी संस्कृति के अनुसार किसी-न-किसी देवी की पूजा करते हैं। देवी की पूजा वे वैदिक या तान्त्रिक कर्मकाण्डों से भले ही न करते हों, परन्तु अपने रीति-रिवाजों के अनुसार आज भी वे देवी माँ की पूजा करते हैं।

दक्षिण अमेरिका के देशों में अभी अनेक जनजातियाँ हैं, जिनकी देवी माँ की पूजा की अपनी विधियाँ हैं। उत्तरी अमेरिका के मूल निवासी प्रकृति या धरती माँ से घनिष्ठ रूप से जुड़े हैं। वे मानते हैं कि प्रकृति में कोई अदृश्य शक्ति है और अगर कोई सही ध्वनि उत्पन्न कर सके, तो वह उस व्यक्ति को देख और सुन सकती है। यह परम्परा आज भी हर जगह है, पर अदृश्य, रहस्यमय देवत्व सदा गुप्त रहता है। तन्त्र में इसे शक्ति कहते हैं, पर तुम देवी, माँ आदि भी कह सकते हो।

मिश्र की प्राचीन सभ्यता में यह अवधारणा थी कि यह ब्रह्माण्ड देवी माँ और सूर्यदेवता की परस्पर क्रीड़ा है। सिखों के पावन ग्रन्थ गुरुग्रन्थ साहिब में वे अस्तुति भवानी हैं। जापान के पारम्परिक गाँवों एवं नगरों में प्राचीन मन्दिर हैं, जिन पर वैदिक और बौद्धमत का प्रभाव दिखायी देता है और वहाँ विभिन्न रूपों में देवी की मूर्त्तियाँ भी हैं। स्पेन के मानसेरात में काली मैडोना की मूर्त्ति की पूजा बारहवीं सदी से होती आ रही है। अनेक वर्षों में धुएँ के कारण यह मूर्त्ति काले रंग की हो गई है और काली की तरह लगती है।

समय बीतने के साथ सामाजिक परम्पराओं ने माँ को पीछे कर दिया। ईसाई, इस्लाम और यहूदी धर्म ने भी ऐसा ही किया। परन्तु इसका मुख्य कारण आध्यात्मिक नहीं, सामाजिक है। उन्होंने ईश्वर को परम पुरुष माना, इसलिए देवियों को कम महत्त्व दिया जाने लगा।

ग्रीक के साथ-साथ इस्लाम और ईसाई धर्मों के प्रभावों के कारण ईश्वर के पुरुष होने की अवधारणा सारी पृथ्वी पर फैल गयी और व्यापक रूप से यह माना जाने लगा कि ईश्वर ही सर्वोच्च सत्ता है और उससे परे कुछ नहीं है। फलस्वरूप स्त्रियों के मानवाधिकार पर से ध्यान प्राय: हट सा गया, क्योंकि अधिकतर धर्मों में स्त्री को निम्न या हीन माना जाने लगा। परन्तु शाक्त मत में ऐसा नहीं था। मातृ-सत्तात्मक होने के कारण इसने स्त्री की आध्यात्मिक स्थिति को ऊँचा माना।

आज अनेक लोग प्राचीन मातृ-सत्तात्मक परम्पराओं के बीजों में एक नये आधार की खोज कर रहे हैं, जिस पर एक अधिक सामंजस्यपूर्ण जगत् का निर्माण किया जा सके। एक बार फिर सम्पूर्ण विश्व मातृ-सत्तात्मक व्यवस्था की ओर चल पड़ा है और मातृ-सत्तात्मक व्यवस्था में ईश्वर माँ है।

1995



भारतीय परम्परा में देवी

वैदिक और तान्त्रिक परम्पराओं में देवी माँ की अनेकानेक रूपों में आराधना और स्तुति की गई है। भारत में हजारों देवियों की पूजा होती है, ये सभी एक ही शक्ति या ऊर्जा की अभिव्यक्तियाँ या प्रतीक हैं। दुर्गति नाशिनी दुर्गा के रूप में; काल और अहंकार विनाशनी काली के रूप में; ज्ञान और विवेक प्रदायिनी सरस्वती के रूप में; समृद्धि प्रदायिनी लक्ष्मी के रूप में; मार्गदर्शक ज्योति तारा के रूप में; जगज्जननी जगदम्बा के रूप में और अन्य अनेक रूपों में माँ की उपासना की जाती है। ये अनेक रूप कृपा और करुणा जैसे माँ के सहज गुणों के साथ-साथ उनकी उग्र और प्रचण्ड शक्ति को भी प्रकट करते हैं, जो साधकों को समस्त सृष्टि का पालन, पोषण और संचालन करने वाली ब्रह्माण्डीय शक्ति के प्रति सजग होने के लिये प्रेरित करती है।

तन्त्र के अनुसार मातृशक्ति प्रथम स्रष्टा है। उन्हें देवी, शक्ति या आद्य ऊर्जा कहा जाता है। जब ऊर्जा पदार्थ से मुक्त हो जाती है, तो उसे मोक्ष कहते हैं। भारत में उसे देवी कहते हैं। वह हमेशा स्त्री रूप में ही होती है, जैसे, शक्ति, देवी, दुर्गा, भवानी, माता काली आदि। ये स्त्री रूप शक्ति के स्वभाव के प्रतीक हैं। शाक्त परम्परा में यह माना जाता है कि शक्ति सभी पदार्थों का केन्द्र या नाभिक है। वह हमारा भी नाभिक है, न केवल हमारे मन का, बल्कि आत्मा का भी। उसका अपना कोई निश्चित, दृश्य स्वरूप नहीं है। वह असंख्य रूपों और स्पन्दनों में अभिव्यक्त होती है और साथ-ही-साथ अरूपावस्था में भी रहती है।

सूर्य और चन्द्रमा में, जीवन के सभी रूपों में हम उन्हीं की महिमा का दर्शन करते हैं। मनुष्य, पशु-पक्षी, वृक्ष, पृथ्वी, मिट्‌टी, पत्थर, सोना-चाँदी, पानी, हवा और तारे, सभी शक्ति के ही व्यक्त रूप हैं। जिस प्रकार

हम अपनी जन्मदात्री माँ के व्यक्त रूप हैं, उसी प्रकार हम सभी अपनी देवी माँ के व्यक्त रूप हैं। हम उस माँ की पूजा करते हैं जिन्हें योगी कुण्डलिनी शक्ति कहते हैं, वैष्णव लोग लक्ष्मी कहते हैं, शैव लोग गौरी और अम्बा कहते हैं तथा ईसाई लोग मेरी कहते हैं।



शैव परम्परा में शिव दक्षिण भाग में और शक्ति वाम भाग में रहती है, पर शाक्त परम्परा में शक्ति सोये हुए शिव के ऊपर एक पैर रखकर खड़ी रहती है। शक्ति को मानव शरीर के मूलाधार चक्र में एकमात्र शक्ति के रूप में देखा जाता है। वे सृष्टि में सभी चीजों का आधार हैं। सौन्दर्य-लहरी के प्रथम श्लोक में कहा गया है, *'शिव: शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्त: प्रभवितुं'* – 'शक्ति के बिना शिव भी कुछ करने में असमर्थ हैं।'

शाक्त और वैदिक परम्परा में पुरुष त्रिमूर्ति के साथ-साथ काली, लक्ष्मी और सरस्वती रूप में स्त्री त्रिमूर्ति भी है। ये तीनों देवियाँ शक्ति के जागरण से सम्बन्धित तीन स्तरों की प्रतीक हैं। इनकी सृष्टि उसी आदिशक्ति ने की है, जिनसे सभी देवता उत्पन्न हुए हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि उसी माँ से उत्पन्न हुए हैं, जो स्वयं अजन्मा और अनादि हैं।

माँ ही जीवन देने और उसका पोषण करने वाली है। उनमें सबको आशीष देने की क्षमता है, परन्तु वे किसी को दण्ड नहीं देतीं। माँ के भीतर असीम सहन-शक्ति और क्षमा होती है। *कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति*– पुत्र कुपुत्र हो सकता है, परन्तु माता कुमाता नहीं होती। माँ अपनी सन्तान के प्रति ईर्ष्यालु नहीं होती। माँ कभी क्रूर नहीं हो सकती। यदि वह तुमको थप्पड़ भी मारती है, तो वह भी करुणावश, प्रेमवश और दुलार से। शाक्त-तन्त्र की यही शिक्षा है।

प्रकृति के नियमानुसार सभी बच्चे माँ के होते हैं। माँ और बेटे का सम्बन्ध पिता और बेटे के सम्बन्ध से अधिक घनिष्ठ और प्रबल होता है। तुम भगवान



के साथ यही रिश्ता जोड़ सकते हो। वह माँ है और हम उसकी सन्तान हैं। हम बराबर यही कहते हैं, देवी माँ, काली माँ, दुर्गा माँ, भगवती माँ। हम यह नहीं कहते कि भगवान हमारा पिता है, हम कहते हैं, *'त्वमेव माता च पिता त्वमेव'* – भगवान हमारी माँ है, इसीलिये वह हमारा पिता भी है।

देवी के तीन रूप हैं – सौम्य, संहारक और सृजनात्मक। उनकी सौम्य शक्तियों की आराधना शीघ्र फलदायी और आशीष देने वाली होती है। देवी की आराधना की अनेक विधियाँ हैं, परन्तु श्रद्धा-भक्ति से की गयी आराधना ही सर्वोत्तम होती है। अपने अन्दर शक्ति के जागरण के अनेक उपाय हैं, परन्तु सबसे सरल है देवी को माँ के रूप में देखना। इसलिए भारतीय परम्परा में देवी की आराधना सर्वश्रेष्ठ मानी गयी है।

देवी और सृष्टि

तन्त्र हिन्दुओं की पूजा और कर्मकाण्ड का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। इसके स्रोत वेद हैं। इतिहास में हालाँकि थोड़े-थोड़े अन्तर के कारण इसे अनेक शाखाओं में बाँट दिया गया था, परन्तु इसके मौलिक सूत्र एक समान ही रहे। तन्त्र साधना की तीन प्रमुख शाखाएँ हैं – शैव-तन्त्र, शाक्त-तन्त्र और वैष्णव-तन्त्र।

तन्त्र की प्रत्येक शाखा के अपने आगम हैं। ऐसा मानते हैं कि आगम ईश्वर की वाणी है। ये वाणियाँ शिव, विष्णु या देवी की हैं। आगम शब्द का प्रयोग पहले वेदों के लिए किया जाता था, परन्तु तन्त्र शास्त्र के आविर्भाव के बाद से धीरे-धीरे यह शब्द तन्त्र के लिए प्रयुक्त होने लगा और वेदों को निगमों के नाम से जाना जाने लगा। अन्य आगमों की अपेक्षा शाक्त आगम अधिक लोकप्रिय हैं। शाक्त आगमों में देवी, भगवती या शक्ति को पूजा के लिए सर्वोच्च आदर्श माना गया है। शाक्त-पंथ के अनुसार वे सर्वोच्च शक्ति हैं, जिनसे इस जगत् की उत्पत्ति हुई है।

तन्त्र के दार्शनिक सिद्धान्त वेद और सांख्य, दोनों से मेल खाते हैं। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति के साथ तुरीयावस्था के भी परे एक स्वतन्त्र और अविनाशी सत्य है, जो प्रकृति और उसके तीनों गुणों से पूर्णत: मुक्त है। सबकी अन्तरात्मा और सर्वज्ञ होने के कारण कोई उस सत्य को जान नहीं सकता है। योग के द्वारा जिन्हें आत्मबोध हो गया है, वे ही उसका अनुभव कर सकते हैं। आत्मा ही आत्मा को जान सकता है। वह मन, वाणी और इन्द्रियों के परे है। सूर्य, चन्द्र और यह दृश्य जगत् उस सत्य से ही अपना प्रकाश पाते हैं।

ब्रह्म निष्कल और सकल, दोनों है। जब हम उसे प्रकृति से स्वतन्त्र मानते हैं तब वह निष्कल है, देश और काल से परे। जब उसे प्रकृति सहित मानते हैं, तब वह सकल है। प्रकृति के साथ वह सगुण, साकार हो जाता है, क्योंकि प्रकृति

त्रिगुणात्मिका है और प्रकृति से रहित वे निर्गुण हैं, निराकार हैं। सगुण और निर्गुण का भेद केवल भाषा ही सीमाओं में उसका वर्णन करने के लिये है।

वस्तुत: ब्रह्म की शक्ति अभिन्न रूप से उसके अन्दर ही रहती है। सच पूछो तो ब्रह्म और उसकी शक्ति को कभी अलग किया ही नहीं जा सकता है। वह अनन्त शक्ति, जो चेतना और आनन्द स्वरूपिणी है, ब्रह्म की आत्माभिव्यक्ति का एक साधन है। वह शक्ति समस्त सृष्टि में उसी प्रकार व्याप्त है जैसे तिल में तेल या दूध में घी।

प्रारम्भ में ब्रह्म निष्कल स्वरूप में था। वह एक था। उसके भीतर अनेक होने की इच्छा जगी, जिससे सृष्टि प्रारंभ हुई। ब्रह्म में शक्ति की इस अभिव्यक्ति को अपर ब्रह्म कहते हैं। वह तान्त्रिक पूजा का आधार है। उसके साकार रूप का ध्यान किया जाता है। यह शक्ति रूप देवी-देवताओं और व्यक्त सृष्टियों में व्याप्त है। सृष्टि में सभी प्राणी और सभी रूप उसकी विभिन्न अभिव्यक्तियाँ हैं। ब्रह्म के शक्ति रूप से सबसे पहले नाद उत्पन्न हुआ और नाद से बिन्दु प्रकट हुआ।

तन्त्र-शास्त्रों में ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति का वर्णन अनेक प्रकार से किया गया है। तन्त्र शास्त्र में पुरुष या शिव तत्त्व को शम्भु, सदाशिव, महेश्वर आदि अनेक नाम दिए गये हैं। ये विभिन्न नाम एक तत्त्व की विभिन्न रूपों में अभिव्यक्ति से सम्बन्धित हैं। शक्ति पक्ष को दो प्रकार से देखा गया है – माया और मूल प्रकृति। माया वह शक्ति है जिसके माध्यम से ब्रह्म सृष्टि कार्य में अपने वास्तविक स्वभाव को छिपाता है। मूल-प्रकृति वह शक्ति है जो एक अनभिव्यक्त पक्ष है। यह नाम-रूप वाली सृष्टि का उपादान कारण है। यह वह स्थिति है जिसमें तीनों गुण साम्यावस्था में रहते हैं। इस साम्यावस्था को अव्यक्त प्रकृति या देवी कहते हैं। तीन गुण प्रकृति में पुरुष की अभिव्यक्तियाँ हैं। इस प्रकार देवी को गुण-निधि भी कहते हैं।

मूल प्रकृति वह गर्भ है जिसमें ब्रह्म का बीज पड़ने से यह ब्रह्माण्ड उत्पन्न होता है। मूल प्रकृति में रजोगुण के स्पन्द से उसकी साम्यावस्था विक्षुब्ध हो जाती है और विभिन्न अनुपातों में गुणों का मिश्रण विभिन्न रूप धारण करता है, और सृष्टि शुरू हो जाती है। तीन गुणों के विभिन्न संयोगों और प्रतिक्रियाओं से विभिन्न नाम-रूपों वाले ब्रह्माण्ड की लीला संचालित होती है। पुरुष और प्रकृति, शिव और शक्ति सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त होकर जगत् का नियंत्रण और निर्देशन करते हैं।

1967

देवी की अभिव्यक्तियाँ

सृष्टि के पीछे एक महान् शक्ति है, देवी। उन्हें माया कहते हैं, क्योंकि सृष्टि से ही माया जगत् के रूप में प्रकट हुई है। माया की शासिका होने से वे महामाया हैं। देवी अविद्यारूपिणी भी हैं, क्योंकि वे बन्धनों का निर्माण करती हैं। वे विद्यारूपिणी हैं, क्योंकि माया को नष्ट कर वे ज्ञान और मोक्ष प्रदान करती हैं। प्रकृति होने, अर्थात् सृष्टि के पूर्व भी विद्यमान होने के कारण वे आद्या शक्ति कहलाती हैं। प्रकृत्ति में चित्त शक्ति की अभिव्यक्ति होने के कारण वे वाचक शक्ति भी कहलाती हैं।

तन्त्र में आत्मा का ध्यान देवी रूप में किया जाता है। इस प्रकार देवी मातृरूप में स्वयं ब्रह्म हैं। अपने परब्रह्म रूप में देवी नामों और गुणों से परे हैं। जगज्जननी स्वरूप में उनके तीन रूप हैं। पहला है सर्वशक्तिमान् रूप, जो अज्ञात है। दूसरा अति सूक्ष्म रूप है, जो मन्त्र रूप में प्रकट होता है। चूँकि उनकी निराकार अवस्था पर ध्यान करना कठिन है, इसलिए उनकी कल्पना स्थूल रूप में भी की जाती है, जिसका वर्णन तन्त्रों और पुराणों में मिलता है।

प्रकृति रूप में देवी ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर के उद्भव का कारण हैं। उनका रूप पुरुष का भी है और स्त्री का भी, परन्तु सामान्य रूप से उनके स्त्री रूप का ही ध्यान किया जाता है। तन्त्र शास्त्र में सभी मंत्र और यन्त्र वस्तुत: उनके ही रूप हैं। महादेवी, सरस्वती, लक्ष्मी, गायत्री, दुर्गा, त्रिपुर सुन्दरी, अन्नपूर्णा आदि अन्य देवियाँ उनकी ही विभिन्न अभिव्यक्तियाँ हैं।

सती, उमा, पार्वती और गौरी रूप में देवी भगवान शिव की अर्द्धांगिनी हैं। दक्ष के यज्ञ में अपने पति का अपमान सहन न कर सकने के कारण सती ने लज्जा और दु:ख से अपना शरीर यज्ञाग्नि में जला दिया। इस असह्य वियोग में भगवान शिव सती का शव लेकर अर्द्ध विक्षिप्तावस्था में भ्रमण

करने लगे। इस परिस्थिति का लाभ उठाकर, ईश्वरीय अनुशासन के अभाव में निम्न शक्तियों ने चारों ओर सर उठाना आरम्भ कर दिया। जब भगवान विष्णु ने यह देखा, तब उन्होंने सती के शरीर को अपने चक्र से इक्यावन खण्डों में काट डाला। जिन-जिन स्थानों पर ये कटे हुए इक्यावन अंग गिरे, वे इक्यावन शक्तिपीठ कहलाए, जहाँ देवी और उनके भैरव की भिन्न नामों और रूपों में पूजा होती है।

जैसे ब्रह्माण्ड में देवी के अनेक नाम और रूप हैं; वैसे ही शरीर में उनका जो सूक्ष्म रूप है उसे कुण्डलिनी शक्ति कहते हैं। जिस प्रकार जल में चन्द्रमा का बिम्ब अनेक रूप ले लेता है, उसी प्रकार वह एक शक्ति अनेक रूपों में अभिव्यक्त होती है। पशु-पक्षी, अन्य सभी प्राणियों और जड़ पदार्थों में भी देवी की वही शक्ति अभिव्यक्त हो रही है।

जो भी तत्त्व ब्रह्माण्ड में हैं, वे सभी मानव शरीर में भी हैं। यह शरीर लघु ब्रह्माण्ड है। ब्रह्माण्ड की सृजनात्मक शक्ति मानव शरीर में भी सुषुप्तावस्था में है। उस शक्ति को जाग्रत करना और सक्रिय बनाना तन्त्र-साधना का उद्देश्य है। तन्त्र और उसके सभी अंगों का अभ्यास साधकों को अपनी दिव्य शक्ति का तथा अपने चारों ओर फैले जगत् में उस शक्ति का अनुभव प्राप्त करने के लिए प्रेरित करता है। साधक पहले बाह्य रूप की उपासना और साकार पूजा के विभिन्न कर्मकाण्डों का पालन करने के पश्चात् निराकार पूजा के लिए अधिकारी बनता है। अन्ततः उसे यह अनुभव होता है कि महादेवी उसकी आत्मा का ही स्वरूप हैं, और इस प्रकार उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है।

1967



शक्ति-पूजा

तन्त्र-शास्त्र वह पद्धति है जो मानव-चेतना की गहराई में निहित व्यक्तिगत शक्ति और ज्ञान की तकनीकों, माध्यमों और प्रयोगों से सम्बन्धित है। तन्त्र-शास्त्र की अधिष्ठाता देवता देवी हैं, जिन्हें सभी मन्त्र, मुद्रायें और पूजा के अन्य तत्त्व भक्तिपूर्वक अर्पित किये जाते हैं। मानव-विकास के विभिन्न स्तरों पर चलते, डगमगाते और आगे बढ़ते मनुष्यों के विभिन्न स्वभावों के अनुरूप चौसठ तन्त्रों का स्पष्ट उल्लेख किया गया है।

तन्त्र पद्धति का उद्‌देश्य उस मातृ-पक्ष को विकसित और अभिव्यक्त करना है जो संभवत: प्राणियों में समग्र चेतना का केन्द्र और नाभिक है, व्यक्तिगत सजगता का केन्द्रीय क्षेत्र, शक्ति या ऊर्जा है। तन्त्र-शास्त्र इस मातृ-पक्ष को सामान्य मातृ-प्रकृति से अलग मानता है और साथ-ही यह भावनात्मक मातृ-भाव की ग्रन्थि भी विकसित नहीं करता। 'मातृ' शब्द मनुष्य की सर्वोच्च शक्ति का प्रतीक है, सामान्य रूप में माँ का प्रतीक नहीं है।

तान्त्रिक शक्ति के पुजारी होते हैं, भले ही वे शिव की पूजा करें या विष्णु की। शक्ति है क्या? शक्ति मानव-चेतना की गहराई में लगभग अशान्त पड़ी महती प्रक्रिया है, जिसमें सृजन, प्रगति और विनाश की क्षमता है। यह प्रबल सजगता वर्तमान में सुषुप्त है।

शक्ति है कहाँ? यह सभी में है। यह शिव का वाम अंग है। शिव चेतना है, शक्ति ऊर्जा। शिव जिह्वा है, शक्ति वाणी है। शिव और शक्ति एक साथ रहते हैं, परन्तु शक्ति के सक्रिय सहयोग के बिना शिव कर्म या वस्तु में अपने को अभिव्यक्त नहीं कर सकते। इसलिए शक्ति तन्त्र-शास्त्र का विषय है, चाहे वह शक्ति-तन्त्र हो या शिव-तन्त्र। भले ही शक्ति को नारी रूप में चित्रित किया जाता है, देवी कहा जाता है, परम सुन्दरी के रूप में उनका वर्णन किया

जाता है, फिर भी तन्त्र एक स्वर से यह घोषणा करता है कि शक्ति सर्वव्यापी और सबको परिवेष्टित करने वाली है, सन्त और असन्त, पुरुष और स्त्री, आस्तिक और नास्तिक, सभी इसके अन्तर्गत आ जाते हैं।

तन्त्र-शास्त्र में मन्त्र, यन्त्र, देवता, क्रिया और मुद्राओं के साथ-साथ पंचमकार साधना के माध्यम से सभी व्यक्तियों में इस अलौकिक सत्ता का आविर्भाव कराने की विस्तृत और निश्चित योजना है। तन्त्र की इन साधनाओं का उपयोग बाह्य स्तर पर गहन मानव चेतना के विकास के लिये किया जाता है, जिससे अतिभौतिक क्षमताओं को सक्रिय बनाया जा सके। मन्त्रों द्वारा व्यवस्थित ढंग से स्पन्दन उत्पन्न किये जाते हैं, यन्त्रों के द्वारा ऊर्जा को एकत्र किया जाता है और अन्य क्रियाओं का उपयोग चक्रों के जागरण के लिए किया जाता है। इस प्रकार तन्त्र साधना में कुण्डलिनी जागरण की अनेक विधियाँ हैं।

तन्त्र शब्द दो प्रक्रियाओं, 'तनोति' और 'त्रायति' से मिलकर बना है, जिनका क्रमश: अर्थ होता है विस्तार और मुक्ति। इसकी 'तन्' धातु से तनोति और 'त्र' धातु से त्रायति अर्थ निकलता है। तनोति का अर्थ है तानना, फैलाना, विस्तार करना, विकसित करना। त्रायति का अर्थ है मुक्त करना, स्वतन्त्र करना, अलग करना। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि तन्त्र विस्तार की और अन्तत: परम सत्ता में पूर्णत: उन्मुक्त होने की एक प्रक्रिया है।

अधिकतर तन्त्रों का मूल विशुद्ध वैदिक है। उन्हें तुम सरलता से दो क्रमिक श्रेणियों, श्रुति और स्मृति में रख सकते हो। जो तन्त्र श्रुतियों में हैं और निर्विवाद रूप से वैदिक परम्परा का पालन करते हैं, वे श्रौत-तन्त्र कहे जाते हैं। जो तन्त्र श्रुतियों में श्रद्धा रखते हैं, पर सदा परिवर्तनशील सामाजिक अवधारणाओं के साथ अपने को समायोजित करते रहते हैं, उन्हें स्मार्त-तन्त्र कहा जाता है।

श्रौत-तन्त्र या वैदिक-तन्त्र पवित्रता और कट्टरता के भाव से भरे हुए थे। फलस्वरूप वहाँ नैतिक संयम, जैसे, अहिंसा आदि का विकास हुआ। फिर भी जो लोग पशु-बलि या अन्य ऐसी पुरानी प्रथाओं का पालन करते आ रहे थे, वे इस प्रकार की रूढ़ीवादी पवित्रता और अहिंसा से सहमत नहीं हुए। अत: समय के साथ वैदिक-तन्त्र स्वाभाविक रूप से दो समूहों में बँट गया – एक ने अहिंसा का रास्ता पकड़ा और दूसरे ने पशु-बलि, मद्य-पान आदि की परम्परा का पालन किया। परन्तु उस समय उन्होंने तन्त्र शब्द का प्रयोग नहीं किया, बल्कि् यज्ञ शब्द का प्रयोग किया। बाद में यज्ञ शब्द का स्थान तन्त्र



ने ले लिया। वैदिक तन्त्र में हुए ये स्वाभाविक विभाग बाद में दो प्रमुख रूढ़ीवादी धाराओं के रूप में विकसित हुए – शक्ति की उपासना करने वाला शाक्त तन्त्र और शिव की उपासना करने वाला शैव तन्त्र।

शैव अतिसंयमी जीवन जीते हैं, जिसका मूल वैदिक तन्त्र में आदेश नहीं था, वे मांस-मद्य आदि से भी परहेज करते हैं, जबकि लोकप्रिय शाक्त परम्पराओं में ये चीजें स्वीकार्य थीं। शाक्तों ने अपने तन्त्र को शक्ति की अवधारणा पर केन्द्रित रखा। वे वैदिक उपासकों के समान ऐशो-आराम का जीवन यापन करते और मांस एवं मदिरापान आदि वाले पथ का अनुसरण करते रहे। लगातार आलोचना के दबाव के कारण शाक्त तन्त्र के उपासकों के लिए अपनी पद्धति का औचित्य और प्रभाव प्रमाणित करने के लिए एक आध्यात्मिक दर्शन का विकास करना अनिवार्य हो गया। इस प्रकार तन्त्र की मुख्य शाखा तीन समूहों में विभक्त हो गयी।

1. परिष्कृत वैदिक पूजा, जो आज भी व्यापक रूप से यज्ञ, रुद्री और अन्य कर्मकाण्डीय अनुष्ठानों के रूप में की जाती है।

2. शैव-तन्त्र, जो भगवान शिव को केन्द्र बनाकर व्यवस्थित रूप से विकसित हुआ, अतिसंयम जिसका मेरुदण्ड है, योग जिसका सिद्धान्त है, संन्यास जिसकी आचार-संहिता है और समाधि जिसकी परिणति है। इसके बारह प्रमुख केन्द्र (ज्योतिर्लिंग) हैं और कई मन्दिर हैं, जहाँ दैनिक आयोजनों के रूप में शिव-तन्त्र का अभ्यास होता है।

3. शाक्त-तन्त्र, जो एक प्रकार से मूल वैदिक तन्त्र था, बाद में चलकर शक्ति-पूजा की शास्त्रीय पद्धति के रूप में विकसित हुआ। किन्तु उन्होंने पंच-मकार (मांस, मद्य, मीन, मधु, मैथुन – वैवाहिक या विवाहेत्तर यौन सम्बन्ध) और गुप्त मन्त्रों की प्राचीन परम्परा को नहीं छोड़ा। इसके चौंसठ शक्ति-पीठ या मुख्य केन्द्र हैं। इसके अतिरिक्त असंख्य मन्दिर हैं, जहाँ नित्य या विशेष



अवसरों पर शाक्त-तन्त्र की उपासना होती है। इस शाखा के चौंसठ तान्त्रिक ग्रन्थ भी हैं।

यही तान्त्रिक परम्परा पुनः वाम-मार्ग और दक्षिण-मार्ग में विभक्त हो गयी। यह विभाजन क्यों और कैसे हुआ? व्यक्ति शुद्ध रूप से एक ही मत का पालन नहीं कर पाता, वह हमेशा अपने पड़ोसी के विचारों से प्रभावित होता रहता है। कुछ शाक्तों ने भी शैव तंत्र की महिमा, शुद्धता, श्रेष्ठता और श्री का अनुभव किया, जिसकी विशेषता थी तपस्या, शुद्धता, योग और समाधि। इसके परिणामस्वरूप वे शक्ति की पूजा शैव-भाव से करने लगे और मांसादि से परहेज करने लगे। वे दक्षिण-तन्त्र के उपासक हुए। अन्य शाक्त अपने सामान्य ढंग से उपासना करते रहे और वे वाम-मार्गी या वाम-पंथी के रूप में जाने गये।

कुछ शैव शाक्तों के आचार से प्रभावित हुए। उन्होंने अपने तन्त्र में देवी आराधना को शामिल कर लिया, क्योंकि इसमें उन्हें अपनी भावनाओं और आकांक्षाओं की तुष्टि मिली। शिव के उपासकों से पशु-बलि आदि की अपेक्षा नहीं की जाती थी, परन्तु उन्होंने शैव-तन्त्र की परम्पराओं के साथ-साथ शाक्त-तन्त्र की परम्पराओं को स्वीकार किया और उसका अनुसरण करने लगे। भारत में अधिकतर लोगों ने सुषुप्त शक्ति के जागरण और उसे उच्च उद्देश्यों की ओर दिशान्तरित करने के निश्चित उद्देश्य से इन विभिन्न परम्पराओं को अपनाया।

तन्त्र-साधना ने पिण्ड और ब्रह्माण्ड, दोनों में पुरुष और प्रकृति की उपासना की एक अत्यन्त व्यवस्थित, वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक विधि दी है। पुरुष और प्रकृति, शिव और शक्ति से भिन्न नहीं हैं। शिव और शक्ति पदार्थ और ब्रह्माण्ड में सुषुप्त आध्यात्मिक और भौतिक ऊर्जा को ही प्रकट करते हैं। इनकी पूजा अध्यात्म जगत् में बहुत अधिक ग्रहणशीलता और जाग्रति लाती है, जिससे उपासक को अनन्त आशीष प्राप्त होते हैं। इसलिए

मन्त्र-शास्त्र तन्त्र-शास्त्र का आधार है। तान्त्रिक मन्त्र बहुत शक्तिशाली होते हैं और चेतना की विभिन्न अवस्थाओं को भेदने की क्षमता रखते हैं। तान्त्रिक पूजा केवल भक्तिपूर्ण नहीं होती, यह वैज्ञानिक भी होती है और इसे सजगतापूर्वक करना चाहिए।

शिव और शक्ति का अलग-अलग अस्तित्व भी है और संयुक्त अस्तित्व भी। वे सबकी परम-चेतना हैं। शिव और शक्ति की पूर्ण अभिव्यक्ति को योगी समाधि कहते हैं और वैष्णव विष्णु-दर्शन कहते हैं। शिव सभी में निर्गुण चेतना है और शक्ति उस चेतनता को धारण एवं अभिव्यक्त करने वाला पदार्थ है। शक्ति तीनों गुणों को निर्देशित करती है, जिससे व्यक्तिगत चेतना कार्य कर सके।

शक्ति माया और अविद्या भी है। जब साधक शक्ति को सन्तुष्ट या प्रसन्न करता है, तब वह वस्तुत: प्रत्याहार के मार्ग से प्रगति करता है। जब शक्ति प्रकट होती है तब मनुष्य की चित्तवृत्तियों का निरोध पूर्ण होता है। शक्ति उपासना की प्रक्रिया से उच्च चेतना की प्राप्ति आसानी से होती है।

तन्त्र सभी के लिये एक समतल रास्ता है, जिसमें निषेधात्मक कार्यों की सूची नहीं होती। विकास के अलग-अलग बिन्दुओं पर खड़े प्रत्येक व्यक्ति के लिए इसमें साधनाएँ हैं। वर्षों की साधना के बाद भी जिन्हें सफलता नहीं मिली है, वे सिद्धि के लिये तान्त्रिक मार्ग को अपना सकते हैं। निर्वाण तन्त्र में शिवजी पार्वती से कहते हैं, कलियुग में मोक्ष और आनन्द प्राप्त करने के लिए तन्त्र के अलावा और कोई उपाय नहीं है। जब मन शुद्ध न हो, आदतें खराब हो गई हों, वासनायें भड़क चुकी हों, ईश्वर में विश्वास केवल आदतवश हो और जीवन पूर्णतया भौतिकवादी हो गया हो, तब पूर्व और पश्चिम, दोनों देशों के आध्यात्मिक साधकों के लिये तन्त्र ही एकमात्र रास्ता है।

1967





शक्ति की उपासना विश्व की एक सबसे प्राचीन और व्यापक परम्परा है। शक्ति ऊर्जा या प्राण है, जिससे सभी क्रियाएँ संभव होती हैं। वास्तव में विश्व में सभी लोग शाक्त धर्म के मानने वाले हैं। वैज्ञानिक कहते हैं कि सभी चीजें ऊर्जा ही हैं और वह ऊर्जा सभी पदार्थों का मूल तत्त्व है। शाक्त दर्शन को मानने वाले यही बात प्राचीन काल से कहते आये हैं। वे यह भी कहते हैं कि यह ऊर्जा महाशक्ति की असीम शक्ति की सीमित अभिव्यक्ति है। शक्ति देवी हैं। मन शक्ति है। प्राण शक्ति है। संकल्प शक्ति है। जो सृष्टि का सृजन, पालन और संहार करने वाली परम सत्ता की उपासना भगवान के मातृ रूप में या शक्ति के रूप में करता है, वह शाक्त है।

– स्वामी शिवानन्द

प्राण-शक्ति सृष्टि का आधार है, कुण्डलिनी का आधार है, सभी मानवीय क्रियाओं, सभी जड़ और चेतन का आधार है। जब तक चेतना आध्यात्मिक जागरण के उच्चतम आयाम तक न पहुँच जाये, आप अपनी प्राण-शक्ति को विकसित करते हुए योग द्वारा इस आश्चर्यजनक शक्ति की अभिव्यक्ति की संभावना को बढ़ा सकते हैं।

– स्वामी सत्यानन्द

यह सम्पूर्ण विश्व शक्ति की ही अभिव्यक्ति है। ये असंख्य ब्रह्माण्ड देवी माँ के पावन चरणों की धूल मात्र हैं। उनकी महिमा अनिर्वचनीय है। उनका बल अवर्णनीय है। उनकी महानता अगाध है, सच्चे भक्तों पर वे कृपा की वर्षा करती हैं। वे जीवात्मा को एक चक्र से दूसरे चक्र, एक धरातल से दूसरे धरातल की ओर ले जाती हुई सहस्रार में शिव से मिलन कराती हैं।

– स्वामी शिवानन्द

कुण्डलिनी शक्ति

कुण्डलिनी शक्ति को जगाना मानव जीवन का प्रमुख उद्देश्य है। कुण्डलिनी हमारे शरीर में मेरुदण्ड के सबसे निचले हिस्से में, मूलाधार चक्र में सोई हुई एक गुप्त शक्ति है। कुण्डलिनी को जगाने के लिये योगाभ्यासों द्वारा तैयारी करनी पड़ती है। उसके बाद जब हम प्राणों के प्रवाह को कुण्डलिनी के निवास तक भेजने में सफल हो जाते हैं, तब इस शक्ति का जागरण होता है तथा यह प्रमुख नाड़ी, सुषुम्ना के माध्यम से मस्तिष्क तक पहुँचती है। कुण्डलिनी अपने ऊर्ध्व-गमन के समय उन सभी चक्रों से गुजरती है जो मस्तिष्क के विभिन्न निष्क्रिय हिस्सों से सम्बन्धित हैं। कुण्डलिनी जागरण के साथ ही मस्तिष्क में एक विस्फोट होता है, क्योंकि निष्क्रिय क्षेत्र सक्रिय होने शुरू हो जाते हैं। इस प्रकार कुण्डलिनी का सम्बन्ध मस्तिष्क के निष्क्रिय हिस्सों के जागरण से भी है।

सृष्टि के आरंभ से ही मनुष्य बहुत-सी अनुभवातीत घटनाओं का साक्षी रहा है। उसने यह जानना चाहा कि लोगों में इतनी भिन्नता का कारण क्या है। अन्वेषणों से उसे यह समझ में आया कि प्रत्येक व्यक्ति में शक्ति एक विशिष्ट रूप में निहित है। कुछ लोगों में यह शक्ति प्रसुप्त अवस्था में, कुछ में विकास के मार्ग पर और बहुत ही कम लोगों में यह जाग्रत अवस्था में रहती है। मूलत: मनुष्य ने इस शक्ति को देवी-देवताओं या दिव्य शक्तियों का नाम दिया। फिर उसने प्राण की खोज की और उसे प्राणशक्ति कहा। तंत्र में इसे ही कुण्डलिनी शक्ति कहा गया।

संस्कृत में 'कुण्डल' का अर्थ होता है, गोलाकार। इसलिए कुण्डलिनी की व्याख्या एक कुण्डली मारे हुए सर्प के रूप में की गयी। यह एक परम्परागत मान्यता है, परन्तु इसका अर्थ गलत समझा गया। 'कुण्डलिनी' शब्द 'कुण्ड'

से बना है, जिसका अर्थ होता है, कोई गहरा स्थान, छेद या गड्ढा। यहाँ कुण्ड का अर्थ है, वह खोखला गड्ढा जिसमें मस्तिष्क की स्थिति कुण्डली मार कर सोए हुए सर्प की भाँति है। यही कुण्डलिनी का वास्तविक अर्थ है। 'कुण्डलिनी' शब्द का तात्पर्य उस शक्ति से है जो गुप्त एवं निष्क्रिय अवस्था में है, किन्तु उस शक्ति के प्रकट होने पर अपनी अनुभूति के आधार पर उसे देवी, काली, दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी या अन्य किसी भी नाम से जाना जा सकता है।

विश्व की प्रत्येक रहस्यवादी तथा धार्मिक पद्धति ने उस अनुभूति का वर्णन अपने तरीके से किया है। कुछ ने उसे निर्वाण कहा है, दूसरों ने समाधि, कैवल्य, आत्मानुभूति, आत्मबोध, सायुज्य, स्वर्ग इत्यादि कहा है। अगर तुम अनेक संस्कृतियों और परम्पराओं की धार्मिक और रहस्यवादी कविताओं तथा साहित्यों को पढ़ो, तो तुमको सहस्रार के बारे में विस्तृत विवरण मिलेगा। किन्तु जिन प्रतीकों और पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया गया है, उनको समझने के लिए इन्हें चेतना की एक अलग अवस्था में पढ़ना होगा।

ईसाई परम्परा में बाइबिल में 'साधकों का पथ' और 'स्वर्ग का रास्ता' का वर्णन है, जिनका तात्पर्य यही है कि सुषुम्ना के माध्यम से कुण्डलिनी ऊपर की ओर बढ़ती है। कुण्डलिनी के आरोहण और अंततः अवतरित आध्यात्मिक शक्ति के अवरोहण को क्रॉस के द्वारा व्यक्त किया जाता है। यही कारण है कि ईसाई लोग आज्ञा, अनाहत और विशुद्धि चक्रों के स्थान पर क्रास का चिन्ह बनाते हैं। आज्ञा चक्र वह केन्द्र है जहाँ ऊर्ध्वगामी चेतना अपने श्रेष्ठतम स्तर पर होती है तथा अनाहत चक्र वह स्थान है जहाँ अवतरित शक्ति प्रकट होती है। आध्यात्मिक जीवन में जो कुछ होता है, वह कुण्डलिनी जागरण से सम्बन्धित है। किसी भी प्रकार के आध्यात्मिक जीवन का लक्ष्य कुण्डलिनी जागरण ही है।

यदि जागृत कुण्डलिनी को नियंत्रित न किया जा सके तो उसे 'काली' कहते हैं। किन्तु यदि उसे नियंत्रित कर उसका उपयोग लाभकारी उद्देश्यों के लिए किया जा सके और उसके कारण साधक शक्तिशाली बन जाए, तो यही शक्ति दुर्गा या पराचेतना कही जाती है। तन्त्र-शास्त्रों में कुण्डलिनी को आद्य शक्ति माना गया है। आधुनिक मनोविज्ञान की शब्दावली में इसे अचेतन कहा जा सकता है। पुराणों में कुण्डलिनी का वर्णन काली के रूप में है। शैव मत में कुण्डलिनी की अवधारणा को शिवलिंगम् के रूप में

दर्शाया गया है, जिसके चारों ओर एक सर्प लिपटा हुआ है।



सामान्यतया कुण्डलिनी को साढ़े तीन कुण्डली मारकर सोए हुए एक सर्प के रूप में दर्शाया जाता है। वास्तव में मूलाधार, सहस्रार या किसी भी अन्य चक्र में कोई सर्प नहीं है, वरन् चेतना की उच्च स्थिति को दर्शाने के लिये हमेशा सर्प का प्रयोग प्रतीक के रूप में किया जाता है। दुनिया की सभी प्राचीन संस्कृतियों में सर्प का वर्णन अवश्य आता है। तुमने भगवान शिव की तस्वीर में देखा होगा कि उनके गले, भुजाओं और कमर में सर्प लिपटे हुए हैं। काली भी सर्पों से विभूषित है और विष्णु भगवान तो सदा बड़ी कुण्डली मारे हुए शेषनाग पर ही शयन करते हैं। यह सर्प-शक्ति मनुष्य के अचेतन को प्रकट करती है।

स्कैण्डेनेविया, यूरोप, लैटिन अमेरिका एवं मध्य-पूर्व के देशों और विश्व की कई सभ्यताओं के स्मारकों एवं प्राचीन प्रतिमाओं में किसी-न-किसी रूप में सर्प-शक्ति की अवधारणा को दर्शाया गया है। इसका अर्थ है कि प्राचीन काल में विश्व के सभी भागों में लोगों को कुण्डलिनी का ज्ञान था। वस्तुत: हम कुण्डलिनी को जिस रूप में चाहें, समझ सकते हैं, क्योंकि प्राण का कोई रूप या आकार नहीं है; वह अनन्त है।

कुण्डलिनी एक शक्ति है जिसका प्रकटीकरण प्रत्येक चक्र में भिन्न-भिन्न प्रकार से होता है – पहले स्थूल नैसर्गिक रूपों में, फिर क्रमश: अधिक सूक्ष्म रूपों में। इस ऊर्जा के प्रकटीकरण को परिष्कृत कर इसे स्पन्द के उच्च और अधिक सूक्ष्म स्तरों तक ले जाने से मानव चेतना का उच्चतम शिखर तक आरोहण होता है।

कुण्डलिनी एक रचनात्मक शक्ति है। यह अपने आप को व्यक्त करने की शक्ति है। जिस प्रकार प्रजनन में इस शक्ति से एक नये जीवन का प्रारंभ होता है, उसी प्रकार आइंस्टीन जैसे व्यक्ति इसी ऊर्जा का उपयोग एक अलग ढंग से, अधिक सूक्ष्म आयाम में सापेक्षता के सिद्धान्त जैसे सिद्धान्तों के प्रतिपादन के लिए करते हैं। यह वही शक्ति है जो कर्णप्रिय संगीत की रचना करते समय

या वाद्ययंत्र बजाते समय अभिव्यक्त होती है। यही वह शक्ति है जो जीवन के सभी क्षेत्रों में व्यक्त होती है – चाहे वह व्यापार हो, पारिवारिक कर्तव्यों को निभाना हो या जीवन के लक्ष्य तक पहुँचना हो। ये सभी उसी रचनात्मक शक्ति की अभिव्यक्तियाँ हैं।

तन्त्र में सृष्टि के हर कण को शक्ति का केन्द्र माना गया है। यह शक्ति स्थिर चेतना के अन्तर्निहित तत्त्व की अभिव्यक्ति है। तान्त्रिक पद्धति का उद्देश्य है – शक्ति (व्यक्तिगत प्रकट शक्ति) का शिव (जड़, अन्तर्निहित सार्वभौमिक चेतना) से संयोग। जब उनका मिलाप होता है, उच्च चेतना का उदय होता है।

यदि आप शिव और शक्ति के योग का आनन्द उठाने के लिए, समाधि में प्रवेश करके ब्रह्माण्ड की पूर्णता का अनुभव करने के लिए तथा अपने अस्तित्व में निहित सत्य को जानने के लिये कुण्डलिनी जागरण करना चाहते हैं, तो कोई चीज आपके मार्ग में बाधा खड़ी नहीं कर सकती। कुण्डलिनी जागरण के माध्यम से प्रकृति के नियमों का पालन करते हुए भी आप अपने शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास की गति को बहुत अधिक तीव्र कर सकते हैं। एक बार इस महान् शक्ति के जागरण के बाद शरीर की प्रत्येक कोशिका कुण्डलिनी की उच्च प्राणशक्ति से भर जाती है। जब यह जागरण पूर्ण होता है तब मनुष्य एक छोटा भगवान हो जाता है, अर्थात् उसका स्वरूप दिव्य हो जाता है। कुण्डलिनी मानव जाति की आने वाली चेतना का प्रतिनिधित्व करती है। सभी को इस महान् शक्ति को जाग्रत करने का संकल्प लेना चाहिए।

1979



शक्ति और शिव का अवरोहण

जब कुण्डलिनी का अवरोहण होता है तब इसका तात्पर्य है कि मनुष्य के मानसिक स्तर पर निम्न मन के स्थान पर उच्च मन का नियंत्रण हो जाता है और मनुष्य निम्न मन से प्रभावित नहीं होता। यह उच्च चेतना हमारे शरीर, मन और इन्द्रियों पर शासन करती है और हमारे जीवन, विचारों एवं भावनाओं को दिशा देती है। शेष जीवन कुण्डलिनी के अधीन हो जाता है। यही अवरोहण की अवधारणा है।

शिव और शक्ति के सहस्रार में संयोग के परिणामस्वरूप मस्तिष्क के निष्क्रिय हिस्से सक्रिय हो जाते हैं, मस्तिष्क प्रकाशमान हो जाता है और व्यक्ति समाधि का अनुभव करता है। कुछ देर तक शिव और शक्ति एक-दूसरे में समाहित रहते हैं। इस समय एक-दूसरे की चेतना का ज्ञान पूर्णतः लुप्त रहता है। उस समय एक बिन्दु का प्रादुर्भाव होता है। बिन्दु का शाब्दिक अर्थ है – एक बूँद, और यही बिन्दु सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का मूल तत्त्व है। मनुष्य की बुद्धिमत्ता और सम्पूर्ण सृष्टि की संरचना इसी बिन्दु में निहित है। फिर यह बिन्दु दो भागों में विभक्त हो जाता है और शिव एवं शक्ति पुनः द्वैत रूप में प्रकट होते हैं।

आरोहण के समय तो केवल शक्ति ने ऊर्ध्वगमन किया, किन्तु जब अवरोहण होता है तब शिव और शक्ति, दोनों ही भौतिक स्तर पर आते हैं और पुनः द्वैत का ज्ञान रहता है। पूर्ण मिलन के पश्चात् जिस मार्ग से कुण्डलिनी का आरोहण हुआ था, वह उसी से वापस नीचे भी आती है। स्थूल चेतना सूक्ष्म होने के बाद पुनः स्थूल हो जाती है। ईश्वर-अवतार की धारणा के मूल में यही तथ्य है। समाधि के उच्च अनुभव के बाद पुरुष और प्रकृति या शिव और शक्ति पूर्णतः एकाकार होते हैं और केवल अद्वैत का अनुभव रहता है।

इस अवस्था में उसकी चेतना का स्तर एकदम अबोध, छोटे बच्चे की तरह हो जाता है। इस प्रकार समाधि की अवस्था में हम बच्चे बन जाते हैं।

भौतिक स्तर याने मूलाधार में वापस आने के पश्चात् शिव और शक्ति पुन: अलग हो जाते हैं और उनका अपना-अपना अस्तित्व रहता है। मूलाधार चक्र में द्वैतभाव रहता है। मन, इन्द्रियों और नाम-रूप के जगत् में द्वैत रहता है, किन्तु समाधि में द्वैत नहीं रहता। समाधि की अवस्था में कोई देखने वाला या अनुभव करने वाला नहीं होता। समाधि में कैसा अनुभव होता है यह कोई नहीं बता सकता, क्योंकि यह एक अद्वैत अनुभव है।

उच्चतम संयोग के पश्चात् शिव और शक्ति पुन: भौतिक स्तर पर क्यों वापस आते हैं, इसे समझना बहुत कठिन है। संसार को नष्ट करने के बाद पुन: सृष्टि क्यों? यदि चेतना को पहले वाली स्थिति में ही लाना है तो उसे परिवर्तित ही क्यों किया जाए? यदि कुण्डलिनी को पुन: मूलाधार में लौटाना है तो उसे जगाना और सहस्रार में शिव से मिलाना ही क्या जरूरी है? यह सब बड़ा ही रहस्यमय लगता है। हम तो यह भी कह सकते हैं कि कुण्डलिनी को जगाएँ ही क्यों।

यदि आप पहले ही जानते हैं कि किसी भवन को बनाते ही जला देना है तो फिर उसका निर्माण ही क्यों करते हैं? हम ऐसी कई वस्तुओं का निर्माण करते हैं, जिन्हें अंतत: नष्ट होना ही है। फिर हम ऐसा करें ही क्यों? कितना पागलपन लगता है। हम अनेक प्रकार की साधनाओं द्वारा चक्रों को पार कर धरा से स्वर्ग तक ऊर्ध्वगमन करते हैं। तत्पश्चात् जब हम स्वर्ग में पहुँचकर परम सत्ता से एक हो जाते हैं, तब अचानक धरती पर लौट आने का निर्णय लेते हैं। और हम अकेले ही नहीं आते, बल्कि साथ में उस परम सत्ता को लेकर लौटते हैं। यदि केवल शक्ति वापस आती और शिव स्वर्ग में ही रहते तो शायद कुछ समझ में भी आता। हो सकता है कि जब शक्ति वापस आने को तैयार होती है तब शिव कहते हैं, 'ठहरो, मैं भी तुम्हारे साथ ही चलता हूँ।'

आरोहण के पश्चात् जब शिव और शक्ति चेतना के स्थूल स्तर पर उतरते हैं, तब पुन: द्वैतभाव आता है। यही कारण है कि आत्म-साक्षात्कार प्राप्त व्यक्ति पीड़ा अथवा लोकाचारों को समझने में सक्षम होता है। जब मैं तेरह वर्ष का था, तब इन सब बातों से परेशान रहता था। उन दिनों मैं एक महिला संत के पास जाया करता था। ऐसा कहा जाता था कि उन्होंने आत्म-साक्षात्कार प्राप्त कर लिया था। मैं उन्हें अनेक सांसारिक और साधारण विषयों पर बातें करते सुनता था। जैसे, 'तुम कैसे हो? तुम्हारा बच्चा कैसा है? क्या

वह अस्वस्थ है? क्या उसे दवा दे रहे हो? तुम अपनी पत्नी से क्यों झगड़ते हो?' मैं सोचा करता था कि यदि इन्होंने आत्म-साक्षात्कार प्राप्त कर लिया है तो इन्हें द्वैत सम्बन्धी बातें नहीं करनी चाहिए। यदि ये अद्वैतावस्था में स्थित हैं तो इन्हें द्वैत की बातें कैसे समझ में आती हैं?

मुझे इन प्रश्नों का कोई उत्तर तो नहीं मिला, किन्तु प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में अनुभव के कुछ क्षण आते हैं और मेरे जीवन में भी आये। मेरी समझ में आने लगा कि शिव और शक्ति, दोनों ही स्तरों पर रहते हैं और भौतिक स्तर पर उनके स्वरूप एवं संयोग की ही एक अभिव्यक्ति द्वैत है। यही कारण है कि महान् संत और महात्मा परोपकार, करुणा और प्रेम आदि के विषय में बातें करते रहे हैं। किन्तु, एक समय ऐसा भी आता है जब वे न इन चीजों को समझ पाते हैं और न परवाह ही करते हैं। उन्हें यह समझ में नहीं आता कि ये सब क्या हो रहा है, कौन सुखी है और कौन दु:खी।

परन्तु अंतत: एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन होता है। सामान्य रूप से शक्ति पदार्थ को और शिव चेतना को नियंत्रित करते हैं, और आरोहण के बाद जब वे पुन: भौतिक स्तर पर आते हैं तब शक्ति तो पदार्थ को ही संचालित करती है, किन्तु शिव की भूमिका होती है – सारे संसार को ज्ञान प्रदान करना। इसलिए यदि हम कभी किसी आत्मज्ञान प्राप्त व्यक्ति को जीवन के प्रपंचों के विषय में बातें करते देखें तो हमें आश्चर्यचकित नहीं होना चाहिए।

1980



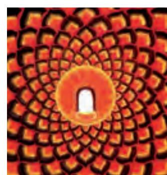
चक्रों में देवी

मनुष्य का जीवन जिस ऊर्जा पर टिका हुआ है, उसे शक्ति या देवी के नाम से जाना जाता है। कुण्डलिनी शक्ति, जिसका वर्णन शास्त्रों में कुल-कुण्डल या मातृयोनि के रूप में किया गया है, मूलाधार चक्र में उल्टे त्रिकोण के रूप में निवास करती है। *कुल* का मतलब है शक्ति और *कुण्ड* का अर्थ है स्रोत या योनि। व्यक्ति के सूक्ष्म शरीर में स्थित छ: चक्र प्रमुख अतीन्द्रिय या शक्ति केन्द्र हैं। कुल कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार में शारीरिक चेतना, स्वाधिष्ठान में बाह्य स्वाद की चेतना, मणिपुर में बाह्य दृष्टि, अनाहत में बाह्य स्पर्श, विशुद्धि में बाह्य ध्वनियों तथा आज्ञा चक्र में अन्दरूनी मानसिक प्रवृत्तियों की चेतना को पार करती हुई अन्तत: सहस्रार में परम शिव से मिलती है।

तन्त्र तथा योग में, चक्रों को कमल के फूलों के रूप में दर्शाया गया है। प्रत्येक फूल का एक निश्चित रंग एवं पंखुड़ियों की एक निश्चित संख्या, यन्त्र, बीज मन्त्र, प्रतीकात्मक पशु तथा उच्च चेतना की प्रतीक देव और देवी हैं। छ: चक्रों की अधिष्ठात्री देवियाँ डाकिनि, राकिनि, लाकिनि, काकिनि, शाकिनि तथा हाकिनि हैं।

मूलाधार चक्र की देवी डाकिनि हैं, जिनकी चार भुजाएँ तथा चमकती हुई लाल आँखें हैं। वे एक साथ उगते हुए बहुत से सूर्यों के प्रकाश की तरह उज्ज्वल हैं। वे शाश्वत शुद्ध बुद्धि की वाहिनी हैं। हाथी की तरह सिर वाले गणेशजी देव हैं। वे उल्टे त्रिकोण के शिखर पर, मन्त्र के ऊपर, बिन्दु में निवास करते हैं। गहरे लाल रंग का उल्टा त्रिकोण शक्ति या सृजनात्मक ऊर्जा का प्रतीक है, जो हर प्रकार के निर्माण एवं विविधता के लिये उत्तरदायी है।

स्वाधिष्ठान चक्र में मन्त्र के बिन्दु के भीतर राकिनि अथवा सरस्वती देवी निवास करती हैं। राकिनि का रंग नीले कमल जैसा है और वे दिव्य वस्त्र तथा आभूषण पहने हुई हैं। अपनी ऊपर उठी हुई भुजाओं में उन्होंने बहुत से शस्त्र धारण किए हुए हैं और अमृतपान से उनका मन हर्षित है। वे वनस्पति जगत् की देवी हैं। ब्रह्मा देव हैं।





मणिपुर चक्र में बिन्दु के भीतर देवी लाकिनि या लक्ष्मी का निवास है। वे सभी का हित करने वाली हैं। उनकी चार भुजाएँ हैं, उनका रंग श्याम और शरीर उज्ज्वल है। उनका शरीर पीले रंग के वस्त्रों एवं विविध आभूषणों से सुसज्जित है और वे अमृतपान से हर्षित हैं। रूद्र देव हैं।



अनाहत चक्र की देवी काकिनि हैं, जिनका रंग पीला, तीन आँखें व चार भुजाएँ हैं। वे मंगलकारी और प्रसन्न मुद्रा में हैं। ईश देव हैं। एक-दूसरे में फँसे हुए दो त्रिकोण शिव और शक्ति के मिलन के प्रतीक हैं।



विशुद्धि चक्र की देवी शाकिनि हैं, जो चन्द्र क्षेत्र से नीचे बहते अमृत के सागर से भी पवित्र हैं। उनके वस्त्र पीले हैं और अपने चार हाथों में वे धनुष, तीर, रस्सी का जाल एवं फन्दा पकड़े हुए हैं। सदाशिव देव हैं।



आज्ञा चक्र में शुद्ध मन वाली देवी हाकिनि है, जिनके छः चेहरे बहुत से चन्द्रमा की तरह प्रकाशमान हैं, और जो अमृत की बूदों को पीकर प्रसन्न हो रही हैं। परमशिव आज्ञा चक्र के देव हैं। उल्टा त्रिकोण शक्ति का प्रतीक है।



जब कुण्डलिनी शक्ति सहस्रार पहुँचती है, तब इसे शिव और शक्ति का मिलन कहते हैं। जब शक्ति और शिव का मिलन होता है, तब कुछ शेष नहीं रह जाता। दोनों का एक-दूसरे में योग हो जाता है और उन्हें अलग-अलग शक्तियों के रूप में नहीं पहचाना जा सकता। सभी में एक मातृ-शक्ति सो रही है। उस शक्ति को अवश्य जागृत किया जाना चाहिए।



1975

अनन्त शक्ति

तन्त्र के अनुसार पदार्थ और ऊर्जा अलग-अलग प्रतीत होते हैं, किन्तु इन दोनों का परस्पर रूपान्तरण हो सकता है। पदार्थ ऊर्जा का रूप धारण कर सकता है और ऊर्जा पदार्थ में संघनित हो सकती है। सृष्टि को बनाए रखने के लिए पदार्थ एवं ऊर्जा, दोनों का होना आवश्यक है। जब पदार्थ और ऊर्जा में परस्पर क्रिया होती है, तभी सृष्टि होती है और माया का जन्म होता है।

तंत्र शास्त्र में ऊर्जा को शक्ति कहते हैं, जिसका संस्कृत में शाब्दिक अर्थ होता है – 'वह जिसमें किसी भी चीज को प्राप्त करने की क्षमता हो।' तन्त्र में शक्ति के पूरक हैं 'शिव'। तन्त्र दर्शन के अनुसार शक्ति और शिव क्रमश: पदार्थ और चेतना के प्रतीक हैं। आधुनिक विज्ञान में चेतना, पदार्थ और ऊर्जा की अवधारणाएँ हैं। उच्च चेतना के रूप में शिव कण-कण में समाए हुए हैं। शक्ति स्रष्टा है, और पदार्थ इस शक्ति के द्वारा ही अस्तित्व में आता है।

हठ योग दर्शन के अनुसार इड़ा और पिंगला नाड़ियाँ इस भौतिक शरीर में क्रमश: चेतना या चित्तशक्ति और ऊर्जा या प्राणशक्ति की प्रतीक हैं। चेतना और शक्ति की पारस्परिक क्रिया को ही जीवन कहते हैं। शक्ति अनन्त है, असीम है। जब आप पदार्थ का अतिक्रमण करते हैं तब आपको अनन्त शक्ति का ज्ञान होता है, परन्तु जब आप नीचे उतर कर पदार्थ के स्तर पर आते हैं तो शक्ति बहुत ही सीमित मात्रा में आपको भासती है। शरीर, मन, इन्द्रियाँ, कर्म, शरीर धारण करना तथा सम्पूर्ण जीवन, ये सब मिलकर शक्ति के अनुभव को सीमित कर देते हैं।

हम अपने मन के कारण, अपनी शारीरिक समस्याओं के कारण उस असीम शक्ति तक पहुँचने में असमर्थ हो जाते हैं। अत: उस असीम और

अनन्त शक्ति का अनुभव प्राप्त करने के लिए हमें इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि, अहंकार, इन सभी का अतिक्रमण करना होगा। जैसे-जैसे आप इनका अतिक्रमण करते जायेंगे, वैसे-वैसे आपको अनन्त शक्ति का प्रत्यक्ष अनुभव होता जाएगा। शक्ति अनेक क्षेत्रों में प्रकट होती है। यह आध्यात्मिक शक्ति या आत्म-शक्ति के रूप में ही नहीं, बल्कि विभिन्न स्वरूपों में अभिव्यक्त होती है। क्रोध, उत्तेजना, मानसिक शान्ति, भूख, इच्छाएँ, क्षमा, परोपकार, जीवन, ये सभी शक्ति की ही अभिव्यक्तियाँ हैं।



अत: शक्ति को केवल आध्यात्मिक शक्ति के रूप में ही नहीं जानना चाहिए। हालाँकि हम इसे आध्यात्मिक शक्ति कहते हैं, परन्तु इस संसार में जो भी दृश्यमान वस्तुएँ हैं, सबसे छोटे कण से लेकर सबसे बड़े आकार वाले सूर्य एवं चन्द्रमा तक, वे केवल शक्ति की अभिव्यक्तियाँ हैं। यदि शक्ति को अलग कर दिया जाय तो पदार्थ का अस्तित्व ही नहीं रह जाएगा। ऊर्जा के बिना पदार्थ का अस्तित्व नहीं हो सकता, यह तंत्र का पहला सिद्धान्त है। यदि शक्ति न हो तो सृष्टि भी नहीं होगी। यदि शक्ति न हो तो सांसारिक चेतना भी नहीं रहेगी। अत: केवल अध्यात्म जीवन में ही नहीं, बल्कि जीवन के हर क्षेत्र में शक्ति का अनुभव करना चाहिए। शक्ति असीम है।

प्रकृति की एक स्वचालित चिरंतन प्रक्रिया है। प्रकृति के स्वाभाविक नियमों के अनुसार ऊर्जा ही पदार्थ में परिणत होती है और पदार्थ ऊर्जा में। प्रकृति की यह प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। सृष्टि की क्रिया, अभिव्यक्ति की क्रिया इस तरह निरन्तर अक्षुण्ण रखी जाती है। सत्त्व, रजस् और तमस्, ये तीन गुण सम्पूर्ण प्रक्रिया को नियंत्रित करते हैं। सत्त्व माने संतुलन, रजस् माने गतिशीलता और तमस् माने प्रसुप्त ऊर्जा। इन तीन गुणों के कारण ही ऊर्जा का रूपान्तरण पदार्थ में होता है और पदार्थ पुन: ऊर्जा में परिणत हो जाता है। यह क्रिया लगातार एक चक्र, एक क्रम की तरह स्वयमेव होती रहती है। हम जानते भी नहीं हैं कि यह घटित हो रही है, किन्तु यह क्रिया हमारे शरीर में भी हो रही है।

जब आप आध्यात्मिक जीवन की ओर उन्मुख होते हैं और आपको अपूर्व आध्यात्मिक अनुभव होने लगते हैं, तब क्या होता है? तब आप अधिक से अधिक शक्ति का उपयोग अपने आन्तरिक जीवन के विकास के लिए करते हैं और इस शक्ति को पदार्थ में परिणत होने नहीं देते हैं। सामान्य रूप से शक्ति हमेशा पदार्थ में अपने आप परिणत होती रहती है, किन्तु जब आप गुरु के पास जाते हैं या आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश करते हैं, अथवा ध्यान, इत्यादि करते हैं तो इन विधियों से प्रकृति की उपर्युक्त क्रिया रुक जाती है। इस शक्ति का उपयोग तब आन्तरिक अनुभूति के लिए किया जाता है। अन्तरानुभूति या आत्मज्ञान तथा समाधि शक्ति का आध्यात्मिक चेतना में रूपान्तरण मात्र है। अत: शक्ति अनन्त है, यह सीमित नहीं है।

1982



ब्रह्माण्डीय शक्ति मनुष्य शरीर में कुण्डलिनी और प्राण के रूप में अभिव्यक्त होती है। गतिशील प्राण-शक्ति का निश्चल आधार कुण्डलिनी है। कुण्डलिनी आदिशक्ति है, जो मूलाधार चक्र में प्रसुप्त, प्रच्छन्न अवस्था में पड़ी रहती है। सभी जैव और अजैव पदार्थों के आधार रूप में यह एक विद्युतशक्ति है, प्रचण्ड, गुप्त, शक्तिशाली आदिशक्ति है। इसकी आकृति कुण्डलिनी मारे सर्प के समान है। कुण्डलिनी एक प्रसुप्त आध्यात्मिक शक्ति है। कुण्डलिनी की जागृति और सहस्रार में उसके शिव से संयोग से समाधि की अवस्था प्राप्त होती है।

एक रहस्यमय शक्ति, एक रहस्यमय वाणी कदम-कदम पर तुम्हारा मार्गदर्शन करेगी। देवी माँ पर पूर्ण और अटल विश्वास रखो। वही साधकों को मार्गदर्शन देती है। उसकी कृपा के बिना अपने उत्थान की प्रक्रिया में तुम एक इंच भी आगे नहीं बढ़ सकते।

– स्वामी शिवानन्द

तन्त्र मातृशक्ति के प्रति समर्पण का शुद्ध विज्ञान है। तन्त्र में हम भगवान को मातृ-रूप में देखते हैं। भगवान को माँ ही होना चाहिए, क्योंकि माँ ही सृजन कर सकती है। वह गत्यात्मक शक्ति है। वही रक्षक भी है और संहारक भी। उसके ही आदेश से ग्रह-नक्षत्र, मानव और सारी सृष्टि चलती है।

– स्वामी सत्यानन्द

शिव की शक्ति को उनकी अर्द्धांगिनी, शक्ति, दुर्गा या काली के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। जैसे पति-पत्नी परिवार की सुख-सुविधाओं का ख्याल रखते हैं, उसी प्रकार शिव और शक्ति जगत् के कार्यों की देखभाल में लगे रहते हैं।

– स्वामी शिवानन्द

नारी और तंत्र

तंत्र में शक्ति के दो महत्त्वपूर्ण ध्रुव – शिव और शक्ति माने गये हैं। वस्तुत: शिव और शक्ति ब्रह्माण्ड तथा प्रत्येक व्यक्ति में विभिन्न रूपों में क्रियाशील रहते हैं। साधारण मानव समाज में पुरुष और स्त्री क्रमश: शिव और शक्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं। सार्वभौमिक चेतना में काल तथा देश, शिव और शक्ति पक्षों का निरूपण करते हैं। आध्यात्मिक जीवन में मन और प्राण, शिव और शक्ति के प्रतिरूप हैं। हठ योग से सम्बन्धित शास्त्रों में इन दोनों शक्तियों का उल्लेख इड़ा और पिंगला के रूप में किया गया है। इड़ा को चेतना का और पिंगला को जीवनी शक्ति या प्राण का प्रतिनिधि माना गया है।

ये दोनों शक्तियाँ ऊर्जा के दो विपरीत ध्रुव हैं। सामान्यतया ये दोनों कभी एक नहीं होतीं, किन्तु सृजन के क्षणों में ये एक बिन्दु पर एक-दूसरे में समाहित हो जाती हैं। सार्वभौमिक चेतना में काल और देश जब नाभिक या केन्द्र पर आकर मिलते हैं और उनका आपस में विलय होता है, तब पदार्थ में विस्फोट होता है। यहाँ काल को धनात्मक ऊर्जा और देश को ऋणात्मक ऊर्जा द्वारा दर्शाया गया है।

साधारण मानव समाज में पुरुष और स्त्री शक्ति के दो भिन्न ध्रुव हैं। प्राचीन तन्त्र परम्परा में शक्ति के इन ध्रुवों का विस्तृत विवेचन किया गया है। सम्भवत: आपने एक चित्र देखा होगा, शिव जमीन पर चित लेटे हुए हैं और लगभग पूरी तरह नग्न काली का एक पैर उनके शरीर पर है। काली की मुद्रा भयंकर है। रक्तरंजित जिह्वा और गले में एक सौ आठ मुण्डों की माला। यह काली की जाग्रत अवस्था है। हो सकता है आपने एक अत्यन्त दुर्लभ चित्र भी देखा हो, जिसमें शिव पद्मासन में बैठे हुए हैं। इसमें उनका आधा शरीर शिव का और आधा शरीर शक्ति का है। एक और चित्र में आपने शिव को

गुरु एवं पार्वती को शिष्या रूप में बैठे देखा होगा। शिव पद्मासन में बैठे हुए हैं और पार्वती नीचे की वेदी पर आसीन। यहाँ शिव तंत्र के रहस्यों का उद्घाटन कर रहे हैं। ये तीन उदाहरण हुए। एक चौथा उदाहरण भी है जिसके विषय में आपने सुना होगा। मुंगेर से लगभग एक सौ मील दूर स्थित तंत्र का एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र है, तारापीठ। यहाँ आप देखेंगे कि शिव शक्ति का स्तन-पान कर रहे हैं।

विकास और जागृति के विभिन्न स्तरों पर शिव तथा शक्ति के ये विभिन्न सम्बन्ध हैं। एक स्थिति में शक्ति शिष्या है और शिव गुरु हैं, अर्थात् स्त्री शिष्या है और पुरुष गुरु है। दूसरे स्तर पर दोनों में कोई अन्तर नहीं है, शिव और शक्ति एक दूसरे से संयुक्त हैं – एक शरीर, एक आकार और एक मनोभाव में संयुक्त हैं। विकास का एक अन्य स्तर है जहाँ शक्ति सर्वोपरि है और शिव उनके अनुयायी। ये सब प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर सहज रूप से विद्यमान रहने वाली शक्ति के जागरण की अवस्थाओं की दार्शनिक व्याख्याएँ हैं।

जहाँ तक तंत्र दीक्षा का सम्बन्ध है, तांत्रिक परम्परा के अनुसार स्त्री को पुरुष से श्रेष्ठ माना गया है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि सामाजिक स्तर पर ऐसा कोई दावा किया जा सकता है। यह तो उच्च चेतना के विकास से सम्बन्धित विशुद्ध आध्यात्मिक दृष्टिकोण है। निश्चय ही नारी शरीर, उसकी भावनाएँ और उसकी चेतना का विकास, पुरुष की अपेक्षा श्रेष्ठतर है। पुरुष शरीर की अपेक्षा नारी शरीर में आध्यात्मिक शक्ति, अर्थात् कुण्डलिनी का जागरण अत्यधिक सरलता से होता है।

इसके अतिरिक्त हमें एक और महत्त्वपूर्ण बात ध्यान में रखनी चाहिए। सामान्यत: एक पुरुष जब चेतना की गहराइयों में प्रवेश करता है और पुन: वापस आता है तब वह उन अनुभवों को अपने साथ लौटा लाने में सक्षम नहीं होता, परन्तु स्त्री ऐसा कर पाती है। मुझे ऐसा लगता है कि स्त्री की आन्तरिक एवं बाह्य जागरूकता में बहुत कम अन्तर होता है। जब पुरुष अपनी चेतना में बहुत गहरे उतरते हैं तो उन्हें कुछ अनुभव होते हैं। किन्तु जब वे मन की सूक्ष्म अवस्था से जागरूकता की स्थूल स्थिति में वापस आते हैं तब उन सूक्ष्म अनुभवों और चेतन मन के बीच एक आवरण पड़ जाता है। स्त्री के साथ ऐसा नहीं होता। इसके साथ ही स्त्री की मानसिक चेतना आध्यात्मिक सजगता से बहुत अधिक आवेशित रहती है। किसी स्त्री या बालिका की जो बाह्य अभिव्यक्ति आप देखते हैं, वास्तव में वह सौन्दर्य के



प्रति उसके प्रेम, उसकी सौम्यता, संवेदनशीलता, सहृदयता, समझ आदि की आन्तरिक अभिव्यक्ति होती है। मैं प्राय: विनोदपूर्वक कहता हूँ कि यदि इस संसार में स्त्रियाँ न रहें तो यह संसार एक मरुभूमि के समान हो जायेगा। यहाँ न रंग होंगे, न सुगन्ध होगी, न मुस्कान होगी और न ही सौन्दर्य होगा। यह इंगित करता है कि स्त्री की आन्तरिक सजगता अत्यन्त सुग्राह्य होती है और विस्फोट के लिए सदा प्रस्तुत!

कुण्डलिनी योग के क्षेत्र में भी नारी शरीर एक विशेष केन्द्र के द्वारा आविष्ट रहता है। पुरुष शरीर में मूलाधार चक्र अन्य अनेक आन्तरिक अंगों की भीड़ के बीच जटिल रूप से स्थित होता है। पुरुष मूलबन्ध का अभ्यास करते हैं, किन्तु कोई परिवर्तन नहीं होता। इसके विपरीत स्त्री के शरीर में स्थित

मूलाधार को अंगुली के स्पर्श द्वारा अनुभव किया जा सकता है। इसलिए स्त्री शरीर में जागरण अधिक शीघ्रता से हो सकता है।

एक महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि स्त्री सदा से शक्ति की वाहिका रही है और पुरुष महज एक माध्यम। एक स्त्री केवल आपकी पत्नी ही नहीं होती, वह आपकी माता, पुत्री या शिष्या भी हो सकती है। मरियम, ईसा मसीह की माता थी। श्री अरविन्द आश्रम की 'माँ' एक शिष्या थीं। इसी प्रकार तांत्रिक परम्परा में चौंसठ योगिनियों की कथा का वर्णन है। शाब्दिक दृष्टि से 'योगिनी' योगी का स्त्रीलिंग रूप है। इन योगिनियों की पूजा पूरे भारत में होती है। स्त्री शक्ति के चौंसठ रूपों के लिए चौंसठ मन्दिर हैं। उनमें से एक आसाम में और दूसरा कलकत्ता में काली घाट में स्थित है।

जब हम तन्त्र की पुस्तकों को पढ़ते हैं, तो तन्त्र का मूल विषय स्पष्ट रूप से समझ में आता है – शक्ति सृजनकर्ता है और शिव माध्यम। शिव को कभी स्रष्टा नहीं माना गया। वाम मार्ग में शक्ति को ही महत्त्वपूर्ण माना गया है, केवल यौन सम्बन्धी जीवन में नहीं, बल्कि आध्यात्मिक अभ्यासों में, सृजनात्मक प्रक्रियाओं में और आध्यात्मिक अनुष्ठानों में भी। हिन्दुओं के सभी अनुष्ठान, चाहे धार्मिक हों या अन्य, मुख्यत: स्त्रियों द्वारा ही सम्पन्न किए जाते हैं, पुरुष केवल उनका साथ देते हैं। स्त्री कर्ता होती है और पुरुष उसका सहभागी।

वाम मार्ग अध्यात्म का वह मार्ग है जिसमें अपने साथी के साथ चला जा सकता है। इसका दूसरा विभाग कौलाचार कहलाता है। इसके अन्तर्गत माता अपने पुत्र को दीक्षा देती है। इस प्रकार की दीक्षा का केन्द्र विशेष रूप से बिहार के उत्तरी भाग में स्थित है। उत्तर में नेपाल की सीमाओं तक, पूर्व में आसाम और पश्चिम में उत्तरप्रदेश के क्षेत्रों में कौलाचार दीक्षा आज भी प्रचलित है। इस परम्परा के अनुसार माता अपने पुत्र के लिए एक देवी के समान होती है। जिस प्रकार ईसाई प्रत्येक रविवार को गिरिजाघर जाते हैं, हिन्दू हर सुबह मन्दिर जाकर अपने देवी-देवता के सम्मुख नतमस्तक होते हैं या किसी विशेष प्रकार की पूजा करते हैं, ठीक उसी प्रकार के भाव के साथ पुत्र अपनी माता के पास जाता है। यह सम्मान वैसा नहीं जो सामाजिक मान्यताओं पर आधारित हो, बल्कि यह एक आध्यात्मिक आराधना है। पुत्र मात्र इसलिए सम्मान नहीं करता कि वह उसकी माता है, बल्कि इसलिए कि वह उसकी गुरु है।

ऐसा ही वाम मार्ग में भी होता है, किन्तु इसमें वह पुत्र नहीं, बल्कि एक सहभागी होता है, जो स्त्री के सम्मुख साष्टांग प्रणत होता है और तब स्त्री उसे आध्यात्मिक प्रतीक या आशीर्वाद सूचक प्रतीक प्रदान करती है। यह क्रिया स्त्री द्वारा पुरुष के लिए की जाती है, पुरुष द्वारा स्त्री के लिए नहीं।

इस प्रकार तंत्र में स्त्री की ये दो महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ हैं। तंत्र में स्त्री को केवल यौनाचार में साझीदार समझना एक दु:खद भूल है। यौन जीवन महत्त्वपूर्ण है, किन्तु पुरुष और स्त्री के बीच केवल यही एक सम्बन्ध नहीं होता। आखिर आपकी माता, पुत्री, पत्नी, सभी तो स्त्रियाँ ही हैं।

तंत्र में दीक्षा देने की भूमिका पुरुष के स्थान पर स्त्री को प्राप्त होती है। रामकृष्ण परमहंस ने अपनी पत्नी शारदा को सदा देवी माना। संस्कृत में देवी का अर्थ होता है प्रबुद्ध, प्रदीप्त या ज्योतिर्मय। जब रामकृष्ण का विवाह हुआ तब वे अल्पवयस्क थे और उनकी पत्नी तो बालिका ही थीं, किन्तु वे सदैव उन्हें देवी मानते रहे। उन्होंने उनके प्रति उसी प्रकार का व्यवहार किया और उसी रूप में माना।

विकास की योजना में शक्ति पहले आती है और शिव उनके बाद। यदि आप इस भाव के साथ आध्यात्मिक मार्ग पर चलते हैं, तो चाहे यह भाव अपनी पत्नी के प्रति हो या पुत्री अथवा शिष्या के प्रति हो, आपको प्रत्येक क्षेत्र में उसे एक सक्रिय कारक और स्वयं को मात्र उसका सहयोगी मानना होगा। यदि पुरुष उच्च चेतना की अवस्था तक पहुँच भी जाता है, तो भी उसके लिए बिना किसी स्त्री की सहायता के अपनी अनुभूतियों को अन्य लोगों तक सम्प्रेषित कर पाना कठिन होता है।

तन्त्र के सम्बन्ध में हमें एक और बात याद रखनी चाहिए कि इसका एक अन्य मार्ग भी है जिसे दक्षिण मार्ग या वैदिक तन्त्र कहा जाता है। इसमें पुत्री या माता या पत्नी या अन्य किसी रूप में स्त्री की आवश्यकता नहीं होगी, क्योंकि यह माना जाता है कि इस मार्ग पर चलने वाले साधक के अन्दर दोनों शक्तियाँ विद्यमान हैं। इड़ा स्त्री और पिंगला पुरुष शक्ति है। मन और प्राण का मिलन स्त्री और पुरुष के मिलन के समान माना जाता है। हठ योग की यही परिकल्पना है।

इड़ा शक्ति है और पिंगला शिव। जब ये दोनों आज्ञाचक्र में मिलते हैं तो वास्तविक मिलन होता है। शक्ति मूलाधार में स्थित होती है। शिव सहस्रार में आसीन होते हैं। यहाँ शिव निष्क्रिय, निर्लिप्त, निराकार और नामरहित होकर

अनन्त योगनिद्रा में रहते हैं। सृजन या विनाश से उनका कोई सम्बन्ध नहीं होता। इस अवस्था में उनकी चेतना समरूप और सम्पूर्ण होती है। सहस्रार में कोई कम्पन या स्पन्दन नहीं होता। शक्ति मूलाधार में होती है और आप योग के अभ्यास से उसे जाग्रत करते हैं। जाग्रत होकर वह सुषुम्ना से होती हुई आज्ञा चक्र तक पहुँचती है। शक्ति के आज्ञा चक्र में पहुँचने पर दोनों का मिलन होता है।

जब दो विपरीत ऊर्जाएँ एक-दूसरे के निकट आती हैं, तब मिलन होता है। जब आप स्विच दबाते हैं तो बिजली का प्रकाश जल उठता है, क्योंकि बिजली के तारों का सम्बन्ध स्विच से होता है। उसी प्रकार जब आज्ञा चक्र में मिलन होता है तो उसके साथ ही एक विस्फोट होता है। इसके फलस्वरूप आज्ञा चक्र में उत्पन्न शक्ति सहस्रार तक जाती है। वहाँ शिव और शक्ति का मिलन होता है और तब शिव नृत्य प्रारम्भ कर देते हैं। शायद आपने नटराज का चित्र देखा होगा। वह जाग्रत शिव की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है।

अपनी गहन योगनिद्रा से जब शिव जागते हैं तब वे नृत्य आरम्भ करते हैं। मैं यहाँ शरीरधारी शिव की नहीं, बल्कि एक शक्ति की चर्चा कर रहा हूँ। शिव का नर्तक रूप 'नटराज' मनुष्य में उसी शक्ति के जागरण का प्रतीक है। तत्पश्चात् शिव और शक्ति का उसी मार्ग से मूलाधार तक अवरोहण होता है। दोनों संयुक्त रूप से सांसारिकता के स्थूल स्तर पर उतर आते हैं। यही वह मार्ग है जिसके माध्यम से सन्त गण समय-समय पर हम लोगों तक आते हैं। यदि आप कभी श्री अरविन्द का दर्शन पढ़ेंगे तो शक्ति का जागरण, शिव से उनका मिलन, दोनों के युगल नृत्य और फिर हमारे अस्तित्व के स्तर पर उनके अवतरण को समझ पायेंगे। इसीलिए क्रिया योग में आरोहण और अवरोहण के दो मार्ग बतलाए गए हैं।

आध्यात्मिक क्षेत्र में स्त्री की भूमिका तो पारिभाषित की गई, किन्तु आधुनिक संस्कृतियों में स्त्रियों की स्थिति इससे बहुत अलग है। यदि आप स्त्रियों की प्राचीन सम्माननीय स्थिति को पुन: वापस लाना चाहते हैं, तो आपको अपने दृष्टिकोण में पूरी तरह परिवर्तन लाना होगा। वस्तुत: सामाजिक संरचना को धार्मिक वास्तविकताओं की नयी अवधारणा का ऐसा आधार देना होगा, जिसमें मनुष्य के आध्यात्मिक विकास में स्त्री की भूमिका को अच्छी तरह समझा और स्वीकार किया गया हो। नये समाज के आविर्भाव के लिए यह परम आवश्यक है।

1980

नारी और संन्यास

अनन्तकाल से विश्व की विभिन्न संस्कृतियों में स्त्रियों को पुरुषों के प्रभुत्व में रहना पड़ा है। बीसवीं शताब्दी में स्त्रियों को समानता का जो मौलिक अधिकार मिला है, वह इसके पूर्व तक नहीं था। विश्व के अनेक धर्मों में स्त्रियों को उच्च आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश की मनाही थी। शायद पुरुष अपने भौतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए स्त्रियों का शोषण करना चाहते थे। यदि स्त्रियों को आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करने की अनुमति दी जाती या उन्हें अपनी सजगता को उन्नत करने के लिए प्रेरित किया जाता तो उनका उपभोग या शोषण संभव नहीं होता। इसलिए स्त्रियों को घर की सीमा में बाँध दिया गया; उनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य था – पति की सेवा करना और संतान उत्पन्न करना। वे परिस्थितियों की इस प्रकार से मानसिक गुलाम हो गयीं कि वे कल्पना भी नहीं कर पाती थीं कि अपने शोषण का प्रतिकार भी किया जा सकता है।

वैदिक शास्त्रों में स्त्रियों को पुरुषों से भिन्न आध्यात्मिक स्थिति में रखा गया था। उन्हें पुरुषों के समान आध्यात्मिक जीवन या संन्यास को सामान्य जीवन के विकल्प के रूप में चुनने का अधिकार नहीं था। इसलिए भारतीय संस्कृति में महान् स्त्री सन्तों, कवयित्रियों, दार्शनिकों एवं भक्तों की बहुलता होने पर भी उनमें अधिकतर विवाहिता थीं, और संन्यासी तो नगण्य ही थीं।

यद्यपि वैदिक संस्कृति में स्त्रियों को आध्यात्मिक जीवन का अधिकार नहीं के बराबर था, तांत्रिक संस्कृति, जो वैदिक संस्कृति के बाद आई, उसमें स्त्रियों के सम्बन्ध में भिन्न मत थे। तांत्रिक संस्कृति में स्त्रियों को सर्वोच्च माना जाता था। वे ही गुरु भी होती थीं और प्रेरक भी, किन्तु सामाजिक स्तर पर ऐसा दावा नहीं किया जा सकता। केवल चेतना के विकास के संदर्भ में ऐसा होता था।



यदि आप आध्यात्मिक आन्दोलनों को देखें तो उनमें स्त्रियों की बहुलता पायेंगे। योग को पुनर्जीवित करने में स्त्रियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। भगवान शिव को आदि गुरु तथा मंत्र और योग का प्रवर्त्तक माना जाता है। उनकी प्रथम शिष्या उनकी पूरक शक्ति पार्वती थीं। यदि आप तन्त्र के ग्रंथों का अध्ययन करें तो पायेंगे कि उनका आरम्भ 'पार्वती ने पूछा' से होता है और तब शिव उसका उत्तर देते हैं। इसलिए स्त्री को ही सर्वप्रथम ज्ञान दिया गया था। आध्यात्मिक संस्कृति में जब किसी सम्बन्ध का उल्लेख किया जाता है तो उसमें स्त्री को पहले उद्धृत करते हैं। जैसे, 'सीता-राम', 'राधा-कृष्ण' और 'गौरी-शंकर', कभी 'राम-सीता', 'कृष्ण-राधा' या 'शंकर-गौरी' नहीं कहा जाता है।

तन्त्र की तिब्बती तथा हिन्दू परम्परा में चौरासी योगी थे और उनमें से चौसठ योगिनियाँ थीं। कश्मीर में लैला नाम की एक बहुत बड़ी संत थीं, जो हमेशा नग्न रहती थीं। बहुत बार उनके भक्त उनसे पूछते थे, 'लैला तुम कपड़े क्यों नहीं पहनती?' और वे व्यंग्य से कहतीं, 'आप मेरा शरीर देखते हैं या मेरी आत्मा?' उपनिषदों में बहुत-सी महिला संतों तथा पुरुष और महिला योगियों के बीच दार्शनिक वाद-विवाद का उल्लेख मिलता है। एक स्थान पर एक बहुत विदुषी महिला गार्गी का उल्लेख मिलता है, जो एक जानी-मानी विदुषी तथा बहुत बड़ी संन्यासिनी थीं।

जब शंकराचार्य ने तन्त्र की प्रचलित पुस्तक 'आनन्द लहरी' की रचना की, उन्होंने बहुत ही महत्त्वपूर्ण पद से उसका आरम्भ किया, 'शक्ति के बिना शिव सृष्टि कैसे कर सकते हैं? शिव तो केवल मूक साक्षी हैं, शक्ति ही स्त्रष्टा हैं।' इसलिए हिन्दू-जीवन पद्धति में ऐसे अनेक अनुष्ठान हैं जिनका प्रतिपादन स्त्री करती है और पुरुष उसका साक्षी होता है। चाहे वह सामान्य सामाजिक उत्सव हो, धार्मिक उत्सव हो, किसी देवी-देवता की पूजा हो या उपवास का दिन हो, स्त्री ही उसका शुभारम्भ करती है। पुरुष केवल उसका अनुगमन करता है। इस प्रकार भारत में स्त्री के द्वारा पुरुष को दीक्षित करने की परम्परा रही है।

मातृसत्तात्मक परम्परायें सामान्य रूप से अधिक पूर्णता लिए और सामंजस्यपूर्ण हैं, जो कुछ चुने हुए या केवल प्रबुद्ध लोगों के कल्याण की बात

नहीं करतीं, बल्कि सभी प्राणियों के कल्याण की बात करती हैं। पितृसत्तात्मक परम्परा के लोग प्राय: अधिक धर्म तन्त्रीय और दण्डात्मक होते हैं। मातृसत्तात्मक धर्म दूसरों के प्रति सहनशीलता, समझदारी और करुणा की शिक्षा देते हैं, जो नारी स्वभाव का परिचायक है। उन्होंने नृत्य, संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला जैसी ललित कलाओं से जीवन को सौन्दर्य प्रदान किया। पितृसत्तात्मक धर्मों में अतिकथनीयता और अनमनीयता होती है। उन्होंने धार्मिक युद्ध किये और प्रबल प्रशासन का विकास भी किया है। उन्होंने स्त्रियों को आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश से वंचित रखा है। यद्यपि पिछली शताब्दी में सम्पूर्ण विश्व की स्त्रियाँ सजग हो गईं हैं और अब वे यह समझने लगी हैं कि मानवता के आध्यात्मिक विकास में उन्हें कितनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी है।

किसी भी योग की कक्षा में, सत्संग या आश्रम में जायें, आपको वहाँ पर पुरुषों से ज्यादा महिलाएँ मिलेंगी। आध्यात्मिक आन्दोलनों में महिलाओं की अधिक भागीदारी का कारण आधुनिक युग में स्त्री संन्यासियों की परम्परा का पुनर्जीवित होना है, जिसका श्रेय मुख्यत: मुझे जाता है। 1960 ई० के प्रारम्भ से सन् 1970 ई० के बीच मैंने स्त्रियों को संन्यास में दीक्षित करना प्रारम्भ किया। दीक्षा के बाद स्त्री संन्यासियों को पुरुष संन्यासियों के साथ ही प्रशिक्षण दिया गया। प्रारम्भ में रूढ़िवादी आध्यात्मिक गुरुओं में खलबली मच गयी और वे इसका विरोध करने लगे। किन्तु जैसे-जैसे समय बीतता गया, वे लोग भी मेरे चरण-चिह्नों पर चलने लगे। अब उनके यहाँ भी स्त्री संन्यासी और शिष्यायें हैं।

ऐसा कोई कारण नहीं है जिसके लिए स्त्रियों के संन्यास में प्रवेश पर रोक लगायी जाए। स्त्रियाँ स्वभाव से आध्यात्मिक होती हैं, उन्हें भी अपनी चेतना का विस्तार कर अपने व्यक्तित्व के इस अंग का विकास करने का अवसर मिलना चाहिए। उन्हें भी आध्यात्मिक शक्ति का केन्द्र, सन्त और करुणापूर्ण दृष्टि वाला संन्यासी क्यों नहीं बनना चाहिए? मेरा यह व्यक्तिगत मत है कि स्त्रियाँ बहुत सत्यनिष्ठ तथा आज्ञाकारिणी होती हैं। वे ईमानदार और मेहनती होती हैं, और जब वे आपके साथ काम कर रही होती हैं तो आपको तनावमुक्त रखती हैं। मेरे मिशन की सफलता का एक मुख्य कारण यह भी है कि मैंने स्त्री संन्यासियों को अपने आन्दोलन में सम्मिलित किया। मेरा कहने का तात्पर्य यह नहीं कि पुरुष बेकार होते हैं, उनका अपना स्थान है। किन्तु मेरा विश्वास है कि सृष्टि विन्यास में स्त्रियाँ श्रेष्ठ हैं।

1983

मातृत्व

आध्यात्मिक जीवन में प्रत्येक स्त्री माँ की भूमिका निभा सकती है। बेटी, पत्नी, सखी या शिष्या – सभी माँ हो सकती हैं। मातृत्व स्त्री की स्वतंत्र पदवी है, इसकी तुलना पितृत्व से नहीं की जा सकती। सामान्य रूप में हम बच्चे को जन्म देने वाली विवाहिता स्त्री को ही माँ कहते हैं। परन्तु तन्त्र में तुम जिसके साथ अभ्यास करते हो, उसे माँ माना जाता है। इस भाव में माँ का अर्थ जननी नहीं है, वरन् यह ब्रह्माण्डीय शक्ति का प्रतीक है। मातृत्व सृष्टि का उच्चतर पक्ष है, देवी का मातृ रूप है।

भौतिक-शास्त्र में दो शक्तियाँ होती हैं, धनात्मक और ऋणात्मक, जबकि दर्शन-शास्त्र में इन्हें देश और काल कहते हैं। योग में इन्हें इड़ा और पिंगला तथा तन्त्र में शिव और शक्ति कहते हैं, और सामान्य लोग इन्हें स्त्री और पुरुष के रूप में जानते हैं। सृष्टि के सभी स्तरों पर इन दोनों शक्तियों में पारस्परिक क्रिया होती है और इनका संयोग एक बड़ी महत्त्वपूर्ण घटना है। जब मनस् शक्ति इड़ा का प्राण शक्ति पिंगला से संयोग होता है तो आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है, जब शिव और शक्ति का संयोग होता है तो सृष्टि होती है, जब पदार्थ और आकाश का संयोग होता है तो विस्फोट होता है, और जब पुरुष और स्त्री का संयोग होता है तो आनन्द और सुख की प्राप्ति होती है।

सभी क्षेत्रों में कुण्डलिनी सदा माँ है, परम ब्रह्माण्डीय ऊर्जा। वह जाग्रत होने, आवेश में आने और सहस्रार में शिव से संयोग की प्रतीक्षा में मूलाधार में सुषुप्त रहती है। हमें इसी बोध के साथ मातृत्व के विषय पर विचार करना चाहिए। सभी स्त्रियाँ माँ हैं, चाहे जिस उम्र की हों, उनसे जो भी रिश्ता हो, जीव विज्ञान के अनुसार वे जननी बनी हों या न बनी हों।



भारतीय परम्परा में माँ की ममता को दिव्य माना जाता है। माँ और शिशु अचेतन रूप से आपस में वैसे ही जुड़े होते हैं, जैसे गुरु और शिष्य। वैदिक मान्यता के अनुसार माँ ही प्रथम गुरु या ईश्वर होती है। पति, पिता और भाई बदले जा सकते हैं, पर माँ नहीं। माँ और बेटे के बीच प्रेम बहुत गहरा होता है, सभी ऐसा प्रेम नहीं कर सकते।

दशनामी संन्यास परम्परा के प्रवर्त्तक आदि गुरु शंकराचार्य आठ वर्ष की अवस्था में जब एक छोटी नदी पार कर रहे थे, तो एक मगर ने उनका पैर पकड़ लिया और वे उससे छूट नहीं पा रहे थे। उनकी माँ भी उनके साथ थीं। उन्होंने माँ को पुकार कर कहा, 'माँ, मुझे संन्यास लेने की अनुमति दो, नहीं तो यह मगर मुझे मार डालेगा।' भारतीय परम्परा के अनुसार यदि पुत्र मरणासन्न हो तो उसे संन्यास ग्रहण करने की अनुमति दे दी जाती है।

शंकर ने पहले भी छ: वर्ष की अवस्था में संन्यास लेने का प्रयास किया था, परन्तु उनकी माँ ने अनुमति नहीं दी और उन्हें अपनी माँ की आज्ञा माननी ही थी। परन्तु जब उन्होंने अपने पुत्र को मगर के जबड़े में देखा तो सोचा कि अगर मैं संन्यास लेने की अनुमति दे देती हूँ तो कम-से-कम मेरा पुत्र कहीं पर तो जीवित रहेगा। ऐसा सोच कर उन्होंने अनुमति दे दी। और शंकर तो इसी की प्रतीक्षा में थे। जैसे ही उन्हें संन्यास लेने की अनुमति माँ ने दी, मगर ने उन्हें छोड़ दिया, फिर शंकर अपने गुरु आश्रम के लिए चल पड़े।

वैदिक परम्परा के अनुसार विवाह, अन्त्येष्टि आदि में संन्यासी को सम्मिलित नहीं होना चाहिए। इसलिए नहीं कि वे इन चीजों पर विश्वास नहीं करते, बल्कि इसलिए कि वहाँ उनका कोई काम नहीं होता। परन्तु, जब शंकर की माँ का अन्तकाल आया तो उन्हें सूचना दी गई। माँ के देहान्त के समय शंकर उनके पास गये। उनका देहान्त हो जाने पर परम्परा के अनुसार उनकी अन्त्येष्टि शंकर ने की और उसके बाद अपने स्थान को चले गये।

समाज के कुछ ब्राह्मणों ने उनकी आलोचना की। उन्होंने कहा कि संन्यासी को अन्त्येष्टि में सम्मिलित नहीं होना चाहिए, और उन्होंने शंकर को माँ का शव छूने से मना कर दिया। परन्तु शंकर ने कहा, 'नहीं, शास्त्रों के प्रमाण के अनुसार संन्यासी अपनी माँ की सभी क्रियाओं में सम्मिलित हो सकता है।' संन्यासी के जीवन में भी माँ का इतना उच्च स्थान है।



तन्त्र में माँ ईश्वरीय ऊर्जा है और उन्हें देवी कहा जाता है। सभी स्त्रियों के नाम के साथ देवी शब्द जोड़ते हैं, जिसका अर्थ होता है ईश्वरीय ऊर्जा की संवाहिका। परिवार में एक छोटी बालिका को भी ईश्वरीय ऊर्जा की प्रतिमूर्त्ति मानते हैं। इसलिए माँ बनने की अभिलाषा रखो, पर केवल एक बच्चे की माँ नहीं, बल्कि सार्वभौमिक दिव्य शक्ति बनो।

1978

भारत माता

भारतीय परिवार में स्त्रियाँ मुख्य सम्पत्ति हैं। जब पत्नी पति के घर आती है तो खाली हाथ नहीं आती, वरन् पति ही एक भिखारी के रूप में उसके द्वार पर उसे लेने जाता है। पति के घर वह बर्तनों, सूटकेसों, साईकिल, रिक्शा, स्कूटर, कार, टी.वी., रेडियो, आभूषण के साथ-साथ कम-से-कम साठ हजार नकद भी लेकर आती है। वह धन की देवी, लक्ष्मी के समान आती है, पर पति उसे अपनी दासी के रूप में रखता है। भारतीय समाज की यह सबसे बड़ी विडम्बना है।

मैं तो बहुत सालों से स्त्रियों और लड़कियों का समर्थक रहा हूँ। मेरे आश्रम ने उन्नति की, क्योंकि मैंने स्त्रियों को प्रशिक्षित किया और उन्हें उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर रखा। स्त्रियाँ बड़ी निष्कपट होती हैं, उन्हें सिगरेट या शराब पीने की आदत नहीं होती, न वे जुआ खेलती हैं। स्त्रियाँ जहाँ भी जाएँगी वहाँ स्थिर होने का प्रयास करेंगी, चाहे वह ससुराल हो, ऑफिस हो या आश्रम हो। किसी संस्था को चलाने के लिए एक स्थिर व्यक्ति की आवश्यकता होती है, जिसका तन-मन सब वहाँ जमा रहे। यदि पुरुष घर चलाना चाहें तो वे विफल हो जायेंगे, क्योंकि वे अच्छे व्यवस्थापक नहीं हैं।

नर और मादा का स्वभाव भिन्न होता है। विधाता ने पुरुष के माथे पर मुहर लगा दी है कि तुम पशु हो और स्त्री को कहा कि तुम देवी हो। स्त्री शक्ति है, ऊर्जा है, बल है, परन्तु उसका आसानी से शोषण होता है। स्त्रियाँ स्वभाव से कमजोर या अरक्षित नहीं हैं, यह तो पुरुषों ने उनका शोषण करने के उद्देश्य से उन्हें अबला बना रखा है। यदि लड़की सबल हो तो कोई उसका शोषण नहीं कर सकता। एक मजबूत पत्नी कभी अपने पति को अभद्र व्यवहार नहीं करने देगी। एक स्त्री में ऐसा प्रभाव, शक्ति और ऐसा अधिकार अवश्य होना चाहिए।



विकसित देशों की स्त्रियों ने अपने अधिकार के लिए संघर्ष किया, और उसे प्राप्त किया। पश्चिम में भी स्त्रियों पर भारतीय स्त्रियों जैसे सामाजिक प्रतिबन्ध थे, परन्तु उन्होंने अपने कानूनी, राजनैतिक, व्यावसायिक और सामाजिक अधिकार प्राप्त कर लिये हैं, उन्होंने वैवाहिक नियमों को बदलने का भी अधिकार प्राप्त कर लिया है। भारत में कानून पुरुषों द्वारा पुरुषों को ध्यान में रखकर बनाए जाते हैं। स्त्रियों के लिए कोई कानून नहीं बनाता, क्योंकि पुरुष स्त्रियों की समस्याओं को नहीं समझते। स्त्रियों को अधिकार प्राप्त करने का अवसर आता है, किन्तु उन्हें न सामाजिक खुलापन प्राप्त है और न अनुभव ही है। लम्बे समय तक, सामाजिक व राजनैतिक कारणों से स्त्रियों को पुरुषों से अलग रखा गया था, जिसके कारण वे अपना उत्थान करने में तथा उन सीमाओं से बाहर निकल पाने में असमर्थ रहीं जो समाज ने

उन पर लादी थीं। प्रत्येक स्त्री को जानना चाहिए कि अपना अधिकार कैसे लिया जाता है। अधिकारों को प्राप्त करने के पूर्व व्यक्ति में पात्रता विकसित होनी चाहिए, और ये गुण आते हैं सामाजिक आदान-प्रदान से।

भारत में स्त्रियों का हमेशा से तिरस्कार किया गया और उन्हें निम्न दर्जा दिया गया है। शादी, सम्पत्ति तथा वंशानुगत कानूनों में उन्हें द्वितीय श्रेणी में रखा गया है। एक विधवा बहिष्कृत हो जाती है, परन्तु विधुर के साथ ऐसा नहीं किया जाता। विधुर दुबारा शादी कर सकता है, परन्तु एक विधवा नहीं। यही समाज की विचारधारा है। सदियों तक इस सामाजिक पद्धति को किसी ने चुनौती नहीं दी या इसका विरोध नहीं किया। परन्तु आज यह एक बहुत बड़ा सामाजिक मुद्दा बन गया है। क्या स्त्री घर छोड़कर अपना स्वतंत्र भविष्य बना सकती है? क्या वह अपनी शिक्षा, अपने भाग्य का स्वयं फैसला कर सकती है? हाँ, कर सकती है।

स्त्री को माँ के रूप में देखना आध्यात्मिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। लोग कहते हैं, साधु-संन्यासियों का स्त्री से कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिए। उन्हें स्त्रियों से बात भी नहीं करनी चाहिए। लेकिन मैं कहता हूँ, 'क्या हो जाएगा? क्यों डरते हो?' जिस जाति ने स्त्री को ऊपर नहीं उठाया, स्त्री जाति के प्रति अपने विशेष दायित्वों का पालन नहीं किया, वह जाति कभी नहीं उठ सकती। हिन्दुस्तान का कभी कुछ मंगलक्षेम नहीं होगा, जब तक कि वह अपनी औरतों को स्वतंत्र, महान् और विदुषी नहीं बनायेगा। वर्षों पहले मैंने यह जान लिया था कि संसार में जितनी लड़कियाँ और स्त्रियाँ हैं, वे मेरी माँ का प्रतीक हैं। चाहे पूर्वी देश की हो या पश्चिमी देश की, आधुनिक हो या परम्पराप्रिय, युवती हो या वृद्धा, संगिनी हो या सचिव, शहरी हो या देहाती, सभी स्त्रियों को सम्मान, प्रेम और सुरक्षा प्रदान करनी है और उन्हें वह सब देना है जो हमारा दायित्व है, क्योंकि हम उनकी संतान हैं। यह आध्यात्मिक बात है, लौकिक नहीं। चाहे स्त्री आपकी पत्नी हो या बेटी, उसका स्वभाव सदा मातृवत् ही रहता है। मेरे जीवन के निर्माण का श्रेय मेरी माँ को है, पिता को नहीं, क्योंकि वे तो केवल निमित्त बने थे।

स्त्री एक मूल्यवान रत्न है, फिर भी समाज में इस मूल्यवान वर्ग को अस्तित्वहीन कर दिया गया है। बहुत-सी लड़कियाँ स्कूल में नहीं पढ़ सकतीं या स्वतंत्रता से समाज में मिल-जुल नहीं सकतीं। एक ग्रामीण महिला के पास शिक्षा, आगे बढ़ने अथवा वैधानिक सुरक्षा का कोई साधन नहीं है और हमने

उन्हें इन सब चीजों से वंचित किया है, इसलिए हमारा कर्तव्य है कि हम उनकी सहायता करें तथा साथ दें। माँ के रूप में स्त्री के आध्यात्मिक पक्ष के लिए यह प्राथमिक आवश्यकता है। इसलिए हमने रिखिया में लड़कियों को शिक्षा के अवसर, नववधुओं को सौभाग्य मंजूषाएँ, ग्रामीण महिलाओं को रोजगार के अवसर और विधवाओं को सहायता प्रदान करना शुरू किया ताकि वे अपने पैरों पर खड़ी हो सकें और आत्मनिर्भर बनें। हमें लड़कियों को आत्मविश्वासी और दृढ़ निश्चय वाला बनने के लिए शिक्षा, प्रोत्साहन और प्रेरणा देनी चाहिए। फिर अगली पीढ़ी अपने आप शिक्षित होगी। यह आने वाले समय में प्रशिक्षित और मूल्यों को बनाए रखने वाला समाज होगा।

स्त्रियों को पुरुषों के बराबर अधिकार मिलने चाहिए। लड़कियों को बचपन से ही मजबूत बनने देना चाहिए और उन्हें बन्धन में नहीं रखना चाहिए। उन्हें आत्मनिर्भर बनने के लिए अच्छी शिक्षा तथा प्रशिक्षण देना चाहिए। पूर्व में लड़कियों का केवल एक ही भविष्य हुआ करता था, शादी करना और बच्चे पैदा करना। अब उनके लिए बहुत से क्षेत्रों में सम्भावनाएँ हैं। वे पढ़ सकती हैं, ज्ञान प्राप्त कर सकती हैं और डिग्री ले सकती हैं, डॉक्टर, वकील, एकांउटेन्ट या इन्जीनियर बन सकती हैं। कम्प्यूटर, इलेक्ट्रॉनिक्स, बायोटेक्नोलॉजी सीख सकती हैं। तब फिर यदि चाहें तो शादी कर सकती हैं। शादी ही एकमात्र भविष्य नहीं है लड़कियों के लिए। अब उनका भविष्य उच्च शिक्षा पर निर्भर है।

देवघर देवी का हृदय-स्थल है, यह नयी देवी का भी जन्म-स्थान है। स्त्री जागरण का सन्देश यहीं से सब ओर जाएगा। इसलिए अपने घर में स्त्रियों, बेटियों, माताओं और बहनों को सही शिक्षा दो और उन्हें चण्डी बनाओ। आने वाले युग में भारत की महिलाओं को भारत माता बनना चाहिए, और हमारा यह कर्त्तव्य है हम इस सपने को साकार होते देखें।

1995





स्त्री भगवान की एक महान् कृति है, प्रकृति का चमत्कार है, विश्व का सार, पुरुष की प्रिय संगिनी और सहयोगी है। स्त्री चैतन्य माया है। वह भगवान की ऊर्जा है। वह आदि शक्ति की सन्तान है। उसके पास इस विश्व की कुँजी है। वह बच्चों की भाग्य विधात्रि है।

स्त्री सौम्यता, कोमलता और लालित्य का रहस्यमय मिश्रण है। उसमें सेवा, धैर्य और प्रेम का अद्‌भुत संयोग होता है। वह माधुर्य से पूर्ण होती है। वह माया का मोहक आकर्षण और जादू है। वह परिवार को आनन्द और सुख देने वाली है। वह जगत् को मोहक बनाती है। उसके बिना पुरुष असहाय है। उसके अभाव में घर सूना हो जाता है। उसके बिना जगत् की सारी मोहकता समाप्त हो जाती है। उसके बिना सृष्टि नहीं होती।

वह मातृत्व की महिमा से घर को प्रकााशित कर देती है। तुम्हारा जीवन माँ की श्वास से शुरू होता है। उसने ही तुम्हें बोलना सिखाया है। वह तुम्हारी प्रथम शिक्षिका और गुरु है। उसी ने तुम्हारी आखों के आँसू पोंछे हैं।

–स्वामी शिवानन्द

ईश्वर की कृपा प्राप्त करने के लिए देवी माँ की पूजा सबसे शक्तिशाली विधि है। वह करुणा और दया की मूर्त्ति है। वह मातृ-प्रेम का मूर्त्त रूप है। वह क्षमा का सागर है। चाहे वह देवी माँ हों, या मेरी माँ हो, जहाँ भी माँ की ऊर्जा है, वह सदा प्रेम और दया का मूर्त्त रूप होगी। उसका सच्चा रूप है क्षमा, संतान चाहे कितनी भी शरारती या दुष्ट हो।

– स्वामी सत्यानन्द

देवी भागवतम्

देवी भागवत प्राचीन भारतीय साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ और महापुराणों में से एक है। इसमें जगजननी देवी माँ की कथाएँ हैं, जो उनकी प्रज्ञा और आराधना को समर्पित हैं। स्त्रष्टा कौन है, इस पर बहुत अधिक चर्चा इस ग्रन्थ में हैं। क्या विष्णु स्त्रष्टा हैं? क्या शिव स्त्रष्टा हैं? क्या कोई पुरुष देवता स्त्रष्टा है? अन्त में एक सहमति होती है कि आदि स्त्रष्टा शक्ति हैं। पर शक्ति अपने आप अकेले समस्त ब्रह्माण्ड की रचना कैसे कर सकती हैं। क्या यह पौराणिक कल्पना संभव है?

सामान्यत: बिना पुरुष के सहयोग के एक स्त्री गर्भ धारण नहीं कर सकती है। पर ऐसा कहा जाता है कि देवी में दोनों गुण हैं। वे अपने भीतर कुछ भी उत्पन्न कर सकती हैं। और यह भी सत्य है कि एक स्त्री अपने शरीर में शुक्राणु उत्पन्न कर सकती है। परन्तु प्रत्येक स्त्री में शुक्राणु का उत्पादन नहीं होता; यह तो प्रकृति का एक चमत्कार है। अब यदि कोई स्त्री अपने भीतर शुक्राणु उत्पन्न कर सकती है, तो वह बच्चा भी पैदा कर सकती है और वह बच्चा अयोनिज होगा। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है। परन्तु एक पुरुष अपने भीतर डिम्ब उत्पन्न नहीं कर सकता। यह पुरुष शरीर की सीमा है और स्त्री शरीर का सबसे बड़ा कार्य है। इस दृष्टि से निर्णय करते हुए यह कहा गया कि देवी आद्य स्त्रष्टा हैं, क्योंकि उनमें दोनों ही संभावनायें हैं।

कहा जाता है कि देवी पर ध्यान, धारणा, उनकी पूजा, उन पर श्रद्धा और भक्ति शीघ्र फल देती है। देवी मातृ-शक्ति हैं, माने माँ के समान। मातृ-शक्ति का मतलब होता है नि:स्वार्थ प्रेम। हम देखते हैं कि स्त्रियों में अधिक कोमलता, प्रेम और करुणा होती है। स्वाभाविक है कि ऐसे व्यक्ति से आप जो भी मांगें, वह देगा।



भारत में बच्चे, विशेष रूप से लड़के पैसे मांगने के लिए अपनी माँ के पास जाते हैं, पिता के पास नहीं। इसलिए नहीं कि माँ सरल और कमजोर है। वह खूब जानती है कि बच्चे क्या करेंगे, फिर भी वह उनका अनुरोध मान लेती है, क्योंकि वह उनसे प्यार करती है। इसलिए देवी भागवत में ऐसा कहा गया है कि शक्ति सकल वर प्रदायिनी हैं। उनको प्रसन्न करने के लिए अधिक समय नष्ट नहीं करना पड़ता। उनकी आराधना करने वाले भक्तों की हजारों कथाएँ हैं कि किस प्रकार उन्होंने उनकी आराधना की और किस प्रकार उनकी असंभव कामनाएँ पूरी हुईं।

देवी भागवत में कहा गया है, 'यदि शिव कुल कुण्डलिनी शक्ति से रहित हो जाएँ तो वे निर्जीव शव हो जाएँगे। इस ब्रह्माण्ड में वे सर्वोच्च ब्रह्म से लघुतम तृण तक, सभी चीजों में, सभी जगह विद्यमान हैं। वस्तुत: शक्ति के बिना कोई भी वस्तु एकदम जड़ हो जाती है। इसलिए इस सर्वशक्तिमान शक्ति को मनीषी ब्रह्म कहते हैं।'

आगे देवी भागवत में देवी आराधना की विधि, उनके गुणों, उनके सौम्य रूप और रौद्र रूप का वर्णन है। लक्ष्मी परम सुन्दरी हैं। एक बार तुम उन्हें देख लो तो मोहित हो जाओगे। ऐसा ही उनका वर्णन है। ऐसा कहते हैं कि दानव, असुर और राक्षस भी उन्हें देखकर सम्मोहित हो जाते हैं।

सरस्वती परम विदुषी हैं। उन्हें संगीत और अध्ययन प्रिय है। वे श्वेत परिधान में रहती हैं, और तुम उन्हें सदा एक हाथ में वीणा और दूसरे हाथ में पुस्तक के साथ देख सकते हो। इसके बाद दुर्गा स्वरूप है। वे सभी बाधाओं का नाश करती हैं। अगर तुम पर हत्या का आरोप है, अगर तुम करचोरी के लिए जेल में हो, या तुम्हारा व्यापार मन्दा हो रहा हो, तो लोग कहते हैं कि दुर्गा की आराधना करने से सब कुछ ठीक हो जाता है।

देवी का एक अन्य रूप काली है, अत्यन्त भयानक! वे भी सभी बाधाओं का नाश करने वाली हैं। वे अत्यन्त काली, स्थूलकाय और निर्भीक हैं। लोग कहते है कि तुम उन्हें अतिशीघ्र प्रसन्न कर सकते हो, पर जो आध्यात्मिक

प्रवृत्ति वाले हैं, उन्हें ही उनके अनुग्रह के लिए प्रार्थना करनी चाहिए। इनके अतिरिक्त शक्ति या देवी के और भी कई रूप हैं।

अब देवी की आराधना कैसे की जाए? उन्हें कैसे जाग्रत किया जाए? उनके साथ कैसे सम्बन्ध जोड़ा जाए? इसके लिए देवी भागवत् में कई साधनाएँ दी गई हैं। इतनी साधनाएँ हैं कि मैं तुम्हें सबके बारे में बता भी नहीं सकता। उसमें लिखा है कि कैसे प्राणायाम करना चाहिए, किस प्रकार की माला पहननी चाहिए, किस मन्त्र का जप करना चाहिए, साधना किस प्रकार आरंभ करनी चाहिए, और कितनी देर तक मंत्र जप करना चाहिए।

देवी भागवत में आध्यात्मिक साधनाओं के साथ-साथ सभी प्रकार के रूपकों और अलंकारों से पूर्ण सचित्र रोचक कथाएँ हैं, जो एक तरह से असंभव प्रतीत होती हैं। ग्रन्थ को पूरा पढ़ने के बाद तुम कभी यह नहीं कहोगे, 'ईश्वर पिता है', बल्कि कहोगे, 'ईश्वर माँ है।' और अगर ईश्वर पिता है भी, तो तुम उन्हें हटा कर वहाँ माँ को स्थापित कर दोगे, क्योंकि तुम्हें ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता है जो तुम्हें प्यार दे सके, तुम्हारी बातें सुने। ऐसा इतिहास में भी देखा जा सकता है। मातृ-सत्तात्मक धर्म सदा करुणा और सद्भाव से पूर्ण रहे हैं, जबकि पितृ-सत्तात्मक धर्म आक्रमणशील और लड़ाकू रहे हैं।

देवी भागवत् में एक अध्याय है जिसमें चण्डी के लोक, प्रासाद, महल, गृह और पीठ का वर्णन है। उसमें भरपूर विवरण है कि वहाँ कितनी नदियाँ, कितने पर्वत, कितनी झीलें और कितने उद्यान हैं, इतना सुनने के बाद कोई भी कह उठेगा, 'फालतू बात है। ऐसा कोई स्थान पृथ्वी पर है ही नहीं।' पर हम जिस देश और काल की बात कर रहे हैं वह आध्यात्मिक है, भौतिक नहीं। वह अनन्त हो सकता है। देवी भागवत् में कहा गया है, 'वहाँ देवी अपनी सेविका कन्याओं से घिरी है।' और वह भूमि कहाँ है जिसके विषय में देवी भागवत में वर्णन किया गया है? वह स्थान कहाँ है? पुराण कहता है, 'वह वास्तव में तुम्हारे भीतर ही है।'

1980



दुर्गा

देवी दुर्गा अचेतन की उच्च, गहन, अधिक परिष्कृत और कल्याणकर पक्ष, परम चेतना का प्रतीक हैं। वे यश और सौन्दर्य प्रदान करने वाली हैं। दुर्गा को सिंह पर सवार परम सुन्दरी देवी के रूप में चित्रित किया गया है। उनके आठ हाथ हैं, जो आठ तत्त्वों के प्रतीक हैं। वे नरमुण्डों की माला धारण किये हुए हैं, जो विवेक और ओज का प्रतीक है। उनकी इस माला में 52 मुण्ड हैं, जो संस्कृत के 52 वर्णों के प्रतीक हैं। ये वर्ण शब्द ब्रह्म की बाह्य अभिव्यक्तियाँ हैं। दुर्गा जीवन के सभी अशुभ परिणामों को दूर करने वाली तथा शक्ति और शान्ति देने वाली है।

पावन ग्रन्थ देवी महात्म्य में, जिसे दुर्गा सप्तशती के रूप में भी जाना जाता है, माँ दुर्गा का विशद् वर्णन है। नवरात्रि और शतचण्डी महायज्ञ के समय इसका पाठ किया जाता है। इसमें असुरों के विनाश के लिए दुर्गा के प्रकट होने सम्बन्धी कथाएँ हैं। देवी माँ के अनेक रूप हैं, जिन्हें वे विभिन्न अवसरों पर भक्तों की प्रार्थना पूरी करने के लिए धारण करती हैं। दुर्गा का एक रूप है चण्डी, जिनका आवाहन आसुरी शक्तियों के नाश के लिए किया जाता है। दुर्गा सप्तशती में यह वर्णन आता है कि अशुभ आसुरी शक्तियों के नाश और सत्य तथा धर्म की स्थापना के लिए देवताओं ने अपने तेज से इस स्वरूप का निर्माण किया। माँ दुर्गा के इस रूप में उनके विभिन्न रूपों की समस्त शक्तियों और ब्रह्माण्डीय ऊर्जा का समावेश है।

शतचण्डी महायज्ञ में देवी माँ की कृपा और आशीष के लिए दुर्गा सप्तशती का सौ बार पाठ होता है। सबको सीखना चाहिए कि दुर्गा सप्तशती का पाठ कैसे किया जाता है। जब तुम इस जगत् में प्रवेश करते हो तो तुम्हें दु:ख-सु:ख के चक्र से गुजरना पड़ता है। देवी तुम्हें अकारण भय से मुक्त करती हैं। तुम मुक्त

और निर्भय हो जाते हो। अत: तुम्हें अपने घरों में दुर्गा सप्तशती का पाठ करना चाहिए। दुर्गा सप्तशती का पाठ माँ भगवती की, देवी माँ की आराधना है। पाठ के पीछे माँ की आराधना का ही भाव होना चाहिए। हम सब यहाँ माँ की पूजा के लिए एकत्र हुए हैं।



देवी सूक्त में देवी के विभिन्न स्वरूपों का माया, चेतना, बुद्धि, निद्रा, क्षुधा, छाया, शक्ति, तृष्णा, क्षान्ति, जाति, लज्जा, शान्ति, श्रद्धा, कान्ति, लक्ष्मी, वृत्ति, स्मृति, दया, तुष्टि, मातृ, भ्रान्ति आदि के रूप में वर्णन है।

या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम: ॥

'देवी, जो सभी प्राणियों में शान्ति रूप में हैं, उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ।'

'देवी-सूक्त' सीखना बड़ा सरल है। प्रत्येक श्लोक में एक शब्द बदलता है – शक्तिरूपेण, श्रद्धा रूपेण, तुष्टि रूपेण, मातृ रूपेण, आदि। यह हमारे यौगिक जीवन को आध्यात्मिक जीवन में बदल देता है। मेरे प्रारम्भ के पुरश्चरण काल में देवी शक्ति ने मेरी बड़ी सहायता की। अन्यथा उच्च शक्तियाँ साधना पर जादू-सा कर देती हैं। जब हम अपने अन्दर, आन्तरिक यात्रा करते हैं, हमें उनकी सहायता की आवश्यकता होती है।

'देव्यापराधक्षमापन स्तोत्रम्' का पाठ 'देवी सूक्तम्' के बाद होता है। तुम इन मंत्रों को मात्र श्लोक मत समझो, केवल ऊपर-ऊपर देखने से रहस्यमयी चीजों का पता नहीं चलता है। इन मंत्रों को सिद्ध किया जा सकता है और पूरी तरह अनुभव किया जा सकता है। इनके अर्थ को अच्छी तरह समझकर इनका पाठ करो। एक बार पूरी तरह तुम्हें इनका अनुभव हो जाए, तो तुरंत ही तुम्हें उसका दर्शन होगा, उसकी झलक मिलेगी। देवताओं की शक्तियाँ साधक की

रक्षा करेंगी, उसका उत्थान करेंगी और उसे प्रेरणा देंगी। इस स्तोत्र के बिना तान्त्रिक पाठ अधूरा है।

शतचण्डी महायज्ञ के समय हम अपने दु:खों के नाश के लिए तथा विश्व को सुन्दर स्वास्थ्य, समृद्धि और शान्ति प्रदान करने के लिए माँ से प्रार्थना करते हैं और कहते हैं, 'हे माँ! सबको सुखी रखो, सबको विवेक प्रदान करो, और सबके हृदय में अवतरित होओ, जिससे सभी असुरों, महिषासुर, शुम्भ, निशुम्भ, चण्ड, मुण्ड और धूम्रलोचन का नाश हो।' देवी दुर्गा सभी बाधाओं का नाश करती हैं। हमारे आन्तरिक असुरों का नाश करने के लिए वे हमारे हृदय में अवतरित हों, जिससे हम उनकी दिव्य कृपा का अनुभव कर सकें।

2000



काली

भारत में काली को बहुत महत्त्वपूर्ण दिव्य सत्ता के रूप में माना जाता है। उनका रूप भयानक है, पर उन्हें दयामयी, करुणामयी, संरक्षिका और सहायिका मानते हैं। उन्हें काली माँ कहते हैं। सभी उनकी पूजा और उपासना करते हैं। कोई यह नहीं सोचता कि वे कैसी दिखती हैं। जब उनकी स्तुति की जाती है, तब सुनने पर तुम्हें ऐसा लगेगा कि एक परमसुन्दरी कन्या की स्तुति की जा रही है। परन्तु उनका चित्रण एकदम काले, निर्वस्त्र, अति स्थूल और भयानक रूप में किया जाता है। उनकी जिह्वा रक्त से सनी और बाहर निकली रहती है। उनकी आँखें लाल-लाल और विस्फारित रहती हैं, मानो उन्होंने मदिरा पी ली हो। वे सात्त्विक तुलसी माला नहीं, नर मुण्डों की माला पहनती हैं।

काली सर्पों के कंगन, बाजूबन्द और माला पहनती हैं। उनके छः हाथ हैं और उन्नत वक्ष स्थल हैं। उनके एक हाथ में खड्ग, दूसरे में नर मुण्ड और तीसरे में रक्त भरा खप्पर रहता है। शिव नीचे लेटे हैं और वे उनकी छाती पर एक पैर रख कर खड़ी हैं। वे अत्यन्त रौद्र रूप में रहती हैं। कलकत्ता के कालीघाट में उनका मन्दिर है। कलकत्ता का मूल नाम कलित कत्ता (काली का स्थान) था।

मानव के अचेतन का प्रतीक हैं काली। वे अचेतन की निम्न अभिव्यक्ति हैं, जो रौद्र रूप में होती है। उच्च अभिव्यक्ति का प्रतीक दुर्गा हैं। अचेतन का रंग काला या धूम्र वर्ण होता है। वे रक्त की प्यासी हैं, जो आरोहण करती हुई कुण्डलिनी का प्रतीक है। उनकी बाहर निकली हुई रक्तिम जिह्वा रजोगुण का प्रतीक है, जिसकी वृत्ताकार गति सृजन क्रिया को प्रेरित करती है। इस विशेष मुद्रा के द्वारा वे साधकों को अपने रजोगुण को नियंत्रित करने के लिए प्रोत्साहित करती हैं। काली के छः हाथ छः चक्रों के प्रतीक हैं।

खड्ग और कटा हुआ नरमुण्ड विनाश का प्रतीक है। अंधकार और मृत्यु केवल प्रकाश और जीवन के अभाव के प्रतीक नहीं हैं, बल्कि वे उनके स्रोत हैं। खड्ग परम वैराग्य का प्रतीक है, जिससे वे शिरोच्छेदन करती हैं। यह वैराग्य व्यक्तित्व की चरम अनासक्ति की अवस्था है। सिर वर्तमान पुनर्जन्म का प्रतीक है। उनके हाथ में रक्तपूर्ण खप्पर इस जन्म के कर्म हैं। साधक स्त्री रूप में ब्रह्माण्डीय शक्ति की पूजा करते हैं, क्योंकि वे गत्यात्मक पक्ष का प्रतीक हैं। पुरुष सत्ता स्थितिज पक्ष है, जो उनकी शक्ति से ही सक्रिय होता है।

योग दर्शन के अनुसार काली, जो अचेतन कुण्डलिनी की प्रथम अभिव्यक्ति हैं, एक प्रचण्ड शक्ति हैं, जो जीव को पूरी तरह वश में रखती हैं, जैसा कि उनके शिव पर खड़े होने से प्रकट होता है। कभी-कभी मानसिक अस्थिरता के कारण व्यक्ति अपने अचेतन के सम्पर्क में आ जाते हैं, और उन्हें भयानक चीजें, भूत, राक्षस आदि दिखायी देते हैं। इसलिए कहा जाता है कि अचेतन अशुभ तत्त्वों और वृत्तियों से भरा हुआ है। जब काली या अचेतन शक्ति जाग्रत होती है तो वह अगली अभिव्यक्ति दुर्गा से मिल जाती है, जो परम चेतना है, यश और सौन्दर्य प्रदान करने वाली है।

काली के पैर के नीचे शिव लेटे हुए हैं, जो उनके पूरक, पुरुष पक्ष हैं। शिव चेतना के प्रतीक हैं, जब कुण्डलिनी जागरण होता है, तब चेतना दब जाती है। पौराणिक कथाओं के अनुसार प्रत्येक मनुष्य स्त्री-पुरुष का योग है। दक्षिण अंग पुरुष पक्ष और वाम अंग स्त्री पक्ष है। दाहिना भाग शिव रूप में और वाम भाग शक्ति रूप में माना जाता है। संक्षेप में यह अनुकम्पी और परानुकम्पी तंत्रिका विभाजन की अवधारणा है। काली शिव के शरीर पर एक पैर रख कर खड़ी हैं, जो उनके नीचे पूर्ण असहाय अवस्था में पड़े हैं, और वे उनके ऊपर नाच रही हैं।

ऐसा कहा जाता है कि कुण्डलिनी का जागरण गुरु की उपस्थिति में होना चाहिए, नहीं तो यह अचेतन अभिव्यक्ति काली की तरह, तुम्हें नीचे गिरा देगी। प्राचीन ग्रन्थों में कुण्डलिनी का संदर्भ देते हुए यह भी कहा गया है कि जब यह सर्पिणी शक्ति अपने प्यासे मुख के साथ जागती है, तो यह उस रक्त का पान कर जाती है जिस पर विभिन्न जीव और योनियाँ पलती थीं। हम बार-बार क्यों जन्म लेते हैं? इसलिए कि जन्म लेने के लिए हमारे पास पर्याप्त सामग्री है। जो कुण्डलिनी योग के मार्ग से चलते हैं, उन्हें सर्पिणी रूप में कुण्डलिनी का अनुभव करना पड़ता है। परन्तु जो काली की केवल पूजा करते

हैं, यह जाने बिना कि वे किस मार्ग पर जा रहे हैं, कुण्डलिनी के मार्ग से ही जाते हैं।



काली के कण्ठ में जो नर मुण्डों की माला है, वह विभिन्न मानव जन्मों की स्मृतियों को प्रकट करती है, जो हमारे शरीर में विभिन्न चक्रों में प्रतीक रूप में अंकित हैं। जब अचेतन विशुद्धि तक पहुँचता है, तब एक बूढ़ा जवान लड़के के समान दिखायी पड़ने लगता है। इन चक्रों के बीच में अन्य अनेक सिद्धियाँ आती हैं। अचेतन शक्ति को विकसित करने वाले अधिकतर लोग कभी-कभी इस शक्ति को खो देते हैं, क्योंकि वे इसका उपयोग करते हैं, जिससे यह पुन: अपनी मूल अवस्था में वापस चली जाती है। इसीलिए उच्चतम अवस्था, सहस्रार तक पहुँचने तक मानसिक अवस्थाएँ बदलती रहती हैं। इसके बाद यह सदा के लिए स्थायी हो जाती है।

जब अचेतन आज्ञा चक्र में पहुँचता है, तब साधक भूत और भविष्य का ज्ञाता हो जाता है, काल और शुद्ध ध्यान के आयाम खुल जाते हैं। यह एक आध्यात्मिक अवस्था है, यहाँ कोई मानसिक या रहस्यमय अभिव्यक्ति नहीं होती। जब अचेतन सहस्रार में पहुँच जाता है, तब ये विकसित क्षमताएँ जीवनभर साथ रहती हैं। इनमें कमी-बेशी या उतार-चढ़ाव नहीं आता। यह एक दृढ़ और स्थायी अवस्था है। तब व्यक्ति सिद्ध या योगी बनता है। ऐसा कहते हैं कि जब अचेतन शक्ति सहस्रार में परमशिव से मिलती है, तब साधक मानसिक बन्धनों से मुक्त हो जाता है। उसे परमानन्द की अनुभूति होती है। वह जगत् की वास्तविक प्रकृति को समझने लगता है। सभी शक्तियाँ उसमें आ जाती हैं, वह इच्छानुसार उन्हें अभिव्यक्त कर सकता है, पर वह ऐसा कभी करेगा नहीं। वह जगत् में रहता है, उसे समझता है, पर उसका नहीं होता।

पौराणिक साहित्य में काली के जागरण का वर्णन विस्तार से है। कहते हैं कि काली जब अत्यन्त क्रुद्ध हो उठती है, तब सभी देवता और असुर स्तम्भित हो जाते हैं, कोई नहीं बोलता। वे नहीं जानते कि काली अब क्या करने जा रही हैं। यह पौराणिक कथा है, इसलिए हम उसी प्रकार इसकी व्याख्या कर सकते हैं। तब वे काली को शान्त करने के लिए शिव से अनुरोध करते हैं, पर काली भीषण मुँह खोले, मांस और रक्त की प्यासी होकर उन्हें नीचे गिराकर उनकी छाती पर एक पैर रख कर खड़ी हो जाती हैं। देवता उन्हें शान्त करने के लिए स्तुति करने लगते हैं, वे उनसे कहते हैं, 'तुम परम स्रष्टा हो; तुम ब्रह्म का प्रतिरूप हो। तुम्हारे माध्यम से ही परमात्मा सृष्टि की रचना और पालन करते हैं। तुम ब्रह्माण्ड का विनाश करने वाली हो। अन्त में संसार की सभी चीजें तुममें ही विलीन हो जाती हैं।'

ऐसी अनेक स्तुतियों से भयंकर अचेतन, काली शान्त और सौम्य हो जाती हैं। तब कृपालु अचेतन ऊर्जा, दुर्गा प्रकट होती हैं। यह मूलाधार से शक्ति की निर्मुक्ति है। काली मूलाधार द्वारा प्रस्तुत आद्य, प्रसुप्त ऊर्जा है। आज भी भारत में काली की पूजा प्रचलित है, क्योंकि काली, दुर्गा और अन्य देवियाँ मनोमय कोश और मन पर सबसे अधिक प्रभाव डालती हैं।

1967



लक्ष्मी

लक्ष्मी समृद्धि, सौभाग्य और सौन्दर्य की देवी हैं। उन्हें हम देवी माँ कहते हैं। वे सृष्टि के स्वामी नारायण की अर्द्धांगिनी हैं। उनका वाहन उल्लू है। लक्ष्मी हमें प्रचुर मात्रा में देती हैं। पूर्णता और सम्पन्नता उनसे ही आती है। जब जीवन में पूर्ण भोग-विलास हो, तब समझो कि वह लक्ष्मी की अभिव्यक्ति है। परन्तु उनके दिव्य प्रसाद का उपयोग दूसरों के लिए करना चाहिए। जब तुम अपने लिए न सोचकर दूसरों के लिए सोचते हो तो लक्ष्मी बहुत प्रसन्न होती हैं। परन्तु जब तुम दूसरों के लिए न सोचकर केवल अपने लिए सोचते हो, तब वे तुम्हें छोड़कर चली जाती हैं। लक्ष्मी धन को साथ लाती हैं और हमें समृद्ध बनाती हैं, पर अपने साथ-साथ समस्याएँ भी लाती हैं।

जब तक मैं भगवान की सेवा में हूँ, तब तक रोज लक्ष्मी जी के दर्शन कर सकता हूँ, और इसी कारण मुझे पैसे माँगने की आवश्यकता नहीं है। वे मुझे कुछ देती हैं, पर साथ ही कुछ भी नहीं देतीं, वे मेरे माध्यम से दूसरों को देती हैं। हमारा लक्ष्मी जी से एक समझौता है। वे कहती हैं, 'यदि तुम ईमानदारी से रहते हो तो मैं तुम्हारी सारी इच्छाएँ पूरी करूँगी, पर अगर तुम ऐसा नहीं करते हो तो मैं तुम्हें छोड़कर चली जाऊँगी। मैं तुम्हें एक कौपीन, एक कम्बल और एक मोमबत्ती दे सकती हूँ, क्योंकि ये तुम्हारी आवश्यकताएँ हैं। पर जिस क्षण तुम कामनावश मँहगी चीजें माँगोगे, मैं उसी समय उस कोरे चेक को रद्द कर दूँगी, जो मैंने तुम्हें दे रखा है।'

लक्ष्मी जी मेरी माँ हैं। उन्होंने मुझसे कहा कि मैं बहुत से लोगों को देती हूँ, पर वे अपने बच्चों को विदेश भेजने में, उनकी शादी में या कार खरीदने में खर्च कर देते हैं, इसलिए मैं उनसे बहुत अप्रसन्न रहती हूँ। वे कहती हैं, 'मैं बहुतों को देती हूँ, पर वे अपने ही ऊपर खर्च करते हैं, इसलिए मैं उन्हें



देना बन्द कर देती हूँ। और तुम्हें जो भी देती हूँ, उसे अगर अपने ऊपर खर्च करोगे, तो तुम्हारी भी वही दशा होगी।' अभी तक लक्ष्मी जी ने मेरे सारे बिलों को पास कर दिया है।

करोड़पति होने में कोई दोष नहीं, धन तो लक्ष्मी का ही एक रूप है। अगर तुम पर लक्ष्मी की कृपा है तो तुम अरबपति बन सकते हो। रुपये कमाने की इच्छा रचनात्मक है, पर लोभवश चीजें एकत्र करने और अपने भोग-विलास पर खर्च की इच्छा विनाशकारी है। अमीर लोग अपने बच्चों को बिगाड़ देते हैं, इससे उनके अच्छे संस्कार नष्ट हो जाते हैं। इसका अर्थ हुआ कि लक्ष्मी का रूप बिगाड़ दिया गया।

लक्ष्मी रोज जेबखर्च के पैसे देते-देते तंग आ गई हैं। यह ठीक है कि वे बहुत सम्पन्न हैं, पर वे जितना अधिक देती हैं, लोग उतने अधिक बिगड़ते जाते हैं। रुपयों का सही उपयोग करने के बदले वे अपने स्वार्थ के कामों में खर्च करते हैं। और लक्ष्मी जी को यह मालूम है। कभी-न-कभी वे तुम्हें जेब खर्च देना बन्द कर देती हैं, फिर तुम्हें समस्या होती है। देवी माँ ही सब काम करती हैं। फिर भी सत्य यही है कि भगवान ही इस धरती की गृहस्थी का मालिक है। लक्ष्मी गृहणी हैं और हम सब उसके नादान बच्चे हैं। बच्चे जब शाम को घर लौटते हैं, माँ भोजन तैयार कर उनकी प्रतीक्षा में रहती है। उसके बच्चे कभी चिन्ता नहीं करते। पर जब बच्चों का विवाह हो जाता है तो वे माता-पिता को भूल जाते हैं, उसी प्रकार हम सब भी संसार में आने के बाद देवी माँ को भूल जाते हैं।

जब तुम्हारी साधारण माँ इतना प्यार दे सकती है, तुम्हारे कल्याण और देखभाल के बारे में सोच सकती है, तो जरा सोचो कि देवी माँ क्या नहीं कर सकती। उनके तो असंख्य बच्चे हैं और वृक्षों, पशुओं, मनुष्यों के साथ-साथ वे सृष्टि की सभी चीजों के विकास की देखभाल भी करती हैं। सब कुछ लक्ष्मी ही है। घास, फूल, गायें और बच्चे सभी बढ़ते हैं और सब उसके ही हैं।

लक्ष्मी जगत् के धन की प्रभारी हैं। वे समुद्र में रहती हैं। जल विकास और समृद्धि का स्रोत है, सृष्टि का मूल स्रोत है। सभी देवियाँ महत्त्वपूर्ण हैं, पर मैं लक्ष्मी को सबसे बड़ा मानता हूँ, क्योंकि वे कलयुग की, वर्तमान युग की देवी हैं।

1996

सरस्वती

सरस्वती विद्या, विवेक और वाणी की देवी हैं। पुराणों में सरस्वती ब्रह्मा की पुत्री और पत्नी, दोनों हैं। यह एक प्रतीकात्मक सम्बन्ध है। ब्रह्मा सृष्टि के रचयिता हैं और सरस्वती विवेक और ज्ञान हैं। विवेक और ज्ञान मन से उत्पन्न होते हैं। मन पिता है और ज्ञान बेटी है, क्योंकि मन ज्ञान का स्रष्टा है। मन ज्ञान के साथ काम करता है, क्योंकि उसमें ज्ञान है। ज्ञान का प्रतीक होने के कारण सरस्वती ब्रह्माण्डीय मन से उत्पन्न हुई हैं और साथ ही ब्रह्माण्डीय मन के साथ काम भी करती हैं। इस प्रकार ब्रह्माण्डीय मन सरस्वती के साथ काम करता है और सरस्वती का स्रष्टा भी है।

मन हमारे व्यक्तित्व और ब्रह्माण्डीय चेतना की संयोजक कड़ी है। अन्त:प्रज्ञा और ज्ञान के द्वारा ब्रह्माण्डीय मन में प्रवेश मिलता है। सरस्वती अन्त:प्रज्ञा वाली बुद्धि का प्रतीक है, जिसका जन्म ब्रह्माण्डीय मन से होता है। इसके साथ ही वह ब्रह्माण्डीय मन का अंश भी है। इस तरह ब्रह्मा सामान्य अर्थों में सरस्वती के पिता या पति नहीं हैं। वे सरस्वती को उत्पन्न करने वाले हैं, परन्तु इसके साथ ही वे सरस्वती के साथ रहते, कार्य करते और व्यक्त होते हैं। ब्रह्मा स्वाधिष्ठान चक्र के देवता हैं और पुन: उनकी पत्नी सरस्वती राकिनी के रूप में स्वाधिष्ठान चक्र की देवी हैं।

सरस्वती हमारे जीवन में संगीत, कला, नृत्य, साहित्य और संस्कृति लेकर आती हैं। वे श्वेत परिधान पहनती हैं, और एक हाथ में वीणा तथा दूसरे में पुस्तक धारण करती हैं। पुस्तक, ज्ञान और विद्या का प्रतीक है। भारत में प्राथमिक कक्षा से विश्वविद्यालय स्तर तक के छात्र सरस्वती मंत्र का पाठ परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए करते हैं। वसंत पंचमी के दिन विद्यार्थी सरस्वती की मूर्ति बनाते हैं और उनका नाम संकीर्तन करते हुए शोभा यात्रा निकालते

हैं। यदि आप उनसे पूछें कि ऐसा क्यों करते हैं, तो वे कहेंगे, 'परीक्षाओं में अच्छे अंक प्राप्त करने के लिए।'

सरस्वती का वाहन हंस है, क्योंकि हंस में नीर-क्षीर विवेक का गुण होता है। सरस्वती विद्या की देवी हैं और विद्या के आधार पर व्यक्ति सही और गलत, उचित और अनुचित में अन्तर कर सकता है। सरस्वती विवेक, बुद्धि, विवेचन और विश्लेषण आदि गुणों का प्रतीक है। अब हंस करता क्या है? परम्परा के अनुसार, यदि तुम हंस को एक लीटर दूध पानी मिलाकर देते हो तो दूध पी जायेगा और पानी छोड़ देगा। इसी प्रकार सरस्वती में सार और असार का विवेचन करने की क्षमता है।

परम्परा के अनुसार सरस्वती संन्यासियों को ज्ञान को सुरक्षित रखने का दायित्व दिया गया है जिससे कि वह ज्ञान भावी पीढ़ियों के उपयोग में आ सके। सरस्वती परम्परा के संन्यासी होने के नाते हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम विश्व में विद्यमान विज्ञानों और ज्ञान की विभिन्न शाखाओं में से जितनों को जान सकें, जानें और आत्मसात् करें। सत्य एक है, पर इसको अनेक नामों से पुकारा जाता है। इसलिए यह आवश्यक है कि हम विभिन्न दर्शनों और चिन्तन पद्धतियों के सम्बन्ध को समझें और उन्हें मानवता की आवश्यकता के अनुसार अभिव्यक्त करें। यह कहना कि यह रास्ता अच्छा है और वह उचित नहीं है, सरस्वती परम्परा का उद्देश्य नहीं है। जीवन में विकास और उपलब्धियों की ओर जाने के लिए एक समन्वित मार्ग बनाना सरस्वती परम्परा का मुख्य उद्देश्य है।





दुर्गा सप्तशती में दृष्टान्त के माध्यम से मुक्ति के मार्ग में आने वाली मुख्य बाधाओं का वर्णन किया गया है। ये बाधायें हैं– इच्छा, क्रोध, लोभ और अज्ञान। यदि हम सच्चे मन से देवी माँ की आराधना करें, तो हम उनकी कृपा से इन बाधाओं पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। दुर्गा सप्तशती शाक्त परम्परा का आधार है। मन में जो भी कामना रखकर इसका पाठ किया जाता है, वह कामना पूरी होती है। अगर आध्यात्मिक ज्ञान के लिये पाठ करते हैं, तो वह आपको प्राप्त होगा। जो संसार में एक अच्छा और शान्तिमय जीवन यापन करना चाहते हैं, उन्हें इन मन्त्रों की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

– स्वामी शिवानन्द

जब आप दुर्गा सप्तशती का पाठ करते हैं तो अनुभव कीजिए कि आप माँ की सेवा कर रहे हैं। हम देवी से सबके स्वास्थ्य, कल्याण और सुख के लिए प्रार्थना करते हैं। हम उनसे याचना करते हैं कि वे प्राकृतिक आपदाओं से हमारी रक्षा करें और हमें संभावित दुर्भाग्य से बचायें। वे सबको शान्ति, समृद्धि और आध्यात्मिक उन्नति का वरदान दें!

– स्वामी सत्यानन्द

दुर्गा सप्तशती में माँ के तीन रूपों– महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती का सुन्दर वर्णन है, जो क्रमश: माँ का तामसिक, राजसिक और सात्विक रूप है। दानवों ने देवताओं को सताया तो उन्होंने देवी माँ का आवाहन किया। वे इन तीनों रूपों में प्रकट हुईं और असुरों का नाश कर देवताओं की रक्षा की। देवी माँ ने अन्त में एक अमोघ वरदान दिया कि जब भी देवतागण विपदा और कठिनाइयों में उन्हें याद करेंगे, वे उनकी रक्षा करेंगी। यह देवी दुर्गा, महामाया, जगज्जननी की गौरवगाथा है।

– स्वामी शिवानन्द

शतचण्डी महायज्ञ

शतचण्डी महायज्ञ देवी माँ की आराधना के लिये अर्पित है। जो ब्रह्माण्ड की जननी है, जो सभी व्यक्त-अव्यक्त रूपों में विद्यमान है। कलियुग में चण्डी सबसे महत्त्वपूर्ण देवी हैं। जिन साधकों और भक्तों ने देवी माँ की आराधना की है, उन्हें अनुभव हुआ है कि वे सभी दु:खों का नाश करने वाली हैं, चाहे वह दु:ख वास्तविक हो या काल्पनिक; सामाजिक हो या मनोवैज्ञानिक। वे मानसिक स्वास्थ्य, सामाजिक और व्यक्तिगत समृद्धि तथा विश्व शान्ति प्रदान करने वाली हैं। वे उनका मार्गदर्शन करती हैं, जो आध्यात्मिक मार्ग पर चलते हैं।

अपने पड़ोसियों को, गाँव वालों को शतचण्डी महायज्ञ में भाग लेने का अवसर देने के लिए ही हम इसका आयोजन करते हैं, क्योंकि ऐसा यज्ञ गाँव में करने का साधन इन लोगों के पास नहीं है। केवल देवी माँ ही इनकी सहायता कर सकती हैं; केवल ईश्वर की शक्ति ही इनकी मदद कर सकती है, और कोई नहीं। जब तक इन्हें देवी का आशीर्वाद नहीं मिलता, इनकी विपदा दूर नहीं हो सकती। मनुष्य की सभी कठिनाइयों, गरीबी और रोगों का समाधान केवल देवी शक्ति के पास है। प्राचीन ऋषि-मुनियों ने आदिकाल से ऐसा कहा है।

शाक्त तंत्र में शक्ति के, जिनसे सृष्टि और स्रष्टा दोनों उत्पन्न हुए हैं, जागरण के लिए पूजा की अनेक विधियाँ हैं। इनमें शतचण्डी महायज्ञ एक विधि है। अधिकतर लोग ईश्वर को पिता मानते हैं, परन्तु अब समस्त विश्व मातृ प्रधान व्यवस्था की ओर मुड़ रहा है। सभी जगह स्त्रियों को अब अधिक स्वतंत्रता, अधिकार और सम्मान प्राप्त है। पहले की अपेक्षा अब स्त्रियों को उत्तम शिक्षा, अधिक अवसर और प्रतिष्ठा प्राप्त है। जैसे-जैसे हम लोग मातृ प्रधान समाज की ओर बढ़ रहे हैं, यह उपयुक्त होगा कि हम देवी माता की पूजा करें, ताकि वह हमसे कुपित न हो। यदि वे कहती हैं, 'तुम लोगों ने मुझे इतने दिनों

तक यातना दी है', तो मैं कहूँगा, 'नहीं, मैं बहुत दिनों से आपकी पूजा करता आ रहा हूँ। मैंने शतचण्डी यज्ञ के लिए यहाँ आपका आवाहन किया है।'

देवी को देवी की तरह नहीं, बल्कि माँ की तरह पूजना अधिक व्यावहारिक है। तुम अपनी माँ के बहुत करीब हो, पर तुमने कभी किसी देवी को नहीं देखा है। यदि वे अमूर्त्त और निराकार हैं, तो हमें यह मालूम ही नहीं कि उनके पास कैसे पहुँचें। ईश्वर को माँ के रूप में देखना अधिक सरल, स्वाभाविक और व्यावहारिक है। बच्चे का पालन-पोषण हर प्रकार से माँ द्वारा होता है, उसके प्रेम और उसके दूध से होता है। वह जीवन देने वाली और उसका पालन करने वाली है।

माँ के पास सबको आशीर्वाद देने की शक्ति है, पर वह किसी को सजा नहीं देती। उसके भीतर असीम सहनशक्ति है। माँ अपने बच्चों से कभी ईर्ष्या नहीं करती। माँ कभी क्रूर नहीं हो सकती। यदि वह कभी तुम्हें थप्पड़ भी मारती है, तो वह भी करुणा, प्रेम और स्नेहवश ही। शाक्त तन्त्र की यही शिक्षा है। यदि तुमको जन्म देने वाली माँ तुम्हारे कल्याण के लिए तुम्हें इतना प्यार दे सकती है, तुम्हारा इतना ध्यान और इतनी चिन्ता कर सकती है, तो सोचो, देवी माँ क्या नहीं कर सकती। उनकी असंख्य सन्तानें हैं; वे वृक्षों, पौधों,



जीव-जन्तुओं के साथ-साथ सृष्टि की सभी चीजों के विकास का ख्याल रखती हैं। देवी रक्षक भी हैं और संहारक भी। उनके आदेश से ही सारे ग्रह-नक्षत्र, मानव और पूरी सृष्टि चलती है। हमें माँ की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। हम ईश्वर की पूजा कर सकते हैं, ठीक है, पर माँ के रूप में।

शतचण्डी महायज्ञ का आयोजन देवी माँ की कृपा और शुभ आशीर्वाद प्राप्त करने के लिये तथा उनसे सुरक्षा और पुष्टि की याचना के लिए किया जाता है। यज्ञ में हम सभी लोगों को इस आशय से निमंत्रण देते हैं कि माँ की कृपा उन सभी लोगों को मिले। ऋषि-मुनियों ने कृपा प्राप्त करने के अनेक उपाय बताये हैं, परन्तु उनमें सबसे शक्तिशाली उपाय है देवी की पूजा, जो माँ के वात्सल्य की प्रतिमूर्ति हैं। हम सबको माँ के साथ सम्बन्ध जोड़ना है। हम सब यहाँ माँ की सेवा के लिए उपस्थित हुए हैं।

यज्ञ के तीन मुख्य अंग होते हैं – देवी की पूजा, चण्डी के शक्तिशाली मंत्रों का कर्मकाण्डीय विधि के अनुसार पाठ और आदान-प्रदान। तान्त्रिक यज्ञ में भक्ति मुख्य पक्ष है। माँ की कृपा अमूर्त्त होती है, और उसे मूर्त्त एवं सर्वसुलभ बनाने के लिए हम अनुष्ठान करते हैं। शतचण्डी महायज्ञ में देवी माँ की आराधना दुर्गा सप्तशती के मंत्रों के सौ बार पाठ से की जाती है। जब उस दिव्य ऊर्जा का आवाहन होता है तो देवी माँ, जगजननी का अवतरण होता है। जब तुम संवेदनशील हो जाते हो तो तुम्हें देवी के स्पन्दनों का अनुभव होता है। तुम्हें अनुभव करना होगा मानो तुम ही देवी माँ के अनुग्रह का आवाहन कर रहे हो और उनके अवतरण के लिए स्तुति कर रहे हो। माँ के रूप में भगवान तुम्हारे अन्दर है। प्रेम पूर्ण हृदय से उसकी आराधना करो।

यज्ञ बिना दान किये पूरा नहीं होता। पहले प्रसाद माँ को अर्पित किया जाता है, फिर उसे माँ के प्रसाद के रूप में सभी को दिया जाता है। प्रसाद का अर्थ है उल्लास, सुख, आशीष। अत: जब हमें प्रसाद मिलता है, तब हमें उसका आशीष मिलता है। माँ जब अपनी सन्तान को कुछ देती है तो प्रेम और करुणा वश देती है। हम माँ के लिए प्रसाद बनाते हैं, उनको चढ़ाते हैं, फिर उसके बाद अर्चना करते हैं, उनके नाम का जप करते हुए तरह-तरह के फूल, जैसे, अड़हुल, कमल या गुलाब चढ़ाते हैं। माँ हैं कौन? उनका नाम क्या है? उनका रूप क्या है? वे क्या करती हैं। क्या वे पुरुष हैं या स्त्री या दोनों में से कोई नहीं? देवी का जो नाम उच्चारण करते हैं उसमें उनकी महिमा, उनकी लीलाओं और उनके व्यक्तित्व का वर्णन होता है।

देवी हमारी इच्छाओं और कामनाओं को पूरा करने वाली हैं। शतचण्डी महायज्ञ में हम उनसे प्रार्थना करते हैं कि वे हमारी रक्षा करें, हमें धन दें, दीर्घायु दें, सफलता दें, अच्छा स्वास्थ्य दें और इस अशान्त जीवन सागर को सरलता से पार करा दें। एक आध्यात्मिक साधक और ईश्वर की बीच का सम्बन्ध पुत्र और माँ के सम्बन्ध के समान होना चाहिए। संकल्प करते समय याद रखो कि हालाँकि माँ सब जानती है कि उसकी संतान क्या चाहती है, फिर भी उससे याचना करनी ही चाहिए। हमारे मन में जो भी है, वे जानती हैं। वे हमारे हृदय में वास करने वाली और उस पर शासन करने वाली हैं। वे हमारे सारे विचारों की प्रेरक हैं, चाहे वे सात्त्विक हों, राजसिक हों या तामसिक हों, अच्छे हों, बुरे हों या दु:खदायी हों। फिर भी मैं मनुष्य हूँ, मैं तो वही माँगूँगा जो मेरी इच्छा होगी। इसलिए अपने मन में एक विचार रखो, 'मुझे जीवन में किसी चीज से डरने की जरूरत नहीं है।' माँ मेरी सभी शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक कठिनाइयों का समाधान करेंगी।

मेरी माँ ऐसी सुन्दर स्त्री है। उनमें सौन्दर्य, करुणा और कृपा के अलावा और कुछ भी नहीं है। यदि हम पूर्ण श्रद्धा और भक्ति से उनकी आराधना करें, तो वे हम पर कभी क्रोध नहीं करेंगी, पर हमारे सभी नकारात्मक गुणों तथा आसुरी शक्तियों का नाश कर देंगी। हमारी उनसे यही प्रार्थना होनी चाहिए, 'माँ मुझे पर्याप्त मात्रा में दो कि मैं दूसरों को दे सकूँ।'

यह हमारा परम सौभाग्य है कि केवल अपनों को देने के बदले हम अनेक लोगों को दे सकते हैं। देवी का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए शतचण्डी महायज्ञ एक पावन और दिव्य अवसर है। हम सब पर देवी माँ की कृपा दृष्टि हो!

2000



सीता कल्याणम्

सीता कल्याणम् का आयोजन मेरे पड़ोस की नववधुओं के कल्याण के लिए किया जाता है। कल्याण का अर्थ होता है, मंगल, सुख, सौभाग्य। भारत में सीता आदर्श पत्नी का प्रतीक मानी जाती हैं। परमहंस अलखबाड़ा की यह परम्परा है कि विवाह पंचमी के दिन रिखिया पंचायत की सभी नवविवाहित वधुओं का सम्मान किया जाता है। सत्रह लाख वर्ष पूर्व, त्रेता युग के अन्त में मार्गशीर्ष में इसी दिन सीता और राम का विवाह हुआ था। उनके मिलन का उत्सव मानव आदर्शों की उच्चतम परिणति मानी जाती है। यह आयोजन किसी एक संस्कृति, धर्म या जाति तक सीमित नहीं है। हम भी प्रतीकात्मक रूप से विवाह का आयोजन करते हैं। विवाह के द्वारा सामाजिक कल्याण के साथ-साथ आध्यात्मिक कल्याण भी होता है।

सीता और राम का विवाह जीवात्मा से परमात्मा के, प्रकृति से पुरुष के, शिव से शक्ति के मिलन का प्रतीक है। सीता महाशक्ति, ब्रह्माण्डीय ऊर्जा का प्रतीक हैं और राम ब्रह्माण्डीय चेतना के प्रतीक हैं। जब उनका मिलन होता है तब ब्रह्माण्ड का जन्म होता है। जब पुरुष और स्त्री मिलते हैं, तब बच्चा पैदा होता है। जब एक बीज पृथ्वी के सम्पर्क में आता है तब एक पौधे का जन्म होता है। यह है संयोग की परम्परा।

सभी संस्कृतियों में स्त्री के विवाह पर जोर दिया गया है। विशेष रूप से भारत में, जैसे ही लड़की का जन्म होता है उसके माता-पिता उसके विवाह के लिए परेशान हो जाते हैं। लड़की समाज का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है। इसलिए प्रत्येक माता-पिता का यह कर्त्तव्य है कि वे उसका विवाह सही ढंग से करें। गरीब और जरूरतमन्द लोगों के लिए विवाह एक बहुत महँगा काम है। इसलिए मैंने सीता कल्याणम् के आयोजन द्वारा उनके बोझ को हल्का करने

का निर्णय किया है। जिससे इस पंचायत की लड़कियों का कल्याण हो, जिन्हें मैंने बेटी के रूप में स्वीकार किया है।

जब नवविवाहिता वधू अपने पति के घर रहने के लिए जाती है तब उस आयोजन को द्विरागमन कहते हैं। इस अवसर पर हम सभी नववधुओं को, जो हमारे क्षेत्र में रहती हैं या जो अपने विवाह के बाद यहाँ रहने आयी हैं, उन्हें सम्मानित करते हैं। और यह काम हम खाली हाथ नहीं करते। सीता विवाह के इस अवसर पर पंचायत की सभी नव विवाहिताओं को 'सौभाग्य मंजूषाएँ' देते हैं, जिनमें ससुराल जाते समय अपनी बेटी को दिया जाने वाला सारा सामान होता है।

हम उन्हें सोना, चाँदी, मोती, रेशमी साड़ियाँ, कपड़े, जूते, गहने, प्रसाधन सामग्रियाँ और अन्य उपहार देते हैं, जिनका वर्णन परम्परागत रूप से दुल्हन के सोलह शृंगार में आता है। दूल्हे के लिए भी कपड़ों का एक जोड़ा दिया जाता है। वर और वधू आधे-आधे होते हैं। वर शिव है और वधु पार्वती, वह गौर है और यह गौरी, वह पिंगला है और यह इड़ा। स्त्री आधी है और पुरुष आधा।

ईश्वर का एक सबसे महत्त्वपूर्ण गुण है सौन्दर्य। ईश्वर 'सत्यं शिवं सुन्दरं' है। सीता विवाह के दिन सभी को जितना हो सके उतना सुन्दर दिखना चाहिए। विवाह वह आयोजन है जहाँ सभी कुछ सुन्दर, मोहक और उत्तम होता है। यह जीवन का सबसे सुखद अवसर होता है, जब सन्तति के लिए पुरुष का प्रकृति से मिलन होता है, जब अव्यक्त का व्यक्त से मिलन होता है।



वधुओं की संख्या हर साल घटती-बढ़ती है। कभी यह दो सौ होती है, कभी तीन सौ और एक साल तो यह छः सौ हो गयी थी। जब हमने इस आयोजन को सीता कल्याणम् नाम दिया, तब यहाँ प्रसाद की बाढ़ सी आ गयी। तुम जो भी काम करो, उसके पीछे एक

अच्छा भाव और दूसरों का भला करने का उद्देश्य होना चाहिए। और लड़की का विवाह भारत में बहुत महत्त्वपूर्ण माना जाता है। जब लड़की का विवाह होता है, तब वह आभूषणों, वस्त्रों और अन्य सामानों के रूप में अपना दायभाग लेती है। पश्चिम में इसे दहेज कहते हैं, पर हम इसे दायभाग या उत्तराधिकार कहते हैं। दहेज विवाह कर नहीं है। इस भाव से यह दिया भी नहीं जाता। गरीब से गरीब परिवार भी विवाह के समय खुले दिल से और खुले हाथ से खर्च करता है। सभी उदार हो जाते हैं।

अब यह विचार उठता है कि इसके पीछे दर्शन क्या है। एक संन्यासी के ऊपर और खासकर मुझ पर एक औरत का ऋण चढ़ा हुआ है। मैं अपनी बात बोलता हूँ और साथ-साथ सबकी बात बोलता हूँ। उस औरत का ऋण चढ़ा हुआ है, जिसने मुझे यह बनाया। जीवन में सफलता के लिए जो उचित तत्त्व होने चाहिए थे, मुझे बतलाये और मुझे दिये कि यह रास्ता ठीक है, इस रास्ते से ही चलना है। जिसने मेरे जीवन, मेरे शरीर, मेरी आत्मा, मेरी भावना के कण-कण को दीक्षित किया। वह औरत कोई दूसरी नहीं थी, मेरी माँ थी।

इस संसार में किसी का भी ऋण चुकाया जा सकता है, पर माँ का ऋण कभी नहीं चुका सकते, क्योंकि माँ जीवनदायिनी, प्राणदायिनी, ज्ञानदायिनी और संस्कारदायिनी होती है। माँ ही बेटे के भविष्य का निर्माण करने वाली है। इसलिए मेरी पहली प्राथमिकता है, माँ का ऋण चुकाना।

माँ के ऋण को चुकाने के लिए क्या किया जाए? भारत में स्त्री जाति अन्याय पीड़ित है, अत्याचार पीड़ित है, शोषित है। इसलिए प्रत्येक संन्यासी का यह दायित्व और धर्म हो जाता है कि वह स्त्रियों की मदद करे, उन्हें सहारा दे। इसी दृष्टि से मैंने अपने पड़ोस से शुरू करते हुए, सीता कल्याणम् का आयोजन करने का निर्णय किया। यह पिता की भावना है। पिता ही तो बेटी के विवाह की तैयारी करता है। इस प्रकार भावनाओं को सही दिशा दी जाती है जिससे आगे चल कर वे भक्ति में रूपान्तरित हो सकें।

स्त्री तुम्हारे जीवन में माँ के रूप में, बेटी के रूप में आती है। इस संसार में भगवान की सबसे सबल अभिव्यक्ति स्त्री का मातृ रूप है। वह उसके सौन्दर्य की पराकाष्ठा है, उसका सबसे बड़ा आशीर्वाद और अनुग्रह है। स्त्री को सुरक्षा और स्थिरता चाहिए। यह स्त्री का स्वभाव है, उसका गुण है। वह जहाँ भी जाएगी, मालकिन बनकर। स्त्रियाँ लक्ष्मी हैं, सौन्दर्य और समृद्धि देने वाली।

1998

कन्या कुमारी



एक छोटी बालिका, देवी का कन्या कुमारी रूप होती है। भारत में नौ वर्ष की उम्र में एक लड़की औपचारिक रूप से कन्या कहलाती है। शाक्त तन्त्र में देवी माँ का प्रतीक कन्या है। कन्याएँ अत्यन्त शुद्ध, सरल और निष्पाप होती हैं। रजो दर्शन के पूर्व वे यौन जीवन के इन्द्रजाल से अपरिचित रहती हैं। रजो दर्शन के बाद भी कई लड़कियाँ मानसिक और आध्यात्मिक रूप से कुमारी रहती हैं। एक बार रजो दर्शन होने के बाद शरीर की सारी आन्तरिक बनावट में, मन की आन्तरिक संरचना में और भावनात्मक क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं में परिवर्तन आता है।

वैदिक ज्योतिष विज्ञान के अनुसार लड़की के छत्तीस गुण होते हैं। विवाह के पूर्व लड़के के गुणों से इन गुणों का मिलान किया जाता है। इनमें से कुछ गुण तो मिलते हैं और कुछ नहीं मिलते। सबसे महत्त्वपूर्ण गुण है योनि का



ढाँचा। योनि वह स्थान है जहाँ प्रजनन और जन्म घटित होता है। समस्त ब्रह्माण्ड के लिए भी एक योनि, एक प्रजनन स्थल अवश्य होना चाहिए। अन्तहीन आकाशगंगा, अरबों-खरबों तारें, अनन्त आकाश, इन सबका एक जन्म-स्थान है, जहाँ से ये अनभिव्यक्त से अभिव्यक्त होते हैं।

यदि एक स्त्री की योनि उसे संन्यासिन बताती है तो वह घर-गृहस्थी और पारिवारिक जीवन से उदासीन रहेगी। वह उस जीवन का अनुसरण करेगी, पर उत्साह, आवेग और लालसा के साथ नहीं। यदि किसी प्रकार वह उस जीवन से बाहर आ सकी, तो वह अधिक प्रसन्न रहेगी। ऐसी ही स्त्रियाँ, जो स्वभाव से कुमारी होती हैं, संन्यास के लिए आती हैं।

एक छोटी लड़की इस अर्थ में कुमारी हो सकती है कि उसका मासिकधर्म अभी शुरू नहीं हुआ है, या किसी के साथ शारीरिक सम्बन्ध नहीं हुआ है, पर यही कुँवारापन नहीं है। हर नौ वर्ष की लड़की को कन्या कुमारी के रूप में पूजन के लिए नहीं लिया जा सकता। कुँवारापन एक स्वाभाविक गुण है जो व्यक्ति के अनुवांशिक ढाँचे में होता है। यह उनके जनन तन्त्र से सम्बन्धित एक मौलिक और विशिष्ट गुण है, योनि में अन्तर्निहित एक गुण है, जो लड़की के विवाहित होने और बच्चे को जन्म देने पर भी रहता है। मैं ब्रह्मचारी हूँ, क्योंकि यह मेरा स्वभाव है। यदि मेरा किसी स्त्री से सम्बन्ध रहता, तो भी

वह मेरे स्वभाव को नहीं बदलता, मेरे डी.एन.ए.को नहीं बदलता, जो कि मेरा अनुवांशिक व्यक्तित्व है। वैदिक ज्योतिष में कुँवारेपन का यही अर्थ है। ईसाई धर्म में भी कुमारी की धारणा पायी जाती है। यद्यपि 'मेरी' माँ थी, फिर भी वह कुमारी मानी जाती थी, क्योंकि उसकी योनि में स्त्री के ऐसे मौलिक गुण परिलक्षित होते थे जो कुमारी के होते हैं।

शाक्त तन्त्र का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है कन्या पूजन। जिसमें कुमारी के मौलिक गुण हों और जिसका व्यक्तित्व दिव्य हो, वही आशीष दे सकती है। कुमारी पूजा के लिए शतचण्डी महायज्ञ के अन्तिम दिन माँ के रूप में 108 कन्याओं को आमंत्रित करते हैं और उनकी पूजा देवी के समान करते हैं। उन्हें देवी मानकर वस्त्र देते हैं, भोजन कराते हैं, उनके चरण पखारते हैं और उनका आशीष ग्रहण करते हैं। रिखिया आने के पूर्व कामाख्या (असम) में मैंने कन्या पूजन किया था, जो भारत का प्रमुख शक्तिपीठ है, माँ का योनि पीठ है। देवघर में शक्तिपीठ हृदयपीठ है।

कन्यायें देवी माँ का सबसे सुन्दर रूप हैं। वे आत्मा की पवित्रता का प्रतीक हैं। व्यक्ति की आत्मा कुमारी है, उसका चिरन्तन सौन्दर्य और महिमा दूषित नहीं हो सकती। परन्तु तुम कुमारी आत्मा को नहीं देख सकते, इसलिए तुम्हें साकार रूप में उसकी अवधारणा करनी पड़ती है। रिखिया की कन्याएँ, जो शतचण्डी महायज्ञ की आतिथेया हैं, कन्या कुमारी का प्रतीक हैं। वे तुम्हारी कुमारी आत्मा, तुम्हारी पवित्र आत्मा, तुम्हारी अन्तरात्मा का प्रतीक हैं, जिसे तुम देख नहीं सकते। यह अवधारणा अद्वितीय है। छोटी कुमारियाँ देवी माँ का प्रतीक हो सकती हैं, यह प्राचीन ऋषि-मुनियों की खोज है। क्या तुम अपनी छोटी-सी बेटी को माँ की प्रतिमूर्त्ति मान सकते हो? क्या तुम कन्याओं में देवी का दर्शन कर सकते हो? सभी जगह ये देवी की साकार मूर्तियाँ हैं।

देवी तन्त्र में कन्या को माँ का साकार रूप माना जाता है। हम उसके पति या पिता नहीं हैं। हम उसकी सन्तान हैं और वह हमारी माँ है। हमें यह याद रखना और अनुभव करना चाहिए। शतचण्डी यज्ञ के इस तान्त्रिक महोत्सव में सभी कर्मकाण्डों का संचालन करने वाली एक कन्या है। शाक्त तन्त्र की यह अति प्राचीन अवधारणा है, जहाँ एक छोटी बालिका दिव्य ऊर्जा की मूर्त्ति मानी जाती है।

2003

तुलसी

तुलसी परमहंस अलखबाड़ा की अधिष्ठात्री देवी हैं। अखाड़ा साधना की एक विशेष जगह है। हर अखाड़े की एक इष्ट देवी होती है, और सभी ओषधियों की रानी तुलसी यहाँ की इष्ट देवी हैं। परमहंस सम्प्रदाय में सुन्दर स्वास्थ्य के लिये, आरोग्य के लिए तुलसी पूजा बहुत जरूरी है।

मेरे रिखिया आने के कुछ दिनों बाद, 23 सितम्बर 1989 को गेरु रंग के एक विशाल सर्प ने इस भूमि की परिक्रमा की और विलुप्त हो गया। मैं समझ गया कि जिस स्थान पर वह सर्प अन्तर्धान हुआ है, वही मेरी धूनि की जगह होगी। मैंने अपनी धूनि वहाँ जला ली, जो आज भी जल रही है।

फिर मैंने कुएँ के पास तुलसी का एक छोटा चौरा बनाया, क्योंकि माँ तुलसी आध्यात्मिक और वैदिक दर्शन की अधिष्ठात्री देवी हैं। तुलसी की पूजा केवल भारत में नहीं, बल्कि विश्व के बहुत से देशों, जैसे, थाईलैण्ड, इण्डोनेशिया और ग्रीस में भी होती है। अनेक स्थानों पर घर के सामने आँगन में तुलसी का पौधा लगाया जाता है और उसकी पूजा की जाती है। मैंने तुलसी को अखाड़े की इष्ट देवी इसलिये चुना कि वैद्यनाथ बड़े डॉक्टर हैं और तुलसी औषधियों की रानी हैं। वे औषधीय वनस्पति विभाग की प्रधान हैं।

मैंने विचार किया कि मेरी साधना में सबसे बड़ी बाधा क्या हो सकती है। मैं सच्चे दिल वाला, हट्टा-कट्टा मजबूत आदमी हूँ। एक बार जो निर्णय कर लेता हूँ, उसके प्रति वचनबद्ध रहता हूँ। और अनुष्ठान में मेरा संकल्प हिलता-डुलता नहीं है। लेकिन शारीरिक अस्वस्थता, जैसे, सर्दी-खाँसी से व्यवधान तो हो ही सकता है। यह तो शरीर का धर्म है। अधिक उम्र और बीमारी तो मुझे ऊपर से नीचे ला ही सकती है।

पंचाग्नि और अनुष्ठान साधना के पहले मैंने तुलसी जी से पूर्ण स्वास्थ्य के लिये प्रार्थना की और कहा, 'देवी! हमारे अखाड़े की स्वास्थ्य प्रभारी आज से आप हैं। हमारे स्वास्थ्य की प्रभारी भी आज से आप ही हैं। हम अनुष्ठान कर रहे हैं। पंचाग्नि कर रहे हैं। कृपा करके सर्दी, खाँसी और बुढ़ापे में पैदा होने वाली जो बीमारियाँ हैं, उनको आप गेट से बाहर ही रखिए।' आज तक तो एवमस्तु ही कहा है उन्होंने।

मैं अपने अनुष्ठान को एक दिन के लिए भी नहीं छोड़ना चाहता था और मैंने छोड़ा भी नहीं। यह मैं अभिमान से नहीं, कृतज्ञतापूर्वक कह रहा हूँ। मैं जवान तो हूँ नहीं, परन्तु मैं बिना किसी परेशानी के दस-बारह घण्टे बैठ सकता हूँ। न जोड़ों में दर्द है, न मधुमेह, न रक्तचाप, न हृदयशूल, न सर-दर्द, न खाँसी, न बुखार और न थकान। यह सब तुलसी जी का चमत्कार है। मैंने तुलसी जी से धन-दौलत, आश्रम या सिद्धियों के लिए प्रार्थना नहीं की, मैंने केवल अच्छे स्वास्थ्य और आरोग्य के लिए प्रार्थना की।

पंचाग्नि पाँच वर्षों की तपस्या है और मैं इसे तुलसी जी के आशीर्वाद से ही पूरा कर पाया। 1990 में मैंने पंचाग्नि में एक और साधना जोड़ दी। मैंने अपने इष्ट देवता के मंत्र का एक सौ आठ लाख जप करने का संकल्प ले लिया। इस पुरश्चरण को पूरा करने में मुझे तीन सौ दिन लगे। साथ ही मैं प्रतिदिन तुलसी की पूजा करता रहा। सब कुछ अच्छी तरह से पूरा हो गया और मेरा मंत्र फलित हुआ। मैं पूर्ण स्वस्थ रहा। हालाँकि पंचाग्नि के समय तापमान कभी-कभी नब्बे डिग्री तक पहुँच जाता था, पर मुझे कभी निर्जलन नहीं हुआ। जब से मैंने स्वास्थ्य के लिये तुलसी जी की पूजा प्रारंभ



की है, उनके आशीर्वाद से मैं पूरी तरह स्वस्थ रहा हूँ। यह तुलसी की पूजा का प्रत्यक्ष फल है।

एक दिन मैंने देखा उस तुलसी में एक छोटा-सा पिल्लू चल रहा था। मैंने कहा, यह तो बड़ी मुश्किल हो गयी। किसी ने कहा, इसमें थैलामाइट डालिए। मैंने कहा, नहीं, ये कीटाणुनाशक मुझे पसंद नहीं हैं। अब क्या करूँ? तो मैंने शालिग्राम रख दिया उनके नीचे। शालिग्राम से मैंने तुलसी जी की शादी करा दी। उनकी बीमारी खत्म हो गयी। मैं सच्ची बात क्या बताऊँ। मैं तो अनुभव की बात बोल रहा हूँ।

मैं रोज सुबह सूर्योदय के पहले और सूर्यास्त के समय तुलसी की पूजा करता हूँ और मुझे यह बड़ा अच्छा लगता है। ऐसा नहीं कि भगवान केवल मनुष्यों में या केवल गरीबों और बीमारों में रहते हैं, वे तो वृक्षों में भी रहते हैं। रोज सुबह पाँच बजे मैं एक बाल्टी लेता हूँ और सबसे पहले तुलसी को, फिर पीपल वृक्ष को और उसके बाद बगीचे के अन्य वृक्षों को पानी देता हूँ, साथ-साथ अपना मन्त्र भी जपता रहता हूँ और मुझे लगता है कि मुझे आशीष मिल रहा है। मैं ऐसा क्यों करता हूँ? इसलिए कि वृक्ष भी देवता हैं। तुलसी एक देवी है। रुद्राक्ष शिवजी का प्रिय वृक्ष है। महात्माओं को पेड़ों के नीचे ही आत्म-साक्षात्कार हुआ है। बुद्ध को वट-वृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त हुआ और दत्तात्रेय को गुलर के वृक्ष के नीचे।

ऐसी पूजा के लिये अच्छी बुद्धि की आवश्यकता नहीं, पर दिल अच्छा होना चाहिए। हृदय भावनाओं का केन्द्र है, जो भावों से सीधी जुड़ी होती हैं। आध्यात्मिक जीवन, साधना, भक्ति या भगवान दिल के विषय हैं, दिमाग के नहीं। तुम भाव और श्रद्धा द्वारा सरलता से उन तक पहुँच सकते हो। प्रेम तो दिल से होता है, खोपड़ी से नहीं। भक्ति को प्रगाढ़ बनाने के लिये अपनी भावनाओं का विकास करना, उन्हें स्वस्थ और सकारात्मक बनाये रखना आवश्यक है।

जो गहने मैं इस पंचायत की नव-वधुओं को देता हूँ, वे सभी तुलसी के ही हैं। सबसे पहले उन्हें तुलसी को ही चढ़ाया जाता है। जब तुम मुझे सोने के कंगन, नथनी या बालों में लगाने वाले आभूषण देते हो, तो तुम वस्तुतः उन्हें तुलसी को ही अर्पित करते हो, क्योंकि वे ही यहाँ की मालकिन हैं। सब कुछ पहले तुलसी जी को अर्पित किया जाता है, उसके बाद गाँव की नव-वधुओं को दिया जाता है। एक बुद्धिवादी के लिये तुलसी मात्र एक पौधा है, पर मेरे लिये वे एक देवी हैं।

1997

गायत्री

गायत्री सूर्य का पूरक स्त्री पक्ष है और प्राण के लिये एक मन्त्र है। इस मन्त्र के तीन रूप हैं। उषा-काल में गायत्री का रूप एक छोटी बालिका या कन्या का होता है। मध्याह्न में उनका रूप पूर्ण युवती का होता है। संध्या में उनका रूप वृद्धा का होता है। इसी प्रकार प्रातः गायत्री का वर्ण लाल, मध्याह्न में पीला और रात्रि में धूसर होता है। दिन के समय के अनुसार गायत्री का स्वभाव या गुण भी बदलते हैं। उषा काल में वे अबोध बालिका होती हैं, मध्याह्न में वे सौम्य और सुन्दर तथा संध्या में ज्ञान और विवेक से पूर्ण रहती हैं।

प्राणों का वर्णन, रंग और गुण भी इसी के समान होते हैं। गायत्री मन्त्र प्राण के समग्र रूप को प्रस्तुत करता है। इसीलिये यह प्राणविद्या का मन्त्र है। इसमें चौबीस अक्षर हैं।



ॐ भूर्भुवः सुवः
तत्सवितुर्वरेण्यम्
भर्गो देवस्य धीमहि
धियो यो नः प्रचोदयात्।

गणेश, ब्रह्मा, विष्णु, नृसिंह, गरुड़, रुद्र, नन्दिकेश्वर, गोपाल, परशुराम, दक्षिणामूर्ति, गुरु, हंस, हयग्रीव, तन्त्रिका ब्रह्म, सरस्वती, लक्ष्मी, शक्ति, अन्नपूर्णा, कालिका सभी के अलग-अलग गायत्री मंत्र हैं।

उपनिषदों के अनुसार कुल 34 गायत्री हैं। इसका पूरा विवरण नारायण उपनिषद् में है।

गायत्री का शाब्दिक अर्थ है, वह जो इन्द्रियों को मुक्त कर दे। चेतना तीन धरातलों पर रहती है – भौतिक धरातल, सूक्ष्म धरातल और कारण धरातल। निम्न धरातलों की अपेक्षा उच्च धरातलों पर यह अधिक सशक्त होती है। आपकी चेतना भौतिक धरातल की अपेक्षा सूक्ष्म धरातल में अधिक शक्तिशाली होती है और कारण धरातल पर सूक्ष्म धरातल की अपेक्षा और अधिक शक्तिशाली होती है।

चेतना सूर्य के समान है, जो उषा काल में पूर्व दिशा में उदय होता है। सूर्योदय के पूर्व चारों ओर अँधेरा रहता है। उस अन्धकार में तुम स्त्री-पुरुष, पशु, पेड़ और वस्तुओं को स्पष्ट रूप से पहचान नहीं सकते हो। जानते हो कि वे हैं, परन्तु देख नहीं सकते। जैसे ही उषाकाल का आगमन होता है, तुम पूर्व क्षितिज पर सूर्य की किरणों की चमक देखते हो, फिर तुम्हें उन वस्तुओं का ज्ञान और अनुभव होता है, जो वहाँ पहले से थीं, पर तुम उन्हें देख नहीं पाते थे। जब सूर्य का उदय होता है तब सभी चीजें स्पष्ट हो जाती हैं।

अत: गायत्री मन्त्र मानव चेतना के क्षितिज पर उगते हुए सूर्य के समान है और केवल बाह्य जगत् को नहीं, अन्तर्जगत् को भी प्रकाशित करता है। हमारे अन्तर्जगत् में बहुत सारी सुन्दर चीजें हैं, परन्तु हम उन्हें नहीं जानते, हम उन्हें देख नहीं सकते। मनीषियों के ग्रन्थों से हमें उनका ज्ञान होता है, परन्तु हम उन्हें तब तक नहीं देख सकते जब तक प्रकाश न हो। गायत्री मन्त्र हमारी चेतना के विभिन्न क्षेत्रों पर प्रकाश डालता है और यह ज्ञान करा देता है कि चीजें न केवल बाह्य, भौतिक धरातल पर विद्यमान हैं, बल्कि मध्य और अर्द्ध धरातलों पर भी विद्यमान हैं। यही गायत्री मन्त्र का अर्थ है।

1983





माँ का व्यक्तित्व ऐसा होता है जो मानव मन को बहुत आकृष्ट करता है। बच्चे पिता की अपेक्षा माँ के अधिक निकट होते हैं। बच्चों को पिता की अपेक्षा माँ अधिक प्रिय होती है। वह वात्सल्य, कोमलता और प्रेम की प्रतिमा होती है। वह सौम्य, मधुर और कोमल होती है। वह अपने बच्चों की आवश्यकताओं की देखभाल करती है। बच्चा पिता की अपेक्षा माँ के सामने नि:संकोच होकर मन की बातें कहता है।

– स्वामी शिवानन्द

माँ श्रद्धा का आधार या प्रथम प्रतीक है। माँ जीवन देने वाली है, ज्ञान और संस्कार देने वाली है। जिस प्रकार वृक्ष का भविष्य बीज में निहित होता है, उसी प्रकार बच्चे का भाग्य माँ के गर्भ में लिखा जाता है। इसलिए यह जरूरी है कि जीवन देने वाली, पालन करने वाली माँ को आदर दिया जाए, उसे हृदय में स्थान दिया जाए और उससे प्रेम किया जाए। प्रत्येक संन्यासी का दायित्व है कि वह स्त्रियों की सहायता करे और उनको समर्थन दे। स्त्री का ऋण चुकाये बिना कोई समाज प्रगति नहीं कर सकता।

– स्वामी सत्यानन्द

क्या कोई ऐसा बच्चा है जो अपनी माँ के स्नेह और प्यार का ऋणी न हो? माँ जीवनभर तुम्हारे मित्र, दार्शनिक, संरक्षक और मार्गदर्शक की भूमिका निभाती है। मानव शरीरधारी माँ जगज्जननी की ही अभिव्यक्ति है। इस जगत् में बच्चे की सारी आवश्यकताएँ माँ ही पूरी करती है।

– स्वामी शिवानन्द

शिवरात्रि

शिव और शक्ति के ब्रह्माण्डीय मिलन का प्रतीक, शिवरात्रि पर्व माघ महीने की अमावस्या के दिन मनाया जाता है। यह मिलन कुण्डलिनी योग का प्रतीक है, जिसमें शिव शक्ति से मिलने जाते हैं। भौतिक स्तर पर यह चेतना के जागरण और विकास के उच्च स्तर पर शक्ति से उसके मिलन का प्रतीक है। शिव का अर्थ है उच्च चेतना तथा रात्रि का अर्थ है रात, यानि 'आत्मा की अन्धेरी रात', या प्रकाश के ठीक पहले की अवस्था। शिवरात्रि, संन्यासियों और संन्यास की दीक्षा लेने के लिए सबसे शुभ दिन माना जाता है।

कथा के अनुसार, वर्ष की सबसे अन्धेरी रात, शिवरात्रि को योगियों के ईश्वर, शिव, हिमालय पुत्री पार्वती के घर जाते हैं। शिव एक तपस्वी हैं और सर्पों से लदे हुए हैं। मूल और पशु प्रवृत्तियों के प्रतीक दैत्यों और भूतों से भरी उनकी बारात भी, जिसके वे नियंत्रक हैं, उतनी ही रोमांचकारी है। कुछ बिना सिर के हैं, कुछ केवल एक पैर पर चलते हैं, तो कुछ तीन पैरों पर। कुछ के हाथी जैसे बड़े-बड़े कान हैं, जो हवा में झूलते हैं, तो कुछ के माथे या पेट के बीच में लाल रंग की एक आँख है।

परन्तु ज्यों ही शिव और उनके गण पार्वती की हिमालय नगरी में प्रवेश करते हैं, सभी का रूप एकाएक सुन्दर हो जाता है और उनके शरीर पर अच्छे कपड़े और चमचमाते हुए आभूषण दिखाई पड़ने लगते हैं। मूल प्रवृत्तियों का स्थान अन्तर्दृष्टि ले लेती है। इस प्रकार बहुत ही दिव्यता, प्रसन्नता और खुशी के साथ शादी होती है। उसके बाद शिव और पार्वती कैलाश पर्वत के शिखर पर जाते हैं, जो सहस्रार का प्रतीक है। वहाँ पर उनका मिलन होता है और वे ब्रह्माण्डीय चेतना के परम आनन्द में डूब जाते हैं।

विवाह के बाद शिव और शक्ति एक साथ नीचे उतरते हैं, जो उच्चतम चेतना के द्वैत स्तर पर प्रकट होने का प्रतीक है। एक होने के बाद शिव और शक्ति अब विश्व में दो रूपों में कार्य कर सकते हैं। सभी व्यक्तियों के विकास के लिए इस घटना का विशेष महत्त्व है, क्योंकि यह प्रत्येक साधक के जीवन में हो रही उस घटना का प्रतीक है, जिसमें वह आध्यात्मिक जागरण का अनुभव करने के बाद पुन: उच्च सजगता के साथ संसार के कार्यों में भाग लेता है।

तंत्र में शिव को पुरुष माना गया है। शिव वह चेतना है, जो सभी कर्मों तथा परिवर्तनों से परे है। शक्ति को नारी माना गया है, जो कर्म के माध्यम से अनन्त विकास की ओर बढ़ रही है। शिव धनात्मक और शक्ति ऋणात्मक हैं; शिव पहल करते हैं और शक्ति उसे स्वीकार करती और उसका विस्तार करती है। शक्ति निर्माण करने वाली ऊर्जा है, जो शिव की चेतना से प्रेरित होकर सम्पूर्ण सृष्टि को प्रकट करती है। हम उन्हें दो अलग-अलग रूपों में देखते हैं। परन्तु वास्तव में वे एक-दूसरे के पूरक हैं, क्योंकि बिना चेतना के शक्ति बिखरी रहती है और बिना शक्ति के चेतना कर्महीन है। वे दोनों एक-दूसरे में ऐसे मिले हुए हैं, जैसे सूर्य में प्रकाश। उनका मिलन आनन्दमय संयोग का मूल प्रतीक और द्वैत के बीच एकत्व की सजगता है।

ऋषि बहुत पहले से कहते आए हैं और विज्ञान भी अब इस बात को मानता है कि भौतिक स्तर पर पदार्थ, चेतना और ऊर्जा एक ही हैं। पदार्थ की मूल इकाई, परमाणु को अब ऊर्जा का एक स्थिर, धनात्मक केन्द्रीय भाग माना जाता है, जो कि एक सक्रिय ऋणात्मक ऊर्जा क्षेत्र से सन्तुलित होता है। इसे शिव और शक्ति के मिलन के नाम से जाना जाता है। जो सिद्धान्त छोटे से परमाणु पर लागू होता है, वही इस विशाल ब्रह्माण्ड पर भी लागू होता है, जो कि विभिन्न ऊर्जा क्षेत्रों के आपसी सम्बन्धों पर टिका हुआ है।



शिव और शक्ति के मिलन की स्मृति मनुष्य के मन में व्यक्तिगत

संयोग के संस्कार के रूप में बहुत ही गहराई से दबी हुई है, जिसका अनुभव तभी होता है, जब योग के द्वारा हमें उन शक्तियों का ज्ञान होता है, जिनसे हमारे व्यक्तित्व का निर्माण हुआ है।

हर व्यक्ति के अन्दर पुरुषत्व और स्त्रीत्व के गुण होते हैं, और इस परस्पर पूरक आन्तरिक स्वभाव को जागृत करके हम उच्चतर जीवन का अनुभव कर सकते हैं। तंत्र के द्वारा हम अचेतन मन के अन्धकारपूर्ण क्षेत्रों की खोज करते हैं, और अनियन्त्रित वासनाओं, उग्र स्वभावों और दैनिक जीवन के फलस्वरूप दबी हुई अनुचित कुण्ठाओं को पहचानते हैं। शिव के गणों की प्रतीक हमारे स्वभाव की ये मूल प्रवृत्तियाँ तभी परिवर्तित होती हैं, जब हम अपने भीतर के विपरीत गुणों – धनात्मक और ऋणात्मक, पुरुषोचित् और स्त्रियोचित्, शिव और शक्ति – को एक में मिला देते हैं। तब जागरण होता है और हमारे मन की सोई हुई प्रतिभाएँ जागृत हो जाती हैं, हमारा वास्तविक आन्तरिक स्वभाव प्रकट होता है। लम्बे समय से जिन्हें हम असुर समझ रहे थे, वे दिव्य बन जाते हैं।

शिव निरंतर बनी रहने वाली वह सजगता है, जो अपरिवर्तनीय और अविचलित दिव्य ज्योति के रूप में हम सभी में स्थित है। शक्ति हमें मन और शरीर प्रदान करती है, जो इस दैवी सजगता का साक्षात् अनुभव करने के साधन हैं। शक्ति वह ऊर्जा है, जो हमें उच्च सजगता के शिखर पर स्थापित करती है। आध्यात्मिक स्तर पर, इन दो ब्रह्माण्डीय शक्तियों का मिलन परम सत्ता के साथ आनन्दमय योग का प्रतीक है। संभोग के समय हम अपनी आत्मा को भूल जाते हैं और क्षणिक आनन्द का अनुभव करते हैं। परन्तु यह उस परम आनन्द की एक झलक मात्र है, जो व्यक्ति की चेतना को परमसत्ता से मिला देता है।

शिव और शक्ति का मिलन दैवी सत्ता से कभी समाप्त न होने वाले योग का मौलिक प्रतीक है। यहाँ न शुद्धता है न अशुद्धता, न स्वीकृति है न अस्वीकृति, न साकार न निराकार, केवल एक उच्च चेतना की अवस्था है, जो सभी द्वन्द्वों से परे है। पुरुष और स्त्री का संयोग, शिव और शक्ति का संयोग बन जाता है। शारीरिक संयोग चेतना की उच्चतर अवस्था में आत्मिक संयोग बन जाता है। वासना और अज्ञान से पूर्ण साधारण पुरुष और स्त्री, शिव और शक्ति के दिव्य रूप में बदल जाते हैं, जो असीम और स्वतंत्र हैं।

1977

अर्द्धनारीश्वर

अर्द्धनारीश्वर आधा पुरुष और आधी स्त्री है, शिव और शक्ति का एक स्वरूप में योग। अर्द्धनारीश्वर स्तोत्र में शिव और शिवा अर्द्धनारीश्वर स्वरूप के अभिन्न अंग हैं।

चाम्पेयगौरार्ध शरीर कायै, कर्पूर गौरार्ध शरीर काय।
धम्मिलकायै च जटाधराय, नमः शिवायै च नमः शिवाय।
कस्तुरिकाकुंकुम चर्चितायै चितारजः पुञ्जविचर्यिताय।
कृतस्मरायै विकृतस्माराय नमः शिवायै च नमः शिवाय।
झणत्क्वणत्कंकण नूपूरायै पादाब्जराजित्फणि नुपूराय।
हेमांगदायै भुजागांगदाय नमः शिवायै च नमः शिवाय।
विशाल नीलोत्पल लोचनायै विकासिपंकेरुह लोचनाय।
समेक्षणायै विषमेक्षणाय नमः शिवायै च नमः शिवाय।
मन्दिर माला कलितालकायै कपालमालांकित कन्धराय।
दिव्याम्बरायै च दिगम्बराय नमः शिवायै च नमः शिवाय।
अम्मोघर श्यामल कुन्तलायै तड़ित्प्रभाताम्र जटाधराय।
निरीश्वरायै निखिलेश्वराय, नमः शिवाय च नमः शिवाय।
प्रपंच सृष्ट्युन्मुखलास्यकायै, समस्त संहारक ताण्डवाय।
जगज्जनन्यै जगदेकपित्रे नमः शिवायै च नमः शिवाय।
प्रदीप्त रत्नोज्ज्वलकुण्डलायै स्फुन्महापन्नगभूषणाय।
शिवान्वितायै च शिवान्तिवताय, नमः शिवायै च नमः शिवाय।

हम सभी अर्द्धनारीश्वर हैं, आधा पुरुष, आधा स्त्री, आधा इड़ा, आधा पिंगला, आधा अनुकम्पी, आधा परानुकम्पी, आधा गंगा, आधा जमुना,

आधा सूर्य, आधा चन्द्र। जब ध्यान की अवस्था में ये दो तत्त्व मिलते हैं तब चेतना का विस्फोट होता है। व्यक्ति इस जागरण को प्रेरित कैसे करे और योगावस्था में कैसे स्थित हो? जागरण का उद्देश्य रखने वाले को पहले दोनों तत्त्वों – पुरुष और प्रकृति को समझना चाहिए। प्रकृति का मूर्त्तरूप स्त्री है और पुरुष का मूर्त्तरूप है मर्द, जैसे इड़ा स्त्रीलिंग है और पिंगला पुल्लिंग है, शक्ति और शिव।

1995



शक्तिपात

शक्तिपात शक्तिशाली अनुभव का स्थानान्तरण है। यह शक्ति का सम्प्रेषण नहीं है, बल्कि शक्ति की अनुभूति है। शिष्य को मार्ग पर आगे बढ़ाने के लिए एक प्रोत्साहन है। परन्तु सभी श्रेणी के शिष्यों पर इस अनुभूति का स्थानान्तरण संभव नहीं है, बहुत कम शिष्यों में इसे ग्रहण करने की क्षमता होती है। प्राचीनकाल से शक्तिपात का उपयोग गुरुओं और संतों ने किया है। प्रारम्भिक ईसाई सन्त शक्तिपात में प्रवीण थे और वे इसका उपयोग सम्राटों और शासकों में सकारात्मक संस्कार उत्पन्न करने के लिए करते थे।

जब मैं बच्चा था, मेरे माता-पिता मुझे आनन्दमयी माँ से मिलाने के लिए ले गये, जो भारत की महान् महिला सन्त थीं। यद्यपि वे उस समय केवल पचीस वर्ष की थीं, उनसे आध्यात्मिक ऊर्जा, आनन्द और शान्ति की लहरें प्रवाहित होती थीं। जब उन्होंने मेरी पीठ ठोंकी तो उनके शरीर से कुछ ऐसा निकला जिससे मुझे एक अद्‌भुत अनुभूति हुई। वह अनुभूति कई महीनों तक रही, पर धीरे-धीरे कम होती गई, और बाद में वह एक स्मृति बनकर रह गई। जब वह समाप्त हो गई तब मुझे पुनः यात्रा शुरू करनी पड़ी।

जब गुरु और शिष्य एक-दूसरे से जुड़ते हैं तब गुरु की शक्ति स्वतः शिष्य की ओर प्रवाहित होती है। यही शक्तिपात है, गुरु से शिष्य को उच्च आवृत्ति वाली तरंगों का सम्प्रेषण। जब गुरु अपनी शक्ति का एक अंश शिष्य के मूलाधार में सम्प्रेषित करता है तब कुण्डलिनी में एक खिंचाव उत्पन्न होता है। पर वह खिंचाव वास्तविक जागरण नहीं है।

शक्तिपात का अनुभव कितनी भी दूरी पर हो सकता है, चाहे गुरु के सान्निध्य में हो, या उनसे दूर रहकर। दूरी बाधा नहीं है। दूरी देश-काल



से सम्बन्धित है, भावातीत अवस्था से नहीं। अत: गुरु की ऊर्जा का सम्प्रेषण देश और काल पर आधारित नहीं है। फिर भी गुरु और शिष्य का आन्तरिक सम्बन्ध हो और गुरु की शक्ति स्वत: शिष्य की ओर प्रवाहित हो, यह आवश्यक है। जब तक गुरु शिष्य अपना अलग-अलग व्यक्तित्व रखते हैं, तब तक शक्तिपात नहीं हो सकता।

एक प्रकार के निश्छल साधक होते हैं, जो बड़ी सरलता से इस जुड़ने की प्रक्रिया को स्वीकार कर लेते हैं और जब ऐसा व्यक्ति गुरु के समक्ष होता है, तो सम्बन्ध स्वत: बन जाता है। तब गुरु की शक्तिशाली विचार तरंगें, आध्यात्मिक लहरें उस सम्बन्ध के माध्यम से शिष्य तक पहुँच जाती हैं। ये ऊर्जा तरंगें सीधे मूलाधार चक्र में चली जाती हैं और सुषुप्त कुण्डलिनी को अशान्त कर देती हैं। कुण्डलिनी का स्वभाव सात्त्विक नहीं होता, बल्कि तामसिक होता है। यदि तुम कुण्डलिनी को नहीं जगाते हो तो वह एक ही जन्म तक नहीं, जन्मों तक पड़ी रहेगी। सुषुम्ना का, जिस मार्ग से कुण्डलिनी ऊपर जाती है, स्वभाव तामसिक ही है। अत: जब गुरु और शिष्य का सम्बन्ध जुड़ जाता है और गुरु की ऊर्जा तरंगें शिष्य में प्रवाहित होने लगती हैं, तब वे सीधे मूलाधार चक्र में जाती हैं, जहाँ वे सुषुप्त कुण्डलिनी को अशान्त कर देती हैं।

शक्तिपात शिष्य की शारीरिक उपस्थिति में भी हो सकता है और दूर से भी, यह किसी वस्तु के माध्यम से भी हो सकता है। यह स्पर्श द्वारा, रूमाल, माला, फूल, फल या किसी खाद्य वस्तु द्वारा हो सकता है। जिस पद्धति में गुरु को सिद्धि प्राप्त है, वह उस पद्धति से सम्प्रेषण कर सकता है। गुरु की शक्ति का शिष्य में सम्प्रेषण अनेक विधियों से हो सकता है। यदि शिष्य खुला हुआ है, और तैयार है तो गुरु किसी भी सीमा तक उसे भर सकता है।

यह कहना बड़ा कठिन है कि जागरण के लिए कौन योग्य है। विकास की एक सीमा है, जिसके बाद ही शक्तिपात प्रभावी होता है, पर वह विकास आध्यात्मिक होता है; बौद्धिक, भावनात्मक, सामाजिक और धार्मिक नहीं होता। जो निष्कपट और बच्चे की तरह होता है, जिसके भीतर बहुत श्रद्धा, प्रेम, समर्पण और बच्चे की सी सरलता होती है, ऐसा साधक शक्तिपात प्राप्त करता है। शक्तिपात वास्तव में गुरु की अनन्त ऊर्जा तरंगों का सम्प्रेषण ही है।

1979





माँ गंगा उस व्यक्ति को दृश्य और अदृश्य शक्तियाँ देती हैं जो उनकी कृपा का आकांक्षी है। गंगा मेरी माँ है। वह मुझे प्रेरणा देती है, मेरा मार्गदर्शन करती है। मैं गंगा में स्नान करता हूँ। मैं गंगा की मछलियों को खिलाता हूँ। मैं गंगा की आरती करता हूँ। मैं गंगा की स्तुति करता हूँ। मैं गंगा को नमन करता हूँ। मैं गंगा की महिमा गाता हूँ। मैं गंगा की भव्यता लिखता हूँ। गंगा ने मेरा पालन किया है। गंगा ने मुझे विश्राम दिया है। माँ गंगा की जय हो! जीवन प्रकाश और प्रेम देने वाली की जय हो! श्रद्धा और भक्ति से उनकी पूजा करो। शुद्धता, प्रेम, आत्मसंयम और समदृष्टि के फूलों से उनका श्रृंगार करो। उनका नाम गाओ। माँ गंगा तुम सबको अपना आशीष दें।

– स्वामी शिवानन्द

हम सबको माँ से अपना सम्बन्ध जोड़ना है। भक्ति या पूर्ण प्रेम ही पहली आवश्यकता है। भावना को भक्ति में बदलने के लिए पहले बुद्धि को विश्राम दे दो। अपनी सभी भावनाओं और आसक्तियों को उच्च सत्य पर केन्द्रित करो। जब तुम ऐसी चीज खोज रहे हो, जिसे कभी किसी ने देखा न हो, तो वहाँ चिन्तन काम नहीं करेगा। याद रखो देवी तुम्हारे भीतर है। प्रेमपूर्ण मन से उनकी आराधना करो।

– स्वामी सत्यानन्द

देवी, दुर्गा या चण्डी के रूप में भगवान की अवधारणा केवल एक सिद्धान्त नहीं है, बल्कि एक व्यावहारिक जीवन विद्या है। ज्ञान और आत्म-साक्षात्कार के लिए हम महिमामयी माँ की पूजा-अर्चना करें! देवी दुर्गा का आशीष तुम सबको प्राप्त हो! वे तुम्हें आध्यात्मिक ज्योति और आत्म-साक्षात्कार का आशीष दें!

– स्वामी शिवानन्द

दुर्गा सप्तशती



अथ सप्तश्लोकी दुर्गा

शिव उवाच

देवि त्वं भक्तसुलभे सर्वकार्यविधायिनी ।
कलौ हि कार्यसिद्ध्यर्थमुपायं ब्रूहि यत्नत: ॥

देव्युवाच

शृणु देव प्रवक्ष्यामि कलौ सर्वेष्टसाधनम् ।
मया तवैव स्नेहेनाप्यम्बास्तुति: प्रकाश्यते ॥

ॐ अस्य श्रीदुर्गासप्तश्लोकीस्तोत्रमन्त्रस्य नारायण ऋषि:,
अनुष्टुप् छन्द:, श्री महाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवता:,
श्रीदुर्गाप्रीत्यर्थं सप्तश्लोकीदुर्गापाठे विनियोग: ।

ॐ ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा ।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ॥1॥
दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तो:
स्वस्थै: स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि ।
दारिद्र्यदु:खभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता ॥2॥
सर्वमंगलमांगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥3॥
शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे ।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥4॥
सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते ।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥5॥
रोगानशेषानपहंसि तुष्टा
रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान् ।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां
त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति ॥6॥
सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि।
एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम् ॥7॥

इति श्रीसप्तश्लोकी दुर्गा सम्पूर्णा ॥

ॐ

॥ श्रीदुर्गायै नमः ॥

श्रीदुर्गाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्

ईश्वर उवाच

शतनाम प्रवक्ष्यामि शृणुष्व कमलानने।
यस्य प्रसादमात्रेण दुर्गा प्रीता भवेत् सती ॥1॥
ॐसती साध्वी भवप्रीता भवानी भवमोचनी ।
आर्या दुर्गा जया चाद्या त्रिनेत्रा शूलधारिणी ॥2॥
पिनाकधारिणी चित्रा चण्डघण्टा महातपाः ।
मनो बुद्धिरहंकारा चित्तरूपा चिता चितिः ॥3॥
सर्वमन्त्रमयी सत्ता सत्यानन्दस्वरूपिणी ।
अनन्ता भाविनी भाव्या भव्याभव्या सदागतिः ॥4॥
शाम्भवी देवमाता च चिन्ता रत्नप्रिया सदा ।
सर्वविद्या दक्षकन्या दक्षयज्ञविनाशिनी ॥5॥
अपर्णानेकवर्णा च पाटला पाटलावती।
पट्टाम्बरपरीधाना कलमञ्जीररञ्जिनी ॥6॥
अमेयविक्रमा क्रूरा सुन्दरी सुरसुन्दरी ।
वनदुर्गा च मातंगी मतंगमुनिपूजिता ॥7॥
ब्राह्मी माहेश्वरी चैन्द्री कौमारी वैष्णवी तथा ।
चामुण्डा चैव वाराही लक्ष्मीश्च पुरुषाकृतिः॥8॥
विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया नित्या च बुद्धिदा ।
बहुला बहुलप्रेमा सर्ववाहनवाहना ॥9॥
निशुम्भशुम्भहननी महिषासुरमर्दिनी ।
मधुकैटभहन्त्री च चण्डमुण्डविनाशिनी ॥10॥
सर्वासुरविनाशा च सर्वदानवघातिनी।
सर्वशास्त्रमयी सत्या सर्वास्त्रधारिणी तथा ॥11॥
अनेकशस्त्रहस्ता च अनेकास्त्रस्यधारिणी।
कुमारी चैककन्या च कैशोरी युवती यतिः॥12॥
अप्रौढा चैव प्रौढा च वृद्धमाता बलप्रदा ।
महोदरी मुक्तकेशी घोररूपा महाबला ॥13॥

अग्निज्वाला रौद्रमुखी कालरात्रिस्तपस्विनी ।
नारायणी भद्रकाली विष्णुमाया जलोदरी ॥ 14 ॥
शिवदूती कराली च अनन्ता परमेश्वरी ।
कात्यायनी च सावित्री प्रत्यक्षा ब्रह्मवादिनी ॥ 15 ॥
य इदं प्रपठेन्नित्यं दुर्गानामशताष्टकम् ।
नासाध्यं विद्यते देवि त्रिषु लोकेषु पार्वति ॥ 16 ॥
धनं धान्यं सुतं जायां हयं हस्तिनमेव च ।
चतुर्वर्गं तथा चान्ते लभेन्मुक्तिं च शाश्वतीम् ॥ 17 ॥
कुमारीं पूजयित्वा तु ध्यात्वा देवीं सुरेश्वरीम् ।
पूजयेत् परया भक्त्या पठेन्नामशताष्टकम् ॥ 18 ॥
तस्य सिद्धिर्भवेद् देवि सर्वैः सुरवरैरपि ।
राजानो दासतां यान्ति राज्यश्रियमवाप्नुयात् ॥ 19 ॥
गोरोचनालक्तककुंकुमेन
सिन्दूरकर्पूरमधुत्रयेण
विलिख्य यन्त्रं विधिना विधिज्ञो
भवेत् सदा धारयते पुरारिः ॥ 20 ॥
भौमावास्यानिशामग्रे चन्द्रे शतभिषां गते ।
विलिख्य प्रपठेत् स्तोत्रं स भवेत् सम्पदां पदम् ॥ 21 ॥

इति श्री विश्वसारतन्त्रे दुर्गाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं समाप्तम् ।



अथ देव्याः कवचम्

ॐ अस्य श्रीचण्डीकवचस्य ब्रह्मा ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, चामुण्डा देवता, अंगन्यासोक्तमातरो बीजम्, दिग्बन्धदेवतास्तत्त्वम्, श्रीजगदम्बाप्रीत्यर्थे सप्तशतीपाठांगत्वेन जपे विनियोगः ।

ॐ नमश्चण्डिकायै ॥

मार्कण्डेय उवाच

ॐ यद्गुह्यं परमं लोके सर्वरक्षाकरं नृणाम् ।
यन्न कस्यचिदाख्यातं तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ 1 ॥

ब्रह्मोवाच

अस्ति गुह्यतमं विप्र सर्वभूतोपकारकम् ।
देव्यास्तु कवचं पुण्यं तच्छृणुष्व महामुने ॥ 2 ॥
प्रथमं शैलपुत्री च द्वितीयं ब्रह्मचारिणी।
तृतीयं चन्द्रघण्टेति कूष्माण्डेति चतुर्थकम् ॥ 3 ॥
पञ्चमं स्कन्दमातेति षष्ठं कात्यायनीति च ।
सप्तमं कालरात्रीति महागौरीति चाष्टमम् ॥ 4 ॥
नवमं सिद्धिदात्री च नवदुर्गाः प्रकीर्तिताः ।
उक्तान्येतानि नामानि ब्रह्मणैव महात्मना ॥ 5 ॥
अग्निना दह्यमानस्तु शत्रुमध्ये गतो रणे ।
विषमे दुर्गमे चैव भयार्ताः शरणं गताः ॥ 6 ॥
न तेषां जायते किंचिदशुभं रणसंकटे ।
नापदं तस्य पश्यामि शोकदुःखभयं न हि ॥ 7 ॥
यैस्तु भक्त्या स्मृता नूनं तेषां वृद्धिः प्रजायते ।
ये त्वां स्मरन्ति देवेशि रक्षसे तान्न संशयः ॥ 8 ॥
प्रेतसंस्था तु चामुण्डा वाराही महिषासना ।
ऐन्द्री गजसमारूढा वैष्णवी गरुडासना ॥ 9 ॥
माहेश्वरी वृषारूढा कौमारी शिखिवाहना ।
लक्ष्मीः पद्मासना देवी पद्महस्ता हरिप्रिया ॥ 10 ॥
श्वेतरूपधरा देवी ईश्वरी वृषवाहना ।
ब्राह्मी हंससमारूढा सर्वाभरणभूषिता ॥ 11 ॥
इत्येता मातरः सर्वाः सर्वयोगसमन्विताः ।
नानाभरणशोभाढ्या नानारत्नोपशोभिताः ॥ 12 ॥

दृश्यन्ते रथमारूढा देव्यः क्रोधसमाकुलाः ।
शंखं चक्रं गदां शक्तिं हलं च मुसलायुधम् ॥ 13 ॥
खेटकं तोमरं चैव परशुं पाशमेव च ।
कुन्तायुधं त्रिशूलं च शार्ङ्गमायुधमुत्तमम् ॥ 14 ॥
दैत्यानां देहनाशाय भक्तानामभयाय च ।
धारयन्त्यायुधानीत्थं देवानां च हिताय वै ॥ 15 ॥
नमस्तेऽस्तु महारौद्रे महाघोरपराक्रमे ।
महाबले महोत्साहे महाभयविनाशिनि ॥ 16 ॥
त्राहि मां देवि दुष्प्रेक्ष्ये शत्रूणां भयवर्धिनि ।
प्राच्यां रक्षतु मामैन्द्री आग्नेय्यामग्निदेवता ॥ 17 ॥
दक्षिणेऽवतु वाराही नैर्ऋत्यां खड्गधारिणी ।
प्रतीच्यां वारुणी रक्षेद् वायव्यां मृगवाहिनी ॥ 18 ॥
उदीच्यां पातु कौमारी ऐशान्यां शूलधारिणी ।
ऊर्ध्वं ब्रह्माणि मे रक्षेदधस्ताद् वैष्णवी तथा ॥ 19 ॥
एवं दश दिशो रक्षेच्चामुण्डा शववाहना।
जया मे चाग्रतः पातु विजया पातु पृष्ठतः ॥ 20 ॥
अजिता वामपार्श्वे तु दक्षिणे चापराजिता ।
शिखामुद्योतिनी रक्षेदुमा मूर्ध्नि व्यवस्थिता ॥ 21 ॥
मालाधरी ललाटे च भ्रुवौ रक्षेद् यशस्विनी ।
त्रिनेत्रा च भ्रुवोर्मध्ये यमघण्टा च नासिके ॥ 22 ॥
शंखिनी चक्षुषोर्मध्ये श्रोत्रयोर्द्वारवासिनी ।
कपोलौ कालिका रक्षेत्कर्णमूले तु शांकरी ॥ 23 ॥
नासिकायां सुगन्धा च उत्तरोष्ठे च चर्चिका ।
अधरे चामृतकला जिह्वायां च सरस्वती ॥ 24 ॥
दन्तान् रक्षतु कौमारी कण्ठदेशे तु चण्डिका ।
घण्टिकां चित्रघण्टा च महामाया च तालुके ॥ 25 ॥
कामाक्षी चिबुकं रक्षेद् वाचं मे सर्वमंगला ।
ग्रीवायां भद्रकाली च पृष्ठवंशे धनुर्धरी ॥ 26 ॥
नीलग्रीवा बहिःकण्ठे नलिकां नलकूबरी ।
स्कन्धयोः खड्गिनी रक्षेद् बाहू मे वज्रधारिणी ॥ 27 ॥
हस्तयोर्दण्डिनी रक्षेदम्बिका चांगुलीषु च ।
नखाञ्छूलेश्वरी रक्षेत्कुक्षौ रक्षेत्कुलेश्वरी ॥ 28 ॥

स्तनौ रक्षेन्महादेवी मन: शोकविनाशिनी ।
हृदये ललिता देवी उदरे शूलधारिणी ॥ 29 ॥
नाभौ च कामिनी रक्षेद् गुह्यं गुह्येश्वरी तथा ।
पूतना कामिका मेढ्रं गुदे महिषवाहिनी ॥ 30 ॥
कट्यां भगवती रक्षेज्जानुनी विन्ध्यवासिनी ।
जंघे महाबला रक्षेत्सर्वकामप्रदायिनी ॥ 31 ॥
गुल्फयोर्नारसिंही च पादपृष्ठे तु तैजसी ।
पादांगुलीषु श्री रक्षेत्पादाधस्तलवासिनी ॥ 32 ॥
नखान् दंष्ट्राकराली च केशांश्चैवोर्ध्वकेशिनी ।
रोमकूपेषु कौबेरी त्वचं वागीश्वरी तथा ॥ 33 ॥
रक्तमज्जावसामांसान्यस्थिमेदांसि पार्वती ।
अन्त्राणि कालरात्रिश्च पित्तं च मुकुटेश्वरी ॥ 34 ॥
पद्मावती पद्मकोशे कफे चूडामणिस्तथा ।
ज्वालामुखी नखज्वालामभेद्या सर्वसंधिषु ॥ 35 ॥
शुक्रं ब्रह्माणि मे रक्षेच्छायां छत्रेश्वरी तथा ।
अहंकारं मनो बुद्धिं रक्षेन्मे धर्मधारिणी ॥ 36 ॥
प्राणापानौ तथा व्यानमुदानं च समानकम् ।
वज्रहस्ता च मे रक्षेत्प्राणं कल्याणशोभना ॥ 37 ॥
रसे रूपे च गन्धे च शब्दे स्पर्शे च योगिनी ।
सत्त्वं रजस्तमश्चैव रक्षेन्नारायणी सदा ॥ 38 ॥
आयू रक्षतु वाराही धर्मं रक्षतु वैष्णवी ।
यश: कीर्तिं च लक्ष्मीं च धनं विद्यां च चक्रिणी ॥ 39 ॥
गोत्रमिन्द्राणि मे रक्षेत्पशून्मे रक्ष चण्डिके ।
पुत्रान् रक्षेन्महालक्ष्मीर्भार्यां रक्षतु भैरवी ॥ 40 ॥
पन्थानं सुपथा रक्षेन्मार्गं क्षेमकरी तथा ।
राजद्वारे महालक्ष्मीर्विजया सर्वत: स्थिता ॥ 41 ॥
रक्षाहीनं तु यत्स्थानं वर्जितं कवचेन तु ।
तत्सर्वं रक्ष मे देवि जयन्ती पापनाशिनी ॥ 42 ॥
पदमेकं न गच्छेत्तु यदीच्छेच्छुभमात्मन: ।
कवचेनावृतो नित्यं यत्र यत्रैव गच्छति ॥ 43 ॥
तत्र तत्रार्थलाभश्च विजय: सार्वकामिक: ।
यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम् ।
परमैश्वर्यमतुलं प्राप्स्यते भूतले पुमान् ॥ 44 ॥

निर्भयो जायते मर्त्यः संग्रामेष्वपराजितः ।
त्रैलोक्ये तु भवेत्पूज्यः कवचेनावृतः पुमान् ॥ 45 ॥
इदं तु देव्याः कवचं देवानामपि दुर्लभम् ।
यः पठेत्प्रयतो नित्यं त्रिसन्ध्यं श्रद्धयान्वितः ॥ 46 ॥
दैवी कला भवेत्तस्य त्रैलोक्येष्वपराजितः ।
जीवेद् वर्षशतं साग्रमपमृत्युविवर्जितः ॥ 47 ॥
नश्यन्ति व्याधयः सर्वे लूताविस्फोटकादयः ।
स्थावरं जंगमं चैव कृत्रिमं चापि यद्विषम् ॥ 48 ॥
अभिचाराणि सर्वाणि मन्त्रयन्त्राणि भूतले ।
भूचराः खेचराश्चैव जलजाश्चोपदेशिकाः ॥ 49 ॥
सहजा कुलजा माला डाकिनी शाकिनी तथा ।
अन्तरिक्षचरा घोरा डाकिन्यश्च महाबलाः ॥ 50 ॥
ग्रहभूतपिशाचाश्च यक्षगन्धर्वराक्षसाः ।
ब्रह्मराक्षसवेतालाः कूष्माण्डा भैरवादयः ॥ 51 ॥
नश्यन्ति दर्शनात्तस्य कवचे हृदि संस्थिते ।
मानोन्नतिर्भवेद् राज्ञस्तेजोवृद्धिकरं परम् ॥ 52 ॥
यशसा वर्धते सोऽपि कीर्तिमण्डितभूतले ।
जपेत्सप्तशतीं चण्डीं कृत्वा तु कवचं पुरा ॥ 53 ॥
यावद्भूमण्डलं धत्ते सशैलवनकाननम् ।
तावत्तिष्ठति मेदिन्यां संततिः पुत्रपौत्रिकी ॥ 54 ॥
देहान्ते परमं स्थानं यत्सुरैरपि दुर्लभम् ।
प्राप्नोति पुरुषो नित्यं महामायाप्रसादतः ॥ 55 ॥
लभते परमं रूपं शिवेन सह मोदते ॥ ॐ ॥ 56 ॥

इति देव्याः कवचं सम्पूर्णम्



अथार्गलास्तोत्रम्

ॐ अस्य श्रीअर्गलास्तोत्रमन्त्रस्य विष्णुर्ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्री महालक्ष्मीर्देवता, श्रीजगदम्बाप्रीतये सप्तशतीपाठांगत्वेन जपे विनियोगः।

ॐ नमश्चण्डिकायै ॥

मार्कण्डेय उवाच

ॐजयन्ती मंगला काली भद्रकाली कपालिनी ।
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते ॥ 1 ॥
जय त्वं देवि चामुण्डे जय भूतार्तिहारिणि ।
जय सर्वगते देवि कालरात्रि नमोऽस्तु ते ॥ 2 ॥
मधुकैटभविद्राविविधातृवरदे नमः ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ 3 ॥
महिषासुरनिर्णाशि भक्तानां सुखदे नमः ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ 4 ॥
रक्तबीजवधे देवि चण्डमुण्डविनाशिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ 5 ॥
शुम्भस्यैव निशुम्भस्य धूम्राक्षस्य च मर्दिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ 6 ॥
वन्दितांघ्रियुगे देवि सर्वसौभाग्यदायिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ 7 ॥
अचिन्त्यरूपचरिते सर्वशत्रुविनाशिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ 8 ॥
नतेभ्यः सर्वदा भक्त्या चण्डिके दुरितापहे ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ 9 ॥
स्तुवद्भ्यो भक्तिपूर्वं त्वां चण्डिके व्याधिनाशिनि।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ 10 ॥
चण्डिके सततं ये त्वामर्चयन्तीह भक्तितः ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ 11 ॥
देहि सौभाग्यमारोग्यं देहि मे परमं सुखम् ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ 12 ॥
विधेहि द्विषतां नाशं विधेहि बलमुच्चकैः ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ 13 ॥

विधेहि देवि कल्याणं विधेहि परमां श्रियम् ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ 14 ॥
सुरासुरशिरोरत्ननिघृष्टचरणेऽम्बिके
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ 15 ॥
विद्यावन्तं यशस्वन्तं लक्ष्मीवन्तं जनं कुरु ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ 16 ॥
प्रचण्डदैत्यदर्पघ्ने चण्डिके प्रणताय मे ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ 17 ॥
चतुर्भुजे चतुर्वक्त्रसंस्तुते परमेश्वरि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ 18 ॥
कृष्णेन संस्तुते देवि शश्वद्भक्त्या सदाम्बिके ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ 19 ॥
हिमाचलसुतानाथसंस्तुते परमेश्वरि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ 20 ॥
इन्द्राणीपतिसद्भावपूजिते परमेश्वरि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ 21 ॥
देवि प्रचण्डदोर्दण्डदैत्यदर्पविनाशिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ 22 ॥
देवि भक्तजनोद्दामदत्तानन्दोदयेऽम्बिके ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ 23 ॥
पत्नीं मनोरमां देहि मनोवृत्तानुसारिणीम् ।
तारिणीं दुर्गसंसारसागरस्य कुलोद्भवाम् ॥ 24 ॥
इदं स्तोत्रं पठित्वा तु महास्तोत्रं पठेन्नरः ।
स तु सप्तशतीसंख्यावरमाप्नोति सम्पदाम् ॥ ॐ ॥ 25 ॥

इति देव्या अर्गलास्तोत्रं सम्पूर्णम्



अथ कीलकम्

ॐ अस्य श्रीकीलकमन्त्रस्य शिव ऋषि:, अनुष्टुप् छन्द:, श्रीमहासरस्वती देवता, श्रीजगदम्बाप्रीत्यर्थं सप्तशतीपाठांगत्वेन जपे विनियोग: ।

ॐ नमश्चण्डिकायै ॥

मार्कण्डेय उवाच

ॐविशुद्धज्ञानदेहाय त्रिवेदीदिव्यचक्षुषे ।
श्रेय: प्राप्तिनिमित्ताय नम: सोमार्धधारिणे ॥ 1 ॥
सर्वमेतद्विजानीयान्मन्त्राणामभिकीलकम् ।
सोऽपि क्षेममवाप्नोति सततं जाप्यतत्पर: ॥ 2 ॥
सिद्ध्यन्त्युच्चाटनादीनि वस्तूनि सकलान्यपि ।
एतेन स्तुवतां देवी स्तोत्रमात्रेण सिद्ध्यति ॥ 3 ॥
न मन्त्रो नौषधं तत्र न किञ्चिदपि विद्यते ।
विना जाप्येन सिद्ध्येत सर्वमुच्चाटनादिकम् ॥ 4 ॥
समग्राण्यपि सिद्ध्यन्ति लोकशंकामिमां हर: ।
कृत्वा निमन्त्रयामास सर्वमेवमिदं शुभम् ॥ 5 ॥
स्तोत्रं वै चण्डिकायास्तु तच्च गुप्तं चकार स: ।
समाप्तिर्न च पुण्यस्य तां यथावन्नियन्त्रणाम् ॥ 6 ॥
सोऽपि क्षेममवाप्नोति सर्वमेवं न संशय: ।
कृष्णायां वा चतुर्दश्यामष्टम्यां वा समाहित: ॥ 7 ॥
ददाति प्रतिगृह्णाति नान्यथैषा प्रसीदति ।
इत्थंरूपेण कीलेन महादेवेन कीलितम् ॥ 8 ॥
यो निष्कीलां विधायैनां नित्यं जपति संस्फुटम् ।
स सिद्ध: स गण: सोऽपि गन्धर्वो जायते नर: ॥ 9 ॥
न चैवाप्यटतस्तस्य भयं क्वापीह जायते ।
नापमृत्युवशं याति मृतो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ 10 ॥
ज्ञात्वा प्रारभ्य कुर्वीत न कुर्वाणो विनश्यति ।
ततो ज्ञात्वैव सम्पन्नमिदं प्रारभ्यते बुधै: ॥ 11 ॥
सौभाग्यादि च यत्किञ्चिद् दृश्यते ललनाजने ।
तत्सर्वं तत्प्रसादेन तेन जाप्यमिदं शुभम् ॥ 12 ॥
शनैस्तु जप्यमानेऽस्मिन् स्तोत्रे सम्पत्तिरुच्चकै: ।
भवत्येव समग्रापि तत: प्रारभ्यमेव तत् ॥ 13 ॥

ऐश्वर्यं यत्प्रसादेन सौभाग्यारोग्यसम्पदः ।
शत्रुहानिः परो मोक्षः स्तूयते सा न किं जनैः ॥ ॐ ॥14॥

इति देव्याः कीलकस्तोत्रं सम्पूर्णम्

अथ वेदोक्तं रात्रिसूक्तम्

ॐ रात्रीत्याद्यष्टर्चस्य सूक्तस्य कुशिकः सौभरो रात्रिर्वा भारद्वाजो ऋषिः, रात्रिर्देवता, गायत्री छन्दः, देवीमाहात्म्यपाठे विनियोगः।

ॐ रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्यक्षभिः। विश्वा अधि श्रियोऽधित ॥1॥
ओर्वप्रा अमर्त्यानिवतो देव्युद्वतः। ज्योतिषा बाधते तमः ॥2॥
निरु स्वसारमस्कृतोषसं देव्यायती । अपेदु हासते तमः ॥3॥
सा नो अद्य यस्या वयं नि ते यामन्नविक्ष्महि । वृक्षे न वसतिं वयः ॥4॥
नि ग्रामासो अविक्षत नि पद्वन्तो नि पक्षिणः। नि श्येनासश्चिदर्थिनः ॥5॥
यावया वृक्यं वृकं यवय स्तेनमूर्म्ये । अथा नः सुतरा भव ॥6॥
उप मा पेपिशत्तमः कृष्णं व्यक्तमस्थित । उष ऋणेव यातय ॥7॥
उप ते गा इवाकरं वृणीष्व दुहितर्दिवः। रात्रि स्तोमं न जिग्युषे ॥8॥



अथ तन्त्रोक्तं रात्रिसूक्तम्

ॐ विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम् ।
निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः ॥ 1 ॥

ब्रह्मोवाच

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारः स्वरात्मिका ।
सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता ॥ 2 ॥

अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः ।
त्वमेव सन्ध्या सावित्री त्वं देवि जननी परा ॥ 3 ॥

त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत् ।
त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा ॥ 4 ॥

विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने ।
तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये ॥ 5 ॥

महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः ।
महामोहा च भवती महादेवी महासुरी ॥ 6 ॥

प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रयविभाविनी ।
कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा ॥ 7 ॥

त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा ।
लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च ॥ 8 ॥

खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा ।
शंखिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा ॥ 9 ॥

सौम्या सौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी ।
परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी ॥ 10 ॥

यच्च किञ्चित् क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके ।
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा ॥ 11 ॥

यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पात्यत्ति यो जगत् ।
सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ॥ 12 ॥

विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च ।
कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत् ॥ 13 ॥

सा त्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि संस्तुता ।
मोहयैतौ दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभौ ॥ 14 ॥
प्रबोधं च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु ।
बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ ॥ 15 ॥

इति रात्रिसूक्तम्



श्रीदेव्यथर्वशीर्षम्

ॐ सर्वे वै देवा देवीमुपतस्थु:कासि त्वं महादेवीति ॥1॥
साब्रवीत्—अहं ब्रह्मस्वरूपिणी। मत्त: प्रकृतिपुरुषात्मकं जगत् । शून्यं
चाशून्यं च ॥2॥
अहमानन्दानानन्दौ । अहं विज्ञानाविज्ञाने । अहं ब्रह्माब्रह्मणी वेदितव्ये।
अहं पञ्चभूतान्यपञ्चभूतानि। अहमखिलं जगत् ॥3॥
वेदोऽहमवेदोऽहम् । विद्याहमविद्याहम् । अजाहमनजाहम् । अधश्चोर्ध्वं च
तिर्यक्चाहम् ॥4॥
अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरामि। अहमादित्यैरुत विश्वदेवै:। अहं मित्रावरुणावुभौ
बिभर्मि। अहमिन्द्राग्नी अहमश्विनावुभौ ॥5॥
अहं सोमं त्वष्टारं पूषणं भगं दधामि । अहं विष्णुमुरुक्रमं ब्रह्माणमुत प्रजापतिं
दधामि ॥6॥
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते । अहं राष्ट्री संगमनी
वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् । अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम
योनिरप्स्वन्त: समुद्रे । य एवं वेद । स दैवीं सम्पदमाप्नोति ॥7॥
ते देवा अब्रुवन्—नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नम: ।
नम: प्रकृत्यै भद्रायै नियता: प्रणता: स्म ताम् ॥8॥
तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम् ।
दुर्गां देवीं शरणं प्रपद्यामहेऽसुरान्नाशयित्र्यै ते नम: ॥9॥
देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपा: पशवो वदन्ति ।
सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु ॥10॥
कालरात्रीं ब्रह्मस्तुतां वैष्णवीं स्कन्दमातरम् ।
सरस्वतीमदितिं दक्षदुहितरं नमाम: पावनां शिवाम् ॥11॥
महालक्ष्म्यै च विद्महे सर्वशक्त्यै च धीमहि ।
तन्नो देवी प्रचोदयात् ॥12॥
अदितिर्ह्यजनिष्ट दक्ष या दुहिता तव ।
तां देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृतबन्धव: ॥13॥
कामो योनि: कमला वज्रपाणिर्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्र: ।
पुनर्गुहा सकला मायया च पुरूच्यैषा विश्वमातादिविद्योम् ॥14॥
एषाऽऽत्मशक्ति:। एषा विश्वमोहिनी । पाशांकुशधनुर्बाणधरा ।
एषा श्रीमहाविद्या। य एवं वेद स शोकं तरति ॥15॥

नमस्ते अस्तु भगवति मातरस्मान् पाहि सर्वत: ॥16॥
सैषाष्टौ वसव:। सैषैकादश रुद्रा:। सैषा द्वादशादित्या:। सैषा विश्वेदेवा: सोमपा असोमपाश्च । सैषा यातुधाना असुरा रक्षांसि पिशाचा यक्षा: सिद्धा:। सैषा सत्त्वरजस्तमांसि। सैषा ब्रह्मविष्णुरुद्ररूपिणी । सैषा प्रजापतीन्द्रमनव:। सैषा ग्रहनक्षत्रज्योतींषि । कलाकाष्ठादिकालरूपिणी। तामहं प्रणौमि नित्यम् ॥
पापापहारिणीं देवीं भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम् । अनन्तां विजयां शुद्धां शरण्यां शिवदां शिवाम् ॥17॥
वियदीकारसंयुक्तं वीतिहोत्रसमन्वितम् ।
अर्धेन्दुलसितं देव्या बीजं सर्वार्थसाधकम् ॥18॥
एवमेकाक्षरं ब्रह्म यतय: शुद्धचेतस: ।
ध्यायन्ति परमानन्दमया ज्ञानाम्बुराशय: ॥19॥
वाङ्माया ब्रह्मसूस्तस्मात् षष्ठं वक्त्रसमन्वितम् ।
सूर्योऽवामश्रोत्रबिन्दुसंयुक्तष्टात्तृतीयक: ।
नारायणेन सम्मिश्रो वायुश्चाधरयुक् तत: ।
विच्चे नवार्णकोऽर्ण: स्यान्महदानन्ददायक: ॥20॥
हृत्पुण्डरीकमध्यस्थां प्रात:सूर्यसमप्रभाम् ।
पाशांकुशधरां सौम्यां वरदाभयहस्तकाम् ।
त्रिनेत्रां रक्तवसनां भक्तकामदुघां भजे ॥21॥
नमामि त्वां महादेवीं महाभयविनाशिनीम् ।
महादुर्गप्रशमनीं महाकारुण्यरूपिणीम् ॥22॥
यस्या: स्वरूपं ब्रह्मादयो न जानन्ति तस्मादुच्यते अज्ञेया । यस्या अन्तो न लभ्यते तस्मादुच्यते अनन्ता। यस्या लक्ष्यं नोपलक्ष्यते तस्मादुच्यते अलक्ष्या। यस्या जननं नोपलभ्यते तस्मादुच्यते अजा। एकैव सर्वत्र वर्तते तस्मादुच्यते एका। एकैव विश्वरूपिणी तस्मादुच्यते नैका । अत एवोच्यते अज्ञेयानन्तालक्ष्याजैका नैकेति ॥23॥
मन्त्राणां मातृका देवी शब्दानां ज्ञानरूपिणी ।
ज्ञानानां चिन्मयातीता शून्यानां शून्यसाक्षिणी।
यस्या: परतरं नास्ति सैषा दुर्गा प्रकीर्तिता ॥24॥
तां दुर्गां दुर्गमां देवीं दुराचारविघातिनीम् ।
नमामि भवभीतोऽहं संसारार्णवतारिणीम् ॥25॥
इदमथर्वशीर्षं योऽधीते स पञ्चाथर्वशीर्षजपफलमाप्नोति ।
इदमथर्वशीर्षमज्ञात्वा योऽर्चां स्थापयति–शतलक्षं प्रजप्त्वापि सोऽर्चासिद्धिं न विन्दति । शतमष्टोत्तरं चास्य पुरश्चर्याविधि: स्मृत:।

दशवारं पठेद् यस्तु सद्यः पापैः प्रमुच्यते ।
महादुर्गाणि तरति महादेव्याः प्रसादतः ॥26॥
सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति । प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति। सायं प्रातः प्रयुञ्जानो अपापो भवति। निशीथे तुरीयसंध्यायां जप्त्वा वाक्सिद्धिर्भवति। नूतनायां प्रतिमायां जप्त्वा देवतासांनिध्यं भवति । प्राणप्रतिष्ठायां जप्त्वा प्राणानां प्रतिष्ठा भवति। भौमाश्विन्यां महादेवीसंनिधौ जप्त्वा महामृत्युं तरति। स महामृत्युं तरति य एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥



अथ नवार्णविधिः

श्रीगणपतिर्जयति। 'ॐ अस्य श्रीनवार्णमन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयः, गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि, श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः, ऐं बीजम्, ह्रीं शक्तिः, क्लीं कीलकम्, श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।'

ऋष्यादिन्यासः

ब्रह्मविष्णुरुद्रऋषिभ्यो नमः, शिरसि। गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्छन्दोभ्यो नमः, मुखे। महाकालीमहालक्ष्मी-महासरस्वतीदेवताभ्यो नमः, हृदि। ऐं बीजाय नमः, गुह्ये। ह्रीं शक्तये नमः, पादयोः। क्लीं कीलकाय नमः, नाभौ।

'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे'

करन्यासः

ॐ ऐं अंगुष्ठाभ्यां नमः। ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः। ॐ क्लीं मध्यमाभ्यां नमः। ॐ चामुण्डायै अनामिकाभ्यां नमः। ॐ विच्चे कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

हृदयादिन्यासः

ॐ ऐं हृदयाय नमः। ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा। ॐ क्लीं शिखायै वषट्। ॐ चामुण्डायै कवचाय हुम्। ॐ विच्चे नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे अस्त्राय फट्।

अक्षरन्यासः

ॐ ऐं नमः, शिखायाम्। ॐ ह्रीं नमः, दक्षिणनेत्रे। ॐ क्लीं नमः, वामनेत्रे। ॐ चां नमः, दक्षिणकर्णे। ॐ मुं नमः, वामकर्णे। ॐ डां नमः, दक्षिणनासापुटे। ॐ यैं नमः, वामनासापुटे। ॐ विं नमः, मुखे। ॐ च्चें नमः, गुह्ये।

दिङ्न्यासः

ॐ ऐं प्राच्यै नमः। ॐ ऐं आग्नेय्यै नमः। ॐ ह्रीं दक्षिणायै नमः। ॐ ह्रीं नैर्ऋत्यै नमः। ॐ क्लीं प्रतीच्यै नमः। ॐ क्लीं वायव्यै नमः। ॐ चामुण्डायै उदीच्यै नमः। ॐ चामुण्डायै ऐशान्यै नमः। ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ऊर्ध्वायै नमः। ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे भूम्यै नमः।

ध्यानम्

खड्गं चक्रगदेषुचापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः
शंखं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वांगभूषावृताम् ।
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम् ॥ 1 ॥
अक्षस्त्रक्परशुं गदेषुकुलिशं पद्मं धनुष्कुण्डिकां
दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम् ।
शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननां
सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम् ॥ 2 ॥
घण्टाशूलहलानि शंखमुसले चक्रं धनुः सायकं
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम् ।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम् ॥ 3 ॥

'ऐं ह्रीं अक्षमालिकायै नमः'

ॐ मां माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि ।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ॥
ॐ अविघ्नं कुरु माले त्वं गृह्णामि दक्षिणे करे ।
जपकाले च सिद्ध्यर्थं प्रसीद मम सिद्धये ॥

ॐ अक्षमालाधिपतये सुसिद्धिं देहि देहि सर्वमन्त्रार्थसाधिनि साधय साधय सर्वसिद्धिं परिकल्पय परिकल्पय मे स्वाहा।

'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे'

गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादान्महेश्वरि ॥



सप्तशती न्यासः

प्रथममध्यमोत्तरचरित्राणां ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयः, श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः, गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि, नन्दाशाकम्भरीभीमाः शक्तयः, रक्तदन्तिका-दुर्गाभ्रामर्यो बीजानि, अग्निवायुसूर्यास्तत्त्वानि, ऋग्यजुःसामवेदा ध्यानानि, सकलकामनासिद्धये श्रीमहाकालीमहालक्ष्मी-महासरस्वतीदेवताप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।

करन्यासः

ॐ खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा ।
शंखिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा ॥ अंगुष्ठाभ्यां नमः।
ॐ शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके ।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च ॥ तर्जनीभ्यां नमः।
ॐ प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे ।
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ॥ मध्यमाभ्यां नमः।
ॐ सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते ।
यानि चात्यर्थघोराणि तै रक्षास्मांस्तथा भुवम् ॥ अनामिकाभ्यां नमः।
ॐ खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके ।
करपल्लवसंगीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः ॥ कनिष्ठिकाभ्यां नमः।
ॐ सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते ।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥ करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

हृदयादिन्यासः

ॐ खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा ।
शंखिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा ॥ हृदयाय नमः।
ॐ शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके ।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च ॥ शिरसे स्वाहा।
ॐ प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे ।
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ॥ शिखायै वषट्।
ॐ सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते ।
यानि चात्यर्थघोराणि तै रक्षास्मांस्तथा भुवम् ॥ कवचाय हुम्।
ॐ खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके ।

करपल्लवसंगीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः ॥ नेत्रत्रयाय वौषट्।
ॐ सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते ।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥ अस्त्राय फट्।

ध्यानम्

विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां
कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम् ।
हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं
बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे ।



॥ श्रीदुर्गायै नमः ॥

अथ श्रीदुर्गासप्तशती

प्रथमोऽध्यायः

विनियोगः

ॐ प्रथमचरित्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, महाकाली देवता, गायत्री छन्दः, नन्दा शक्तिः, रक्तदन्तिका बीजम्, अग्निस्तत्त्वम्, ऋग्वेदः स्वरूपम्, श्रीमहाकालीप्रीत्यर्थे प्रथमचरित्रजपे विनियोगः ।

ध्यानम्

ॐ खड्गं चक्रगदेषुचापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः
शंखं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वांगभूषावृताम् ।
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम् ॥ 1 ॥

ॐ नमश्चण्डिकायै

'ॐ' ऐं मार्कण्डेय उवाच ॥ 1॥

सावर्णिः सूर्यतनयो यो मनुः कथ्यतेऽष्टमः।
निशामय तदुत्पत्तिं विस्तराद् गदतो मम ॥ 2 ॥
महामायानुभावेन यथा मन्वन्तराधिपः।
स बभूव महाभागः सावर्णिस्तनयो रवेः ॥ 3 ॥
स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं चैत्रवंशसमुद्भवः।
सुरथो नाम राजाभूत्समस्ते क्षितिमण्डले ॥ 4 ॥
तस्य पालयतः सम्यक् प्रजाःपुत्रानिवौरसान्।
बभूवुः शत्रवो भूपाः कोलाविध्वंसिनस्तदा ॥ 5 ॥
तस्य तैरभवद् युद्धमतिप्रबलदण्डिनः।
न्यूनैरपि स तैर्युद्धे कोलाविध्वंसिभिर्जितः ॥ 6 ॥
ततः स्वपुरमायातो निजदेशाधिपोऽभवत् ।
आक्रान्तः स महाभागस्तैस्तदा प्रबलारिभिः ॥ 7 ॥
अमात्यैर्बलिभिर्दुष्टैर्दुर्बलस्य दुरात्मभिः।
कोशो बलं चापहृतं तत्रापि स्वपुरे ततः ॥ 8 ॥

ततो मृगयाव्याजेन हृतस्वाम्यः स भूपतिः।
एकाकी हयमारुह्य जगाम गहनं वनम् ॥ 9 ॥
स तत्राश्रममद्राक्षीद् द्विजवर्यस्य मेधसः।
प्रशान्तश्वापदाकीर्णं मुनिशिष्योपशोभितम् ॥ 10 ॥
तस्थौ कंचित्स कालं च मुनिना तेन सत्कृतः।
इतश्चेतश्च विचरंस्तस्मिन्मुनिवराश्रमे ॥ 11 ॥
सोऽचिन्तयत्तदा तत्र ममत्वाकृष्टचेतनः।
मत्पूर्वैः पालितं पूर्वं मया हीनं पुरं हि तत् ॥ 12 ॥
मद्भृत्यैस्तैरसद्वृत्तैर्धर्मतः पाल्यते न वा।
न जाने स प्रधानो मे शूरहस्ती सदामदः ॥ 13 ॥
मम वैरिवशं यातः कान् भोगानुपलप्स्यते।
ये ममानुगता नित्यं प्रसादधनभोजनैः ॥ 14 ॥
अनुवृत्तिं ध्रुवं तेऽद्य कुर्वन्त्यन्यमहीभृताम् ।
असम्यग्व्ययशीलैस्तैः कुर्वद्भिः सततं व्ययम् ॥ 15 ॥
संचितः सोऽतिदुःखेन क्षयं कोशो गमिष्यति।
एतच्चान्यच्च सततं चिन्तयामास पार्थिवः ॥ 16 ॥
तत्र विप्राश्रमाभ्याशे वैश्यमेकं ददर्श सः।
स पृष्टस्तेन कस्त्वं भो हेतुश्चागमनेऽत्र कः ॥ 17 ॥
सशोक इव कस्मात्त्वं दुर्मना इव लक्ष्यसे।
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य भूपतेः प्रणयोदितम् ॥ 18 ॥
प्रत्युवाच स तं वैश्यः प्रश्रयावनतो नृपम् ॥ 19 ॥

वैश्य उवाच ॥ 20 ॥

समाधिर्नाम वैश्योऽहमुत्पन्नो धनिनां कुले ॥ 21 ॥
पुत्रदारैर्निरस्तश्च धनलोभादसाधुभिः।
विहीनश्च धनैर्दारैः पुत्रैरादाय मे धनम् ॥ 22 ॥
वनमभ्यागतो दुःखी निरस्तश्चाप्तबन्धुभिः ।
सोऽहं न वेद्मि पुत्राणां कुशलाकुशलात्मिकाम् ॥ 23 ॥
प्रवृत्तिं स्वजनानां च दाराणां चात्र संस्थितः।
किं नु तेषां गृहे क्षेममक्षेमं किं नु साम्प्रतम् ॥ 24 ॥
कथं ते किं नु सद्वृत्ता दुर्वृत्ताः किं नु मे सुताः ॥ 25 ॥

राजोवाच ॥ 26 ॥

यैर्निरस्तो भवाँल्लुब्धैः पुत्रदारादिभिर्धनैः ॥ 27 ॥
तेषु किं भवतः स्नेहमनुबध्नाति मानसम् ॥ 28 ॥

वैश्य उवाच ॥ 29 ॥

एवमेतद्यथा प्राह भवानस्मद्गतं वचः ॥ 30 ॥
किं करोमि न बध्नाति मम निष्ठुरतां मनः ।
यैः संत्यज्य पितृस्नेहं धनलुब्धैर्निराकृतः ॥ 31 ॥
पतिस्वजनहार्दं च हार्दि तेष्वेव मे मनः ।
किमेतन्नाभिजानामि जानन्नपि महामते ॥ 32 ॥
यत्प्रेमप्रवणं चित्तं विगुणेष्वपि बन्धुषु ।
तेषां कृते मे निःश्वासो दौर्मनस्यं च जायते ॥ 33 ॥
करोमि किं यन्न मनस्तेष्वप्रीतिषु निष्ठुरम् ॥ 34 ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ 35 ॥

ततस्तौ सहितौ विप्र तं मुनिं समुपस्थितौ ॥ 36 ॥
समाधिर्नाम वैश्योऽसौ स च पार्थिवसत्तमः ।
कृत्वा तु तौ यथान्यायं यथार्हं तेन संविदम् ॥ 37 ॥
उपविष्टौ कथाः काश्चिच्चक्रतुर्वैश्यपार्थिवौ ॥ 38 ॥

राजोवाच ॥ 39॥

भगवंस्त्वामहं प्रष्टुमिच्छाम्येकं वदस्व तत् ॥ 40 ॥
दुःखाय यन्मे मनसः स्वचित्तायत्ततां विना ।
ममत्वं गतराज्यस्य राज्यांगेष्वखिलेष्वपि ॥ 41 ॥
जानतोऽपि यथाज्ञस्य किमेतन्मुनिसत्तम ।
अयं च निकृतः पुत्रैर्दारैर्भृत्यैस्तथोज्झितः ॥ 42 ॥
स्वजनेन च संत्यक्तस्तेषु हार्दी तथाप्यति ।
एवमेष तथाहं च द्वावप्यत्यन्तदुःखितौ ॥ 43 ॥
दृष्टदोषेऽपि विषये ममत्वाकृष्टमानसौ ।
तत्किमेतन्महाभाग यन्मोहो ज्ञानिनोरपि ॥ 44 ॥
ममास्य च भवत्येषा विवेकान्धस्य मूढता ॥ 45 ॥

ऋषिरुवाच ॥ 46 ॥

ज्ञानमस्ति समस्तस्य जन्तोर्विषयगोचरे ॥ 47 ॥

विषयश्च महाभाग याति चैवं पृथक् पृथक्।
दिवान्धाः प्राणिनः केचिद्रात्रावन्धास्तथापरे ॥ 48 ॥
केचिद्दिवा तथा रात्रौ प्राणिनस्तुल्यदृष्टयः।
ज्ञानिनो मनुजाः सत्यं किं तु ते न हि केवलम् ॥ 49 ॥
यतो हि ज्ञानिनः सर्वे पशुपक्षिमृगादयः।
ज्ञानं च तन्मनुष्याणां यत्तेषां मृगपक्षिणाम् ॥ 50 ॥
मनुष्याणां च यत्तेषां तुल्यमन्यत्तथोभयोः।
ज्ञानेऽपि सति पश्यैतान् पतंगाञ्छावचञ्चुषु ॥ 51 ॥
कणमोक्षादृतान्मोहात्पीड्यमानानपि क्षुधा।
मानुषा मनुजव्याघ्र साभिलाषाः सुतान् प्रति ॥ 52 ॥
लोभात्प्रत्युपकाराय नन्वेतान् किं न पश्यसि ।
तथापि ममतावर्त्ते मोहगर्ते निपातिताः ॥ 53 ॥
महामायाप्रभावेण संसारस्थितिकारिणा।
तन्नात्र विस्मयः कार्यो योगनिद्रा जगत्पतेः ॥ 54 ॥
महामाया हरेश्चैषा तया सम्मोह्यते जगत् ।
ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा ॥ 55 ॥
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ।
तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम् ॥ 56 ॥
सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये ।
सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी ॥ 57 ॥
संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी ॥ 58 ॥

राजोवाच ॥ 59॥

भगवन् का हि सा देवी महामायेति यां भवान् ॥ 60 ॥
ब्रवीति कथमुत्पन्ना सा कर्मास्याश्च किं द्विज।
यत्प्रभावा च सा देवी यत्स्वरूपा यदुद्भवा ॥ 61 ॥
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदां वर ॥ 62 ॥

ऋषिरुवाच ॥ 63॥

नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम् ॥ 64 ॥
तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम ।
देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा ॥ 65 ॥

उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते ।
योगनिद्रां यदा विष्णुर्जगत्येकार्णवीकृते ॥ 66 ॥
आस्तीर्य शेषमभजत्कल्पान्ते भगवान् प्रभुः।
तदा द्वावसुरौ घोरौ विख्यातौ मधुकैटभौ ॥ 67 ॥
विष्णुकर्णमलोद्भूतौ हन्तुं ब्रह्माणमुद्यतौ।
स नाभिकमले विष्णोः स्थितो ब्रह्मा प्रजापतिः ॥ 68 ॥
दृष्ट्वा तावसुरौ चोग्रौ प्रसुप्तं च जनार्दनम् ।
तुष्टाव योगनिद्रां तामेकाग्रहृदयस्थितः ॥ 69 ॥
विबोधनार्थाय हरेर्हरिनेत्रकृतालयाम्।
विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम् ॥ 70 ॥
निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः ॥ 71 ॥

ब्रह्मोवाच ॥ 72॥

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारःस्वरात्मिका ॥ 73 ॥
सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता।
अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः ॥ 74 ॥
त्वमेव संध्या सावित्री त्वं देवि जननी परा।
त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत् ॥ 75 ॥
त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा ।
विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने ॥ 76 ॥
तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये ।
महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः ॥ 77 ॥
महामोहा च भवती महादेवी महासुरी।
प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रयविभाविनी ॥ 78 ॥
कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा ।
त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा ॥ 79 ॥
लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च ।
खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा ॥ 80 ॥
शंखिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा ।
सौम्या सौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी ॥ 81 ॥
परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी ।
यच्च किंचित्क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके ॥ 82 ॥

तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा।
यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पात्यत्ति यो जगत् ॥ 83 ॥
सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः।
विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च ॥ 84 ॥
कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत् ।
सा त्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि संस्तुता ॥ 85 ॥
मोहयैतौ दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभौ ।
प्रबोधं च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु ॥ 86 ॥
बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ ॥ 87 ॥

ऋषिरुवाच ॥ 88॥

एवं स्तुता तदा देवी तामसी तत्र वेधसा ॥ 89 ॥
विष्णोः प्रबोधनार्थाय निहन्तुं मधुकैटभौ ।
नेत्रास्यनासिकाबाहुहृदयेभ्यस्तथोरसः ॥ 90 ॥
निर्गम्य दर्शने तस्थौ ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।
उत्तस्थौ च जगन्नाथस्तया मुक्तो जनार्दनः ॥ 91 ॥
एकार्णवेऽहिशयनात्ततः स ददृशे च तौ।
मधुकैटभौ दुरात्मानावतिवीर्यपराक्रमौ ॥ 92 ॥
क्रोधरक्तेक्षणावत्तुं ब्रह्माणं जनितोद्यमौ ।
समुत्थाय ततस्ताभ्यां युयुधे भगवान् हरिः ॥ 93 ॥
पंचवर्षसहस्राणि बाहुप्रहरणो विभुः।
तावप्यतिबलोन्मत्तौ महामायाविमोहितौ ॥ 94 ॥
उक्तवन्तौ वरोऽस्मत्तो व्रियतामिति केशवम् ॥ 95 ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ 96 ॥

भवेतामद्य मे तुष्टौ मम वध्यावुभावपि ॥ 97 ॥
किमन्येन वरेणात्र एतावद्धि वृतं मम ॥ 98 ॥

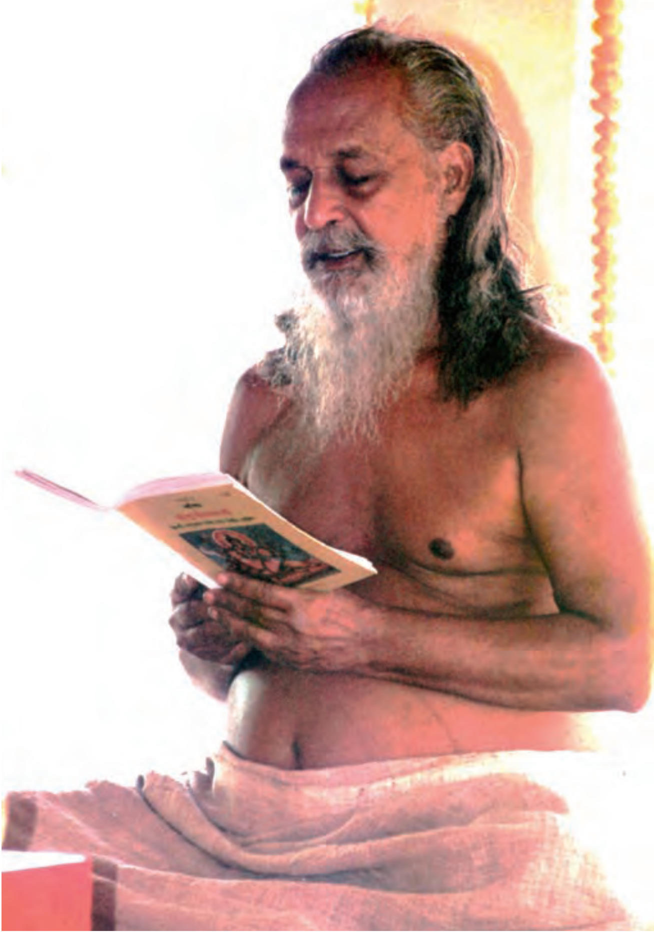
ऋषिरुवाच ॥ 99 ॥

वञ्चिताभ्यामिति तदा सर्वमापोमयं जगत् ॥ 100 ॥
विलोक्य ताभ्यां गदितो भगवान् कमलेक्षणः ।
आवां जहि न यत्रोर्वी सलिलेन परिप्लुता ॥ 101 ॥

ऋषिरुवाच ॥ 102 ॥

तथेत्युक्त्वा भगवता शंखचक्रगदाभृता ।
कृत्वाचक्रेण वै च्छिन्ने जघने शिरसी तयो: ॥ 103 ॥
एवमेषा समुत्पन्ना ब्रह्मणा संस्तुता स्वयम् ।
प्रभावमस्या देव्यास्तु भूय: शृणु वदामि ते ॥ ऐं ॐ ॥ 104 ॥

इति श्री मार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
मधुकैटभवधो नाम प्रथमोऽध्याय: ॥ 1 ॥



द्वितीयोऽध्यायः

विनियोगः

ॐ मध्यमचरित्रस्य विष्णुर्ऋषिः, महालक्ष्मीर्देवता, उष्णिक् छन्दः, शाकम्भरी शक्तिः, दुर्गा बीजम्, वायुस्तत्त्वम्, यजुर्वेदः स्वरूपम्, श्रीमहालक्ष्मीप्रीत्यर्थं मध्यमचरित्रजपे विनियोगः।

ध्यानम्

ॐ अक्षस्रक्परशुं गदेषुकुलिशं पद्मं धनुष्कुण्डिकां
दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम् ।
शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननां
सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम् ॥

'ॐ ह्रीं' ऋषिरुवाच ॥ 1 ॥

देवासुरमभूद्युद्धं पूर्णमब्दशतं पुरा ।
महिषेऽसुराणामधिपे देवानां च पुरन्दरे ॥ 2 ॥
तत्रासुरैर्महावीर्यैर्देवसैन्यं पराजितम् ।
जित्वा च सकलान् देवानिन्द्रोऽभून्महिषासुरः ॥ 3 ॥
ततः पराजिता देवाः पद्मयोनिं प्रजापतिम् ।
पुरस्कृत्य गतास्तत्र यत्रेशगरुडध्वजौ ॥ 4 ॥
यथावृत्तं तयोस्तद्वन्महिषासुरचेष्टितम् ।
त्रिदशाः कथयामासुर्देवाभिभवविस्तरम् ॥ 5 ॥
सूर्येन्द्राग्न्यनिलेन्दूनां यमस्य वरुणस्य च ।
अन्येषां चाधिकारान् स स्वयमेवाधितिष्ठति ॥ 6 ॥
स्वर्गान्निराकृताः सर्वे तेन देवगणा भुवि ।
विचरन्ति यथा मर्त्या महिषेण दुरात्मना ॥ 7 ॥
एतद्वः कथितं सर्वममरारिविचेष्टितम् ।
शरणं वः प्रपन्नाः स्मो वधस्तस्य विचिन्त्यताम् ॥ 8 ॥
इत्थं निशम्य देवानां वचांसि मधुसूदनः।
चकार कोपं शम्भुश्च भ्रुकुटीकुटिलाननौ ॥ 9 ॥
ततोऽतिकोपपूर्णस्य चक्रिणो वदनात्ततः ।
निश्चक्राम महत्तेजो ब्रह्मणः शंकरस्य च ॥ 10 ॥
अन्येषां चैव देवानां शक्रादीनां शरीरतः ।

निर्गतं सुमहत्तेजस्तच्चैक्यं समगच्छत ॥ 11 ॥
अतीव तेजसः कूटं ज्वलन्तमिव पर्वतम् ।
ददृशुस्ते सुरास्तत्र ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् ॥ 12 ॥
अतुलं तत्र तत्तेजः सर्वदेवशरीरजम् ।
एकस्थं तदभून्नारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा ॥ 13 ॥
यदभूच्छाम्भवं तेजस्तेनाजायत तन्मुखम् ।
याम्येन चाभवन् केशा बाहवो विष्णुतेजसा ॥ 14 ॥
सौम्येन स्तनयोर्युग्मं मध्यं चैन्द्रेण चाभवत् ।
वारुणेन च जंघोरू नितम्बस्तेजसा भुवः ॥ 15 ॥
ब्रह्मणस्तेजसा पादौ तदंगुल्योऽर्कतेजसा ।
वसूनां च करांगुल्यः कौबेरेण च नासिका ॥ 16 ॥
तस्यास्तु दन्ताः सम्भूताः प्राजापत्येन तेजसा ।
नयनत्रितयं जज्ञे तथा पावकतेजसा ॥ 17 ॥
भ्रुवौ च संध्ययोस्तेजः श्रवणावनिलस्य च ।
अन्येषां चैव देवानां सम्भवस्तेजसां शिवा ॥ 18 ॥
ततः समस्तदेवानां तेजोराशिसमुद्भवाम् ।
तां विलोक्य मुदं प्रापुरमरा महिषार्दिताः ॥ 19 ॥
शूलं शूलाद्विनिष्कृष्य ददौ तस्यै पिनाकधृक् ।
चक्रं च दत्तवान् कृष्णः समुत्पाद्य स्वचक्रतः ॥ 20 ॥
शंखं च वरुणः शक्तिं ददौ तस्यै हुताशनः ।
मारुतो दत्तवांश्चापं बाणपूर्णे तथेषुधी ॥ 21 ॥
वज्रमिन्द्रः समुत्पाद्य कुलिशादमराधिपः ।
ददौ तस्यै सहस्राक्षो घण्टामैरावताद् गजात् ॥ 22 ॥
कालदण्डाद्यमो दण्डं पाशं चाम्बुपतिर्ददौ ।
प्रजापतिश्चाक्षमालां ददौ ब्रह्मा कमण्डलुम् ॥ 23 ॥
समस्तरोमकूपेषु निजरश्मीन् दिवाकरः ।
कालश्च दत्तवान् खड्गं तस्याश्चर्म च निर्मलम् ॥ 24 ॥
क्षीरोदश्चामलं हारमजरे च तथाम्बरे ।
चूडामणिं तथा दिव्यं कुण्डले कटकानि च ॥ 25 ॥
अर्धचन्द्रं तथा शुभ्रं केयूरान् सर्वबाहुषु ।
नूपुरौ विमलौ तद्वद् ग्रैवेयकमनुत्तमम् ॥ 26 ॥
अंगुलीयकरत्नानि समस्तास्वंगुलीषु च ।
विश्वकर्मा ददौ तस्यै परशुं चातिनिर्मलम् ॥ 27 ॥

अस्त्राण्यनेकरूपाणि तथाभेद्यं च दंशनम् ।
अम्लानपंकजां मालां शिरस्युरसि चापराम् ॥ 28 ॥
अददज्जलधिस्तस्यै पंकजं चातिशोभनम् ।
हिमवान् वाहनं सिंहं रत्नानि विविधानि च ॥ 29 ॥
ददावशून्यं सुरया पानपात्रं धनाधिपः ।
शेषश्च सर्वनागेशो महामणिविभूषितम् ॥ 30 ॥
नागहारं ददौ तस्यै धत्ते यः पृथिवीमिमाम् ।
अन्यैरपि सुरैर्देवी भूषणैरायुधैस्तथा ॥ 31 ॥
सम्मानिता ननादोच्चैः साट्टहासं मुहुर्मुहुः ।
तस्या नादेन घोरेण कृत्स्नमापूरितं नभः ॥ 32 ॥
अमायतातिमहता प्रतिशब्दो महानभूत् ।
चुक्षुभुः सकला लोकाः समुद्राश्च चकम्पिरे ॥ 33 ॥
चचाल वसुधा चेलुः सकलाश्च महीधराः ।
जयेति देवाश्च मुदा तामूचुः सिंहवाहिनीम् ॥ 34 ॥
तुष्टुवुर्मुनयश्चैनां भक्तिनम्रात्ममूर्तयः ।
दृष्ट्वा समस्तं संक्षुब्धं त्रैलोक्यममरारयः ॥ 35 ॥
सन्नद्धाखिलसैन्यास्ते समुत्तस्थुरुदायुधाः ।
आः किमेतदिति क्रोधादाभाष्य महिषासुरः ॥ 36 ॥
अभ्यधावत तं शब्दमशेषैरसुरैर्वृतः ।
स ददर्श ततो देवीं व्याप्तलोकत्रयां त्विषा ॥ 37 ॥
पादाक्रान्त्या नतभुवं किरीटोल्लिखिताम्बराम् ।
क्षोभिताशेषपातालां धनुर्ज्यानिःस्वनेन ताम् ॥ 38 ॥
दिशो भुजसहस्रेण समन्ताद् व्याप्य संस्थिताम् ।
ततः प्रववृते युद्धं तया देव्या सुरद्विषाम् ॥ 39 ॥
शस्त्रास्त्रैर्बहुधा मुक्तैरादीपितदिगन्तरम् ।
महिषासुरसेनानीश्चिक्षुराख्यो महासुरः ॥ 40 ॥
युयुधे चामरश्चान्यैश्चतुरंगबलान्वितः ।
रथानामयुतैः षड्भिरुदग्राख्यो महासुरः ॥ 41 ॥
अयुध्यतायुतानां च सहस्रेण महाहनुः ।
पञ्चाशद्भिश्च नियुतैरसिलोमा महासुरः ॥ 42 ॥
अयुतानां शतैः षड्भिर्बाष्कलो युयुधे रणे ।
गजवाजिसहस्रौघैरनेकैः परिवारितः ॥ 43 ॥
वृतो रथानां कोट्या च युद्धे तस्मिन्नयुध्यत।

बिडालाख्योऽयुतानां च पञ्चाशद्भिरथायुतैः ॥ 44 ॥
युयुधे संयुगे तत्र रथानां परिवारितः ।
अन्ये च तत्रायुतशो रथनागहयैर्वृताः ॥ 45 ॥
युयुधुः संयुगे देव्या सह तत्र महासुराः ।
कोटिकोटिसहस्रैस्तु रथानां दन्तिनां तथा ॥ 46 ॥
हयानां च वृतो युद्धे तत्राभून्महिषासुरः ।
तोमरैर्भिन्दिपालैश्च शक्तिभिर्मुसलैस्तथा ॥ 47 ॥
युयुधुः संयुगे देव्या खड्गैः परशुपट्टिशैः ।
केचिच्च चिक्षिपुः शक्तीः केचित्पाशांस्तथापरे ॥ 48 ॥
देवीं खड्गप्रहारैस्तु ते तां हन्तुं प्रचक्रमुः ।
सापि देवी ततस्तानि शस्त्राण्यस्त्राणि चण्डिका ॥ 49 ॥
लीलयैव प्रचिच्छेद निजशस्त्रास्त्रवर्षिणी ।
अनायस्तानना देवी स्तूयमाना सुरर्षिभिः ॥ 50 ॥
मुमोचासुरदेहेषु शस्त्राण्यस्त्राणि चेश्वरी ।
सोऽपि क्रुद्धो धुतसटो देव्या वाहनकेसरी ॥ 51 ॥
चचारासुरसैन्येषु वनेष्विव हुताशनः ।
निःश्वासान् मुमुचे यांश्च युध्यमाना रणेऽम्बिका ॥ 52 ॥
त एव सद्यः सम्भूता गणाः शतसहस्रशः ।
युयुधुस्ते परशुभिर्भिन्दिपालासिपट्टिशैः ॥ 53 ॥
नाशयन्तोऽसुरगणान् देवीशक्त्युपबृंहिताः ।
अवादयन्त पटहान् गणाः शंखांस्तथापरे ॥ 54 ॥
मृदंगांश्च तथैवान्ये तस्मिन् युद्धमहोत्सवे ।
ततो देवी त्रिशूलेन गदया शक्तिवृष्टिभिः ॥ 55 ॥
खड्गादिभिश्च शतशो निजघान महासुरान् ।
पातयामास चैवान्यान् घण्टास्वनविमोहितान् ॥ 56 ॥
असुरान् भुवि पाशेन बद्ध्वा चान्यानकर्षयत् ।
केचिद् द्विधा कृतास्तीक्ष्णैः खड्गपातैस्तथापरे ॥ 57 ॥
विपोथिता निपातेन गदया भुवि शेरते ।
वेमुश्च केचिद्रुधिरं मुसलेन भृशं हताः ॥ 58 ॥
केचिन्निपतिता भूमौ भिन्नाः शूलेन वक्षसि ।
निरन्तराः शरौघेण कृताः केचिद्रणाजिरे ॥ 59 ॥
श्येनानुकारिणः प्राणान् मुमुचुस्त्रिदशार्दनाः ।
केषांचिद् बाहवश्छिन्नाश्छिन्नग्रीवास्तथापरे ॥ 60 ॥

शिरांसि पेतुरन्येषामन्ये मध्ये विदारिता: ।
विच्छिन्नजंघास्त्वपरे पेतुरुर्व्यां महासुरा: ॥ 61 ॥
एकबाह्वक्षिचरणा: केचिद्देव्या द्विधा कृता: ।
छिन्नेऽपि चान्ये शिरसि पतिता: पुनरुत्थिता: ॥ 62 ॥
कबन्धा युयुधुर्देव्या गृहीतपरमायुधा: ।
ननृतुश्चापरे तत्र युद्धे तूर्यलयाश्रिता: ॥ 63 ॥
कबन्धाश्छिन्नशिरस: खड्गशक्त्यृष्टिपाणय: ।
तिष्ठ तिष्ठेति भाषन्तो देवीमन्ये महासुरा: ॥ 64 ॥
पातितै रथनागाश्वैरसुरैश्च वसुन्धरा ।
अगम्या साभवत्तत्र यत्राभूत्स महारण: ॥ 65 ॥
शोणितौघा महानद्य: सद्यस्तत्र प्रसुस्त्रुवु: ।
मध्ये चासुरसैन्यस्य वारणासुरवाजिनाम् ॥ 66 ॥
क्षणेन तन्महासैन्यमसुराणां तथाम्बिका ।
निन्ये क्षयं यथा वह्निस्तृणदारुमहाचयम् ॥ 67 ॥
स च सिंहो महानादमुत्सृजन्धुतकेसर: ।
शरीरेभ्योऽमरारीणामसूनिव विचिन्वति ॥ 68 ॥
देव्या गणैश्च तैस्तत्र कृतं युद्धं महासुरै: ।
यथैषां तुतुषुर्देवा: पुष्पवृष्टिमुचो दिवि ॥ ॐ ॥ 69 ॥

इति श्री मार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
महिषासुरसैन्यवधो नाम द्वितीयोऽध्याय: ॥ 2 ॥



तृतीयोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ उद्यद्भानुसहस्रकान्तिमरुणक्षौमां शिरोमालिकां
रक्तालिप्तपयोधरां जपवटीं विद्यामभीतिं वरम् ।
हस्ताब्जैर्दधतीं त्रिनेत्रविलसद्वक्त्रारविन्दश्रियं
देवीं बद्धहिमांशुरत्नमुकुटां वन्देऽरविन्दस्थिताम् ॥

'ॐ' ऋषिरुवाच ॥1॥

निहन्यमानं तत्सैन्यमवलोक्य महासुरः।
सेनानीश्चिक्षुरः कोपाद्ययौ योद्धुमथाम्बिकाम् ॥2॥
स देवीं शरवर्षेण ववर्ष समरेऽसुरः।
यथा मेरुगिरेः शृंगं तोयवर्षेण तोयदः ॥3॥
तस्यच्छित्त्वा ततो देवी लीलयैव शरोत्करान् ।
जघान तुरगान् बाणैर्यन्तारं चैव वाजिनाम् ॥4॥
चिच्छेद च धनुः सद्यो ध्वजं चातिसमुच्छ्रितम् ।
विव्याध चैव गात्रेषु छिन्नधन्वानमाशुगैः ॥5॥
सच्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ।
अभ्यधावत तां देवीं खड्गचर्मधरोऽसुरः ॥6॥
सिंहमाहत्य खड्गेन तीक्ष्णधारेण मूर्धनि ।
आजघान भुजे सव्ये देवीमप्यतिवेगवान् ॥7॥
तस्याः खड्गो भुजं प्राप्य पफाल नृपनन्दन ।
ततो जग्राह शूलं स कोपादरुणलोचनः ॥8॥
चिक्षेप च ततस्तत्तु भद्रकाल्यां महासुरः ।
जाज्वल्यमानं तेजोभी रविबिम्बमिवाम्बरात् ॥9॥
दृष्ट्वा तदापतच्छूलं देवी शूलममुञ्चत ।
तच्छूलं शतधा तेन नीतं स च महासुरः ॥10॥
हते तस्मिन्महावीर्ये महिषस्य चमूपतौ ।
आजगाम गजारूढश्चामरस्त्रिदशार्दनः ॥11॥
सोऽपि शक्तिं मुमोचाथ देव्यास्तामम्बिका द्रुतम् ।
हुंकाराभिहतां भूमौ पातयामास निष्प्रभाम् ॥12॥
भग्नां शक्तिं निपतितां दृष्ट्वा क्रोधसमन्वितः।
चिक्षेप चामरः शूलं बाणैस्तदपि साच्छिनत् ॥13॥

ततः सिंहः समुत्पत्य गजकुम्भान्तरे स्थितः।
बाहुयुद्धेन युयुधे तेनोच्चैस्त्रिदशारिणा ॥ 14॥
युद्ध्यमानौ ततस्तौ तु तस्मान्नागान्महीं गतौ।
युयुधातेऽतिसंरब्धौ प्रहारैरतिदारुणैः ॥ 15॥
ततो वेगात् खमुत्पत्य निपत्य च मृगारिणा ।
करप्रहारेण शिरश्चामरस्य पृथक्कृतम् ॥ 16॥
उदग्रश्च रणे देव्या शिलावृक्षादिभिर्हतः।
दन्तमुष्टितलैश्चैव करालश्च निपातितः ॥ 17॥
देवी क्रुद्धा गदापातैश्चूर्णयामास चोद्धतम् ।
वाष्कलं भिन्दिपालेन बाणैस्ताम्रं तथान्धकम् ॥ 18॥
उग्रास्यमुग्रवीर्यं च तथैव च महाहनुम् ।
त्रिनेत्रा च त्रिशूलेन जघान परमेश्वरी ॥ 19॥
बिडालस्यासिना कायात्पातयामास वै शिरः।
दुर्धरं दुर्मुखं चोभौ शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ 20॥
एवं संक्षीयमाणे तु स्वसैन्ये महिषासुरः।
माहिषेण स्वरूपेण त्रासयामास तान् गणान् ॥ 21॥
कांश्चित्तुण्डप्रहारेण खुरक्षेपैस्तथापरान् ।
लांगूलताडितांश्चान्याञ्छृंगाभ्यां च विदारितान् ॥ 22॥
वेगेन कांश्चिदपरान्नादेन भ्रमणेन च ।
निःश्वासपवनेनान्यान् पातयामास भूतले ॥ 23॥
निपात्य प्रमथानीकमभ्यधावत सोऽसुरः।
सिंहं हन्तुं महादेव्याः कोपं चक्रे ततोऽम्बिका ॥ 24॥
सोऽपि कोपान्महावीर्यः खुरक्षुण्णमहीतलः।
शृंगाभ्यां पर्वतानुच्चांश्चिक्षेप च ननाद च ॥ 25॥
वेगभ्रमणविक्षुण्णा मही तस्य व्यशीर्यत ।
लांगूलेनाहतश्चाब्धिः प्लावयामास सर्वतः ॥ 26॥
धुतशृंगविभिन्नाश्च खण्डं खण्डं ययुर्घनाः।
श्वासानिलास्ताः शतशो निपेतुर्नभसोऽचलाः ॥ 27॥
इति क्रोधसमाध्मातमापतन्तं महासुरम् ।
दृष्ट्वा सा चण्डिका कोपं तद्वधाय तदाकरोत् ॥ 28॥
सा क्षिप्त्वा तस्य वै पाशं तं बबन्ध महासुरम् ।
तत्याज माहिषं रूपं सोऽपि बद्धो महामृधे ॥ 29॥

ततः सिंहोऽभवत्सद्यो यावत्तस्याम्बिका शिरः।
छिनत्ति तावत्पुरुषः खड्गपाणिरदृश्यत ॥30॥
तत एवाशु पुरुषं देवी चिच्छेद सायकैः ।
तं खड्गचर्मणा सार्धं ततः सोऽभून्महागजः ॥31॥
करेण च महासिंहं तं चकर्ष जगर्ज च ।
कर्षतस्तु करं देवी खड्गेन निरकृन्तत ॥32॥
ततो महासुरो भूयो माहिषं वपुरास्थितः ।
तथैव क्षोभयामास त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥33॥
ततः क्रुद्धा जगन्माता चण्डिका पानमुत्तमम् ।
पपौ पुनः पुनश्चैव जहासारुणलोचना ॥34॥
ननर्द चासुरः सोऽपि बलवीर्यमदोद्धतः।
विषाणाभ्यां च चिक्षेप चण्डिकां प्रति भूधरान् ॥35॥
सा च तान् प्रहितांस्तेन चूर्णयन्ती शरोत्करैः।
उवाच तं मदोद्धूतमुखरागाकुलाक्षरम् ॥36॥

देव्युवाच ॥ 37 ॥

गर्ज गर्ज क्षणं मूढ मधु यावत्पिबाम्यहम् ।
मया त्वयि हतेऽत्रैव गर्जिष्यन्त्याशु देवताः ॥38॥

ऋषिरुवाच ॥ 39 ॥

एवमुक्त्वा समुत्पत्य साऽऽरूढा तं महासुरम् ।
पादेनाक्रम्य कण्ठे च शूलेनैनमताडयत् ॥40॥
ततः सोऽपि पदाऽऽक्रान्तस्तया निजमुखात्ततः।
अर्धनिष्क्रान्त एवासीद् देव्या वीर्येण संवृतः ॥41॥
अर्धनिष्क्रान्त एवासौ युध्यमानो महासुरः।
तया महासिना देव्या शिरश्छित्त्वा निपातितः ॥42॥
ततो हाहाकृतं सर्वं दैत्यसैन्यं ननाश तत् ।
प्रहर्षं च परं जग्मुः सकला देवतागणाः ॥43॥
तुष्टुवुस्तां सुरा देवीं सह दिव्यैर्महर्षिभिः।
जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥ ॐ ॥44॥

इति श्री मार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
महिषासुरवधो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥3॥

चतुर्थोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ कालाभ्राभां कटाक्षैररिकुलभयदां मौलिबद्धेन्दुरेखां
शंखं चक्रं कृपाणं त्रिशिखमपि करैरुद्वहन्तीं त्रिनेत्राम् ।
सिंहस्कन्धाधिरूढां त्रिभुवनमखिलं तेजसा पूरयन्तीं
ध्यायेद् दुर्गां जयाख्यां त्रिदशपरिवृतां सेवितां सिद्धिकामैः ॥

'ॐ' ऋषिरुवाच ॥ 1॥

शक्रादयः सुरगणा निहतेऽतिवीर्ये
तस्मिन्दुरात्मनि सुरारिबले च देव्या ।
तां तुष्टुवुः प्रणतिनम्रशिरोधरांसा
वाग्भिः प्रहर्षपुलकोद्गमचारुदेहाः ॥ 2 ॥
देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या
निश्शेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या ।
तामम्बिकामखिलदेवमहर्षिपूज्यां
भक्त्या नताः स्म विदधातु शुभानि सा नः ॥ 3 ॥
यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तो
ब्रह्मा हरश्च न हि वक्तुमलं बलं च ।
सा चण्डिकाखिलजगत्परिपालनाय
नाशाय चाशुभभयस्य मतिं करोतु ॥ 4 ॥
या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः ।
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः ।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम् ॥ 5 ॥
किं वर्णयाम तव रूपमचिन्त्यमेतत्
किं चातिवीर्यमसुरक्षयकारि भूरि ।
किं चाहवेषु चरितानि तवाद्भुतानि
सर्वेषु देव्यसुरदेवगणादिकेषु ॥ 6 ॥
हेतुः समस्तजगतां त्रिगुणापि दोषै-
र्न ज्ञायसे हरिहरादिभिरप्यपारा ।
सर्वाश्रयाखिलमिदं जगदंशभूत-
मव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या ॥ 7 ॥

यस्याः समस्तसुरता समुदीरणेन
तृप्तिं प्रयाति सकलेषु मखेषु देवि।
स्वाहासि वै पितृगणस्य च तृप्तिहेतु-
रुच्चार्यसे त्वमत एव जनैः स्वधा च ॥8॥
या मुक्तिहेतुरविचिन्त्यमहाव्रता त्व-
मभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रियतत्त्वसारैः ।
मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्तसमस्तदोषै-
र्विद्यासि सा भगवती परमा हि देवि ॥9॥
शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषां निधान-
मुद्गीथरम्यपदपाठवतां च साम्नाम् ।
देवी त्रयी भगवती भवभावनाय
वार्ता च सर्वजगतां परमार्तिहन्त्री ॥10॥
मेधासि देवि विदिताखिलशास्त्रसारा
दुर्गासि दुर्गभवसागरनौरसंगा ।
श्रीः कैटभारिहृदयैककृताधिवासा
गौरी त्वमेव शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा ॥11॥
ईषत्सहासममलं परिपूर्णचन्द्र-
बिम्बानुकारि कनकोत्तमकान्तिकान्तम् ।
अत्यद्भुतं प्रहृतमात्तरुषा तथापि
वक्त्रं विलोक्य सहसा महिषासुरेण ॥12॥
दृष्ट्वा तु देवि कुपितं भ्रुकुटीकराल-
मुद्यच्छशांकसदृशच्छवि यन्न सद्यः।
प्राणान्मुमोच महिषस्तदतीव चित्रं
कैर्जीव्यते हि कुपितान्तकदर्शनेन ॥13॥
देवि प्रसीद परमा भवती भवाय
सद्यो विनाशयसि कोपवती कुलानि ।
विज्ञातमेतदधुनैव यदस्तमेत-
न्नीतं बलं सुविपुलं महिषासुरस्य ॥14॥
ते सम्मता जनपदेषु धनानि तेषां
तेषां यशांसि न च सीदति धर्मवर्गः।
धन्यास्त एव निभृतात्मजभृत्यदारा
येषां सदाभ्युदयदा भवती प्रसन्ना ॥15॥

धर्म्याणि देवि सकलानि सदैव कर्मा-
ण्यत्यादृतः प्रतिदिनं सुकृती करोति ।
स्वर्गं प्रयाति च ततो भवतीप्रसादा-
ल्लोकत्रयेऽपि फलदा ननु देवि तेन ॥ 16 ॥
दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि ।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदाऽऽर्द्रचित्ता ॥ 17 ॥
एभिर्हतैर्जगदुपैति सुखं तथैते
कुर्वन्तु नाम नरकाय चिराय पापम् ।
संग्राममृत्युमधिगम्य दिवं प्रयान्तु
मत्वेति नूनमहितान् विनिहंसि देवि ॥ 18 ॥
दृष्ट्वैव किं न भवती प्रकरोति भस्म
सर्वासुरानरिषु यत्प्रहिणोषि शस्त्रम् ।
लोकान् प्रयान्तु रिपवोऽपि हि शस्त्रपूता
इत्थं मतिर्भवति तेष्वपि तेऽतिसाध्वी ॥ 19 ॥
खड्गप्रभानिकरविस्फुरणैस्तथोग्रैः
शूलाग्रकान्तिनिवहेन दृशोऽसुराणाम् ।
यन्नागता विलयमंशुमदिन्दुखण्ड-
योग्याननं तव विलोकयतां तदेतत् ॥ 20 ॥
दुर्वृत्तवृत्तशमनं तव देवि शीलं
रूपं तथैतदविचिन्त्यमतुल्यमन्यैः ।
वीर्यं च हन्तृ हृतदेवपराक्रमाणां
वैरिष्वपि प्रकटितैव दया त्वयेत्थम् ॥ 21 ॥
केनोपमा भवतु तेऽस्य पराक्रमस्य
रूपं च शत्रुभयकार्यतिहारि कुत्र।
चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता च दृष्टा
त्वय्येव देवि वरदे भुवनत्रयेऽपि ॥ 22 ॥
त्रैलोक्यमेतदखिलं रिपुनाशनेन
त्रातं त्वया समरमूर्धनि तेऽपि हत्वा ।
नीता दिवं रिपुगणा भयमप्यपास्त -
मस्माकमुन्मदसुरारिभवं नमस्ते ॥ 23 ॥

शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके ।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च ॥ 24 ॥
प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे ।
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ॥ 25 ॥
सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते ।
यानि चात्यर्थघोराणि तै रक्षास्मांस्तथा भुवम् ॥ 26 ॥
खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके ।
करपल्लवसंगीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः ॥ 27 ॥

ऋषिरुवाच ॥ 28 ॥

एवं स्तुता सुरैर्दिव्यैः कुसुमैर्नन्दनोद्भवैः।
अर्चिता जगतां धात्री तथा गन्धानुलेपनैः ॥ 29 ॥
भक्त्या समस्तैस्त्रिदशैर्दिव्यैर्धूपैस्तु धूपिता ।
प्राह प्रसादसुमुखी समस्तान् प्रणतान् सुरान् ॥ 30 ॥

देव्युवाच ॥ 31 ॥

व्रियतां त्रिदशाः सर्वे यदस्मत्तोऽभिवाञ्छितम् ॥ 32 ॥

देवा ऊचुः ॥ 33 ॥

भगवत्या कृतं सर्वं न किंचिदवशिष्यते ॥ 34 ॥
यदयं निहतः शत्रुरस्माकं महिषासुरः ।
यदि चापि वरो देयस्त्वयास्माकं महेश्वरि ॥ 35 ॥
संस्मृता संस्मृता त्वं नो हिंसेथाः परमापदः।
यश्च मर्त्यः स्तवैरेभिस्त्वां स्तोष्यत्यमलानने ॥ 36 ॥
तस्य वित्तर्द्धिविभवैर्धनदारादिसम्पदाम् ।
वृद्धयेऽस्मत्प्रसन्ना त्वं भवेथाः सर्वदाम्बिके ॥ 37 ॥

ऋषिरुवाच ॥ 38 ॥

इति प्रसादिता देवैर्जगतोऽर्थे तथाऽऽत्मनः ।
तथेत्युक्त्वा भद्रकाली बभूवान्तर्हिता नृप ॥ 39 ॥
इत्येतत्कथितं भूप सम्भूता सा यथा पुरा ।
देवी देवशरीरेभ्यो जगत्त्रयहितैषिणी ॥ 40 ॥

पुनश्च गौरीदेहात्सा समुद्भूता यथाभवत् ।
वधाय दुष्टदैत्यानां तथा शुम्भनिशुम्भयोः ॥ 41 ॥
रक्षणाय च लोकानां देवानामुपकारिणी ।
तच्छृणुष्व मयाऽऽख्यातं यथावत्कथयामि ते ॥ ह्रीं ॐ ॥ 42 ॥

इति श्री मार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
शक्रादिस्तुतिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ 4 ॥



पञ्चमोऽध्यायः

विनियोगः

ॐ अस्य श्रीउत्तरचरित्रस्य रुद्र ऋषिः, महासरस्वती देवता, अनुष्टुप् छन्दः, भीमा शक्तिः, भ्रामरी बीजम्, सूर्यस्तत्त्वम्, सामवेदः स्वरूपम्, महासरस्वतीप्रीत्यर्थे उत्तरचरित्रपाठे विनियोगः।

ध्यानम्

ॐ घण्टाशूलहलानि शंखमुसले चक्रं धनुः सायकं
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम् ।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम् ॥

'ॐ क्लीं' ऋषिरुवाच ॥ 1॥

पुराशुम्भनिशुम्भाभ्यामसुराभ्यां शचीपतेः।
त्रैलोक्यं यज्ञभागाश्च हृता मदबलाश्रयात् ॥2॥
तावेव सूर्यतां तद्वदधिकारं तथैन्दवम् ।
कौबेरमथ याम्यं च चक्राते वरुणस्य च ॥3॥
तावेव पवनर्द्धिं च चक्रतुर्वह्निकर्म च ।
ततो देवा विनिर्धूता भ्रष्टराज्याः पराजिताः ॥4॥
हृताधिकारास्त्रिदशास्ताभ्यां सर्वे निराकृताः।
महासुराभ्यां तां देवीं संस्मरन्त्यपराजिताम् ॥5॥
तयास्माकं वरो दत्तो यथाऽऽपत्सु स्मृताखिलाः।
भवतां नाशयिष्यामि तत्क्षणात्परमापदः ॥6॥
इति कृत्वा मतिं देवा हिमवन्तं नगेश्वरम्।
जग्मुस्तत्र ततो देवीं विष्णुमायां प्रतुष्टुवुः ॥7॥

देवा ऊचुः ॥ 8॥

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥9॥
रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमो नमः।
ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः ॥10॥
कल्याण्यै प्रणतां वृद्ध्यै सिद्ध्यै कुर्मो नमो नमः।
नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमः ॥11॥

दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै ।
ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः ॥ 12 ॥
अतिसौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमो नमः।
नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः ॥ 13 ॥
या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता ।
नमस्तस्यै ॥ 14 ॥ नमस्तस्यै ॥ 15 ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ 16 ॥
या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते ।
नमस्तस्यै ॥ 17 ॥ नमस्तस्यै ॥ 18 ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ 19 ॥
या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ 20 ॥ नमस्तस्यै ॥ 21 ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ 22 ॥
या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ 23 ॥ नमस्तस्यै ॥ 24 ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ 25 ॥
या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ 26 ॥ नमस्तस्यै ॥ 27 ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ 28 ॥
या देवी सर्वभूतेषुच्छायारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ 29 ॥ नमस्तस्यै ॥ 30 ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ 31 ॥
या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ 32 ॥ नमस्तस्यै ॥ 33 ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ 34 ॥
या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ 35 ॥ नमस्तस्यै ॥ 36 ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ 37 ॥
या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ 38 ॥ नमस्तस्यै ॥ 39 ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ 40 ॥
या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ 41 ॥ नमस्तस्यै ॥ 42 ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ 43 ॥
या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ 44 ॥ नमस्तस्यै ॥ 45 ॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥ 46 ॥
या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ 47 ॥ नमस्तस्यै ॥ 48 ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ 49 ॥
या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ 50 ॥ नमस्तस्यै ॥ 51 ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ 52 ॥
या देवी सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ 53 ॥ नमस्तस्यै ॥ 54 ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ 55 ॥
या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता ।

नमस्तस्यै ॥ 56 ॥ नमस्तस्यै ॥ 57 ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ 58 ॥
या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ 59 ॥ नमस्तस्यै ॥ 60 ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ 61 ॥
या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ 62 ॥ नमस्तस्यै ॥ 63 ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ 64 ॥
या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ 65 ॥ नमस्तस्यै ॥ 66 ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ 67 ॥
या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ 68 ॥ नमस्तस्यै ॥ 69 ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ 70 ॥
या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ 71 ॥ नमस्तस्यै ॥ 72 ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ 73 ॥
या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ 74 ॥ नमस्तस्यै ॥ 75 ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ 76 ॥
इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या ।
भूतेषु सततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नमः ॥ 77 ॥
चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद् व्याप्य स्थिता जगत् ।
नमस्तस्यै ॥ 78 ॥ नमस्तस्यै ॥ 79 ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ 80 ॥
स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रया-
त्तथा सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता ।
करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी
शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः ॥ 81 ॥
या साम्प्रतं चोद्धतदैत्यतापितै-
रस्माभिरीशा च सुरैर्नमस्यते ।
या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः
सर्वापदो भक्तिविनम्रमूर्तिभिः ॥ 82 ॥

ऋषिरुवाच ॥ 83 ॥

एवं स्तवादियुक्तानां देवानां तत्र पार्वती ।
स्नातुमभ्याययौ तोये जाह्नव्या नृपनन्दन ॥ 84 ॥
साब्रवीत्तान् सुरान् सुभ्रूर्भवद्भिः स्तूयतेऽत्र का ।
शरीरकोशतश्चास्याः समुद्भूताब्रवीच्छिवा ॥ 85 ॥
स्तोत्रं ममैतत् क्रियते शुम्भदैत्यनिराकृतैः ।
देवैः समेतैः समरे निशुम्भेन पराजितैः ॥ 86 ॥

शरीरकोशाद्यत्तस्या: पार्वत्या नि:सृताम्बिका ।
कौशिकीति समस्तेषु ततो लोकेषु गीयते ॥ 87 ॥
तस्यां विनिर्गतायां तु कृष्णाभूत्सापि पार्वती ।
कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया ॥ 88 ॥
ततोऽम्बिकां परं रूपं बिभ्राणां सुमनोहरम् ।
ददर्श चण्डो मुण्डश्च भृत्यौ शुम्भनिशुम्भयो: ॥ 89 ॥
ताभ्यां शुम्भाय चाख्याता अतीव सुमनोहरा।
काप्यास्ते स्त्री महाराज भासयन्ती हिमाचलम् ॥ 90 ॥
नैव तादृक् क्वचिद्रूपं दृष्टं केनचिदुत्तमम् ।
ज्ञायतां काप्यसौ देवी गृह्यतां चासुरेश्वर ॥ 91 ॥
स्त्रीरत्नमतिचार्वंगी द्योतयन्ती दिशस्त्विषा ।
सा तु तिष्ठति दैत्येन्द्र तां भवान् द्रष्टुमर्हति ॥ 92 ॥
यानि रत्नानि मणयो गजाश्वादीनि वै प्रभो ।
त्रैलोक्ये तु समस्तानि साम्प्रतं भान्ति ते गृहे ॥ 93 ॥
ऐरावत: समानीतो गजरत्नं पुरन्दरात् ।
पारिजाततरुश्चायं तथैवोच्चै:श्रवा हय: ॥ 94 ॥
विमानं हंससंयुक्तमेतत्तिष्ठति तेंऽगणे ।
रत्नभूतमिहानीतं यदासीद्वेधसोऽद्भुतम् ॥ 95 ॥
निधिरेष महापद्म: समानीतो धनेश्वरात् ।
किञ्जल्किनीं ददौ चाब्धिर्मालामम्लानपंकजाम् ॥ 96 ॥
छत्रं ते वारुणं गेहे काञ्चनस्त्रावि तिष्ठति ।
तथायं स्यन्दनवरो य: पुराऽऽसीत्प्रजापते: ॥ 97 ॥
मृत्योरुत्क्रान्तिदा नाम शक्तिरीश त्वया हृता ।
पाश: सलिलराजस्य भ्रातुस्तव परिग्रहे ॥ 98 ॥
निशुम्भस्याब्धिजाताश्च समस्ता रत्नजातय:।
वह्निरपि ददौ तुभ्यमग्निशौचे च वाससी ॥ 99 ॥
एवं दैत्येन्द्र रत्नानि समस्तान्याहृतानि ते ।
स्त्रीरत्नमेषा कल्याणी त्वया कस्मान्न गृह्यते ॥ 100 ॥

ऋषिरुवाच ॥ 101 ॥

निशम्येति वच: शुम्भ: स तदा चण्डमुण्डयो:।
प्रेषयामास सुग्रीवं दूतं देव्या महासुरम् ॥ 102 ॥
इति चेति च वक्तव्या सा गत्वा वचनान्मम।

यथा चाभ्येति सम्प्रीत्या तथा कार्यं त्वया लघु ॥ 103 ॥
स तत्र गत्वा यत्रास्ते शैलोद्देशेऽतिशोभने ।
सा देवी तां ततः प्राह श्लक्ष्णं मधुरया गिरा ॥ 104 ॥

दूत उवाच ॥ 105 ॥

देवि दैत्येश्वरः शुम्भस्त्रैलोक्ये परमेश्वरः।
दूतोऽहं प्रेषितस्तेन त्वत्सकाशमिहागतः ॥ 106 ॥
अव्याहताज्ञः सर्वासु यः सदा देवयोनिषु ।
निर्जिताखिलदैत्यारिः स यदाह शृणुष्व तत् ॥ 107 ॥
मम त्रैलोक्यमखिलं मम देवा वशानुगाः।
यज्ञभागानहं सर्वानुपाश्नामि पृथक् पृथक् ॥ 108 ॥
त्रैलोक्ये वररत्नानि मम वश्यान्यशेषतः ।
तथैव गजरत्नं च हृत्वा देवेन्द्रवाहनम् ॥ 109 ॥
क्षीरोदमथनोद्भूतमश्वरत्नं ममामरैः।
उच्चैःश्रवससंज्ञं तत्प्रणिपत्य समर्पितम् ॥ 110 ॥
यानि चान्यानि देवेषु गन्धर्वेषूरगेषु च ।
रत्नभूतानि भूतानि तानि मय्येव शोभने ॥ 111 ॥
स्त्रीरत्नभूतां त्वां देवि लोके मन्यामहे वयम् ।
सा त्वमस्मानुपागच्छ यतो रत्नभुजो वयम् ॥ 112 ॥
मां वा ममानुजं वापि निशुम्भमुरुविक्रमम् ।
भज त्वं चंचलापांगि रत्नभूतासि वै यतः ॥ 113 ॥
परमैश्वर्यमतुलं प्राप्स्यसे मत्परिग्रहात् ।
एतद् बुद्ध्या समालोच्य मत्परिग्रहतां व्रज ॥ 114 ॥

ऋषिरुवाच ॥ 115 ॥

इत्युक्ता सा तदा देवी गम्भीरान्तः स्मिता जगौ।
दुर्गा भगवती भद्रा ययेदं धार्यते जगत् ॥ 116 ॥

देव्युवाच ॥ 117 ॥

सत्यमुक्तं त्वया नात्र मिथ्या किंचित्त्वयोदितम् ।
त्रैलोक्याधिपतिः शुम्भो निशुम्भश्चापि तादृशः ॥ 118 ॥
किं त्वत्र यत्प्रतिज्ञातं मिथ्या तत्क्रियते कथम् ।
श्रूयतामल्पबुद्धित्वात्प्रतिज्ञा या कृता पुरा ॥ 119 ॥

यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति ।
यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्ता भविष्यति ॥ 120 ॥
तदागच्छतु शुम्भोऽत्र निशुम्भो वा महासुरः।
मां जित्वा किं चिरेणात्र पाणिं गृह्णातु मे लघु ॥ 121 ॥

दूत उवाच ॥ 122 ॥

अवलिप्तासि मैवं त्वं देवि ब्रूहि ममाग्रतः।
त्रैलोक्ये कः पुमांस्तिष्ठेदग्रे शुम्भनिशुम्भयोः ॥ 123 ॥
अन्येषामपि दैत्यानां सर्वे देवा न वै युधि ।
तिष्ठन्ति सम्मुखे देवि किं पुनः स्त्री त्वमेकिका ॥ 124 ॥
इन्द्राद्याः सकला देवास्तस्थुर्येषां न संयुगे ।
शुम्भादीनां कथं तेषां स्त्री प्रयास्यसि सम्मुखम् ॥ 125 ॥
सा त्वं गच्छ मयैवोक्ता पार्श्वं शुम्भनिशुम्भयोः।
केशाकर्षणनिर्धूतगौरवा मा गमिष्यसि ॥ 126 ॥

देव्युवाच ॥ 127 ॥

एवमेतद् बली शुम्भो निशुम्भश्चातिवीर्यवान् ।
किं करोमि प्रतिज्ञा मे यदनालोचिता पुरा ॥ 128 ॥
स त्वं गच्छ मयोक्तं ते यदेतत्सर्वमादृतः।
तदाचक्ष्वासुरेन्द्राय स च युक्तं करोतु तत् ॥ ॐ ॥ 129 ॥

इति श्री मार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
देव्या दूतसंवादो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ 5 ॥



षष्ठोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ नागाधीश्वरविष्टरां फणिफणोत्तंसोरुरत्नावली-
भास्वद्देहलतां दिवाकरनिभां नेत्रत्रयोद्भासिताम् ।
मालाकुम्भकपालनीरजकरां चन्द्रार्धचूडां परां
सर्वज्ञेश्वरभैरवांकनिलयां पद्मावतीं चिन्तये ॥

'ॐ' ऋषिरुवाच ॥ 1 ॥

इत्याकर्ण्य वचो देव्याः स दूतोऽमर्षपूरितः।
समाचष्ट समागम्य दैत्यराजाय विस्तरात् ॥2॥
तस्य दूतस्य तद्वाक्यमाकर्ण्यासुरराट् ततः।
सक्रोधः प्राह दैत्यानामधिपं धूम्रलोचनम् ॥3॥
हे धूम्रलोचनाशु त्वं स्वसैन्यपरिवारितः।
तामानय बलाद् दुष्टां केशाकर्षणविह्वलाम् ॥4॥
तत्परित्राणदः कश्चिद्यदि वोत्तिष्ठतेऽपरः।
स हन्तव्योऽमरो वापि यक्षो गन्धर्व एव वा ॥5॥

ऋषिरुवाच ॥ 6 ॥

तेनाज्ञप्तस्ततः शीघ्रं स दैत्यो धूम्रलोचनः।
वृतः षष्ट्या सहस्राणामसुराणां द्रुतं ययौ ॥7॥
स दृष्ट्वा तां ततो देवीं तुहिनाचलसंस्थिताम् ।
जगादोच्चैः प्रयाहीति मूलं शुम्भनिशुम्भयोः ॥8॥
न चेत्प्रीत्याद्य भवती मद्भर्तारमुपैष्यति ।
ततो बलान्नयाम्येष केशाकर्षणविह्वलाम् ॥9॥

देव्युवाच ॥ 10 ॥

दैत्येश्वरेण प्रहितो बलवान् बलसंवृतः।
बलान्नयसि मामेवं ततः किं ते करोम्यहम् ॥11॥

ऋषिरुवाच ॥ 12 ॥

इत्युक्तः सोऽभ्यधावत्तामसुरो धूम्रलोचनः।
हुंकारेणैव तं भस्म सा चकाराम्बिका ततः ॥13॥

अथ क्रुद्धं महासैन्यमसुराणां तथाम्बिका ।
ववर्ष सायकैस्तीक्ष्णैस्तथा शक्तिपरश्वधैः ॥ 14 ॥
ततो धुतसटः कोपात्कृत्वा नादं सुभैरवम् ।
पपातासुरसेनायां सिंहो देव्याः स्ववाहनः ॥ 15 ॥
कांश्चित् करप्रहारेण दैत्यानास्येन चापरान् ।
आक्रम्य चाधरेणान्यान् स जघान महासुरान् ॥ 16 ॥
केषांचित्पाटयामास नखैः कोष्ठानि केसरी ।
तथा तलप्रहारेण शिरांसि कृतवान् पृथक् ॥ 17 ॥
विच्छिन्नबाहुशिरसः कृतास्तेन तथापरे ।
पपौ च रुधिरं कोष्ठादन्येषां धुतकेसरः ॥ 18 ॥
क्षणेन तद्बलं सर्वं क्षयं नीतं महात्मना ।
तेन केसरिणा देव्या वाहनेनातिकोपिना ॥ 19 ॥
श्रुत्वा तमसुरं देव्या निहतं धूम्रलोचनम् ।
बलं च क्षयितं कृत्स्नं देवीकेसरिणा ततः ॥ 20 ॥
चुकोप दैत्याधिपतिः शुम्भः प्रस्फुरिताधरः ।
आज्ञापयामास च तौ चण्डमुण्डौ महासुरौ ॥ 21 ॥
हे चण्ड हे मुण्ड बलैर्बहुभिः परिवारितौ ।
तत्र गच्छत गत्वा च सा समानीयतां लघु ॥ 22 ॥
केशेष्वाकृष्य बद्ध्वा वा यदि वः संशयो युधि ।
तदाशेषायुधैः सर्वैरसुरैर्विनिहन्यताम् ॥ 23 ॥
तस्यां हतायां दुष्टायां सिंहे च विनिपातिते ।
शीघ्रमागम्यतां बद्ध्वा गृहीत्वा तामथाम्बिकाम् ॥ ॐ ॥ 24 ॥

इति श्री मार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
शुम्भनिशुम्भसेनानीधूम्रलोचनवधो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ 6 ॥



सप्तमोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ ध्यायेयं रत्नपीठे शुककलपठितं शृण्वतीं श्यामलांगीं
न्यस्तैकांघ्रिं सरोजे शशिशकलधरां वल्लकीं वादयन्तीम् ।
कह्लाराबद्धमालां नियमितविलसच्चोलिकां रक्तवस्त्रां
मातंगीं शंखपात्रां मधुरमधुमदां चित्रकोद्भासिभालाम् ॥

'ॐ' ऋषिरुवाच ॥ 1 ॥

आज्ञप्तास्ते ततो दैत्याश्चण्डमुण्डपुरोगमाः ।
चतुरंगबलोपेता ययुरभ्युद्यतायुधाः ॥ 2 ॥
ददृशुस्ते ततो देवीमीषद्धासां व्यवस्थिताम् ।
सिंहस्योपरि शैलेन्द्रशृंगे महति कांचने ॥ 3 ॥
ते दृष्ट्वा तां समादातुमुद्यमं चक्रुरुद्यताः ।
आकृष्टचापासिधरास्तथान्ये तत्समीपगाः ॥ 4 ॥
ततः कोपं चकारोच्चैरम्बिका तानरीन् प्रति ।
कोपेन चास्या वदनं मषीवर्णमभूत्तदा ॥ 5 ॥
भ्रुकुटीकुटिलात्तस्या ललाटफलकाद्द्रुतम् ।
काली करालवदना विनिष्क्रान्तासिपाशिनी ॥ 6 ॥
विचित्रखट्वांगधरा नरमालाविभूषणा ।
द्वीपिचर्मपरीधाना शुष्कमांसातिभैरवा ॥ 7 ॥
अतिविस्तारवदना जिह्वाललनभीषणा ।
निमग्नारक्तनयना नादापूरितदिङ्मुखा ॥ 8 ॥
सा वेगेनाभिपतिता घातयन्ती महासुरान् ।
सैन्ये तत्र सुरारीणामभक्षयत तद्बलम् ॥ 9 ॥
पार्ष्णिग्राहांकुशग्राहियोधघण्टासमन्वितान् ।
समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप वारणान् ॥ 10 ॥
तथैव योधं तुरगै रथं सारथिना सह।
निक्षिप्य वक्त्रे दशनैश्चर्वयन्त्यतिभैरवम् ॥ 11 ॥
एकं जग्राह केशेषु ग्रीवायामथ चापरम् ।
पादेनाक्रम्य चैवान्यमुरसान्यमपोथयत् ॥ 12 ॥

तैर्मुक्तानि च शस्त्राणि महास्त्राणि तथासुरैः।
मुखेन जग्राह रुषा दशनैर्मथितान्यपि ॥ 13 ॥
बलिनां तद् बलं सर्वमसुराणां दुरात्मनाम् ।
ममर्दाभक्षयच्चान्यानन्यांश्चाताडयत्तथा ॥ 14 ॥
असिना निहताः केचित्केचित्खट्वांगताडिताः।
जग्मुर्विनाशमसुरा दन्ताग्राभिहतास्तथा ॥ 15 ॥
क्षणेन तद् बलं सर्वमसुराणां निपातितम् ।
दृष्ट्वा चण्डोऽभिदुद्राव तां कालीमतिभीषणाम् ॥ 16 ॥
शरवर्षैर्महाभीमैर्भीमाक्षीं तां महासुरः।
छादयामास चक्रैश्च मुण्डः क्षिप्तैः सहस्रशः ॥ 17 ॥
तानि चक्राण्यनेकानि विशमानानि तन्मुखम् ।
बभुर्यथार्कबिम्बानि सुबहूनि घनोदरम् ॥ 18 ॥
ततो जहासातिरुषा भीमं भैरवनादिनी ।
कालीकरालवक्त्रान्तर्दुर्दर्शदशनोज्ज्वला ॥ 19 ॥
उत्थाय च महासिंहं देवी चण्डमधावत ।
गृहीत्वा चास्य केशेषु शिरस्तेनासिनाच्छिनत् ॥ 20 ॥
अथ मुण्डोऽभ्यधावत्तां दृष्ट्वा चण्डं निपातितम् ।
तमप्यपातयद्भूमौ सा खड्गाभिहतं रुषा ॥ 21 ॥
हतशेषं ततः सैन्यं दृष्ट्वा चण्डं निपातितम् ।
मुण्डं च सुमहावीर्यं दिशो भेजे भयातुरम् ॥ 22 ॥
शिरश्चण्डस्य काली च गृहीत्वा मुण्डमेव च ।
प्राह प्रचण्डाट्टहासमिश्रमभ्येत्य चण्डिकाम् ॥ 23 ॥
मया तवात्रोपहृतौ चण्डमुण्डौ महापशू ।
युद्धयज्ञे स्वयं शुम्भं निशुम्भं च हनिष्यसि ॥ 24 ॥

ऋषिरुवाच ॥ 25 ॥

तावानीतौ ततो दृष्ट्वा चण्डमुण्डौ महासुरौ ।
उवाच कालीं कल्याणी ललितं चण्डिका वचः ॥ 26 ॥
यस्माच्चण्डं च मुण्डं च गृहीत्वा त्वमुपागता।
चामुण्डेति ततो लोके ख्याता देवि भविष्यसि ॥ ॐ ॥ 27 ॥

इति श्री मार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
चण्डमुण्डवधो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥7॥

अष्टमोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ अरुणां करुणातरंगिताक्षीं
धृतपाशांकुशबाणचापहस्ताम् ।
अणिमादिभिरावृतां मयूखै-
रहमित्येव विभावये भवानीम् ॥

'ॐ' ऋषिरुवाच ॥ 1 ॥

चण्डे च निहते दैत्ये मुण्डे च विनिपातिते ।
बहुलेषु च सैन्येषु क्षयितेष्वसुरेश्वर: ॥ 2 ॥
तत: कोपपराधीनचेता: शुम्भ: प्रतापवान् ।
उद्योगं सर्वसैन्यानां दैत्यानामादिदेश ह ॥ 3 ॥
अद्य सर्वबलैर्दैत्या: षडशीतिरुदायुधा: ।
कम्बूनां चतुरशीतिर्निर्यान्तु स्वबलैर्वृता: ॥ 4 ॥
कोटिवीर्याणि पञ्चाशदसुराणां कुलानि वै ।
शतं कुलानि धौम्राणां निर्गच्छन्तु ममाज्ञया ॥ 5 ॥
कालका दौर्हृदा मौर्या: कालकेयास्तथासुरा: ।
युद्धाय सज्जा निर्यान्तु आज्ञया त्वरिता मम ॥ 6 ॥
इत्याज्ञाप्यासुरपति: शुम्भो भैरवशासन: ।
निर्जगाम महासैन्यसहस्रैर्बहुभिर्वृत: ॥ 7 ॥
आयान्तं चण्डिका दृष्ट्वा तत्सैन्यमतिभीषणम् ।
ज्यास्वनै: पूरयामास धरणीगगनान्तरम् ॥ 8 ॥
तत: सिंहो महानादमतीव कृतवान् नृप ।
घण्टास्वनेन तन्नादमम्बिका चोपबृंहयत् ॥ 9 ॥
धनुर्ज्यासिंहघण्टानां नादापूरितदिङ् मुखा ।
निनादैर्भीषणै: काली जिग्ये विस्तारितानना ॥ 10 ॥
तं निनादमुपश्रुत्य दैत्यसैन्यैश्चतुर्दिशम् ।
देवी सिंहस्तथा काली सरोषै: परिवारिता: ॥ 11 ॥
एतस्मिन्नन्तरे भूप विनाशाय सुरद्विषाम् ।
भवायामरसिंहानामतिवीर्यबलान्विता: ॥ 12 ॥
ब्रह्मेशगुहविष्णूनां तथेन्द्रस्य च शक्तय: ।
शरीरेभ्यो विनिष्क्रम्य तद्रूपैश्चण्डिकां ययु: ॥ 13 ॥

यस्य देवस्य यद्रूपं यथाभूषणवाहनम् ।
तद्वदेव हि तच्छक्तिरसुरान् योद्धुमाययौ ॥ 14 ॥
हंसयुक्तविमानाग्रे साक्षसूत्रकमण्डलुः ।
आयाता ब्रह्मणः शक्तिर्ब्रह्माणी साभिधीयते ॥ 15 ॥
माहेश्वरी वृषारूढा त्रिशूलवरधारिणी ।
महाहिवलया प्राप्ता चन्द्ररेखाविभूषणा ॥ 16 ॥
कौमारी शक्तिहस्ता च मयूरवरवाहना ।
योद्धुमभ्याययौ दैत्यानम्बिका गुहरूपिणी ॥ 17 ॥
तथैव वैष्णवी शक्तिर्गरुडोपरि संस्थिता ।
शंखचक्रगदाशाङ्र्गखड्गहस्ताभ्युपाययौ ॥ 18 ॥
यज्ञ वाराहमतुलं रूपं या बिभ्रतो हरेः ।
शक्तिः साप्याययौ तत्र वाराहीं बिभ्रती तनुम् ॥ 19 ॥
नारसिंही नृसिंहस्य बिभ्रती सदृशं वपुः ।
प्राप्ता तत्र सटाक्षेपक्षिप्तनक्षत्रसंहतिः ॥ 20 ॥
वज्रहस्ता तथैवैन्द्री गजराजोपरि स्थिता ।
प्राप्ता सहस्रनयना यथा शक्रस्तथैव सा ॥ 21 ॥
ततः परिवृतस्ताभिरीशानो देवशक्तिभिः ।
हन्यन्तामसुराः शीघ्रं मम प्रीत्याऽऽह चण्डिकाम् ॥ 22 ॥
ततो देवीशरीरात्तु विनिष्क्रान्तातिभीषणा ।
चण्डिकाशक्तिरत्युग्रा शिवाशतनिनादिनी ॥ 23 ॥
सा चाह धूम्रजटिलमीशानमपराजिता ।
दूत त्वं गच्छ भगवन् पार्श्वं शुम्भनिशुम्भयोः ॥ 24 ॥
ब्रूहि शुम्भं निशुम्भं च दानवावतिगर्वितौ ।
ये चान्ये दानवास्तत्र युद्धाय समुपस्थिताः ॥ 25 ॥
त्रैलोक्यमिन्द्रो लभतां देवाः सन्तु हविर्भुजः ।
यूयं प्रयात पातालं यदि जीवितुमिच्छथ ॥ 26 ॥
बलावलेपादथ चेद्भवन्तो युद्धकांक्षिणः ।
तदागच्छत तृप्यन्तु मच्छिवाः पिशितेन वः ॥ 27 ॥
यतो नियुक्तो दौत्येन तया देव्या शिवः स्वयम् ।
शिवदूतीति लोकेऽस्मिंस्ततः सा ख्यातिमागता ॥ 28 ॥
तेऽपि श्रुत्वा वचो देव्याः शर्वाख्यातं महासुराः ।
अमर्षापूरिता जग्मुर्यत्र कात्यायनी स्थिता ॥ 29 ॥

ततः प्रथममेवाग्रे शरशक्त्यृष्टिवृष्टिभिः।
ववर्षुरुद्धतामर्षास्तां देवीममरारयः ॥ 30॥
सा च तान् प्रहितान् बाणाञ्छूलशक्तिपरश्वधान् ।
चिच्छेद लीलयाऽऽध्मातधनुर्मुक्तैर्महेषुभिः ॥ 31॥
तस्याग्रतस्तथा काली शूलपातविदारितान् ।
खट्वांगपोथितांश्चारीन् कुर्वती व्यचरत्तदा ॥ 32॥
कमण्डलुजलाक्षेपहतवीर्यान् हतौजसः।
ब्रह्माणी चाकरोच्छत्रून् येन येन स्म धावति ॥ 33॥
माहेश्वरी त्रिशूलेन तथा चक्रेण वैष्णवी ।
दैत्याञ्जघान कौमारी तथा शक्त्यातिकोपना ॥ 34॥
ऐन्द्रीकुलिशपातेन शतशो दैत्यदानवाः।
पेतुर्विदारिताः पृथ्व्यां रुधिरौघप्रवर्षिणः ॥ 35॥
तुण्डप्रहारविध्वस्ता दंष्ट्राग्रक्षतवक्षसः।
वाराहमूर्त्या न्यपतंश्चक्रेण च विदारिताः ॥ 36॥
नखैर्विदारितांश्चान्यान् भक्षयन्ती महासुरान् ।
नारसिंही चचाराजौ नादापूर्णदिगम्बरा ॥ 37॥
चण्डाट्टहासैरसुराः शिवदूत्यभिदूषिताः।
पेतुः पृथिव्यां पतितांस्तांश्चखादाथ सा तदा ॥ 38॥
इति मातृगणं क्रुद्धं मर्दयन्तं महासुरान् ।
दृष्ट्वाभ्युपायैर्विविधैर्नेशुर्देवारिसैनिकाः ॥ 39॥
पलायनपरान् दृष्ट्वा दैत्यान् मातृगणार्दितान् ।
योद्धुमभ्याययौ क्रुद्धो रक्तबीजो महासुरः ॥ 40॥
रक्तबिन्दुर्यदा भूमौ पतत्यस्य शरीरतः।
समुत्पतति मेदिन्यां तत्प्रमाणस्तदासुरः ॥ 41॥
युयुधे स गदापाणिरिन्द्रशक्त्या महासुरः।
ततश्चैन्द्री स्ववज्रेण रक्तबीजमताडयत् ॥ 42॥
कुलिशेनाहतस्याशु बहु सुस्राव शोणितम् ।
समुत्तस्थुस्ततो योधास्तद्रूपास्तत्पराक्रमाः ॥ 43॥
यावन्तः पतितास्तस्य शरीराद्रक्तबिन्दवः।
तावन्तः पुरुषा जातास्तद्वीर्यबलविक्रमाः ॥ 44॥
ते चापि युयुधुस्तत्र पुरुषा रक्तसम्भवाः।
समं मातृभिरत्युग्रशस्त्रपातातिभीषणम् ॥ 45॥

पुनश्च वज्रपातेन क्षतमस्य शिरो यदा ।
ववाह रक्तं पुरुषास्ततो जाताः सहस्रशः ॥ 46 ॥
वैष्णवी समरे चैनं चक्रेणाभिजघान ह ।
गदया ताडयामास ऐन्द्री तमसुरेश्वरम् ॥ 47 ॥
वैष्णवीचक्रभिन्नस्य रुधिरस्रावसम्भवैः ।
सहस्रशो जगद्व्याप्तं तत्प्रमाणैर्महासुरैः ॥ 48 ॥
शक्त्या जघान कौमारी वाराही च तथासिना ।
माहेश्वरी त्रिशूलेन रक्तबीजं महासुरम् ॥ 49 ॥
स चापि गदया दैत्यः सर्वा एवाहनत् पृथक् ।
मातॄः कोपसमाविष्टो रक्तबीजो महासुरः ॥ 50 ॥
तस्याहतस्य बहुधा शक्तिशूलादिभिर्भुवि ।
पपात यो वै रक्तौघस्तेनासञ्छतशोऽसुराः ॥ 51 ॥
तैश्चासुरासृक्सम्भूतैरसुरैः सकलं जगत् ।
व्याप्तमासीत्ततो देवा भयमाजग्मुरुत्तमम् ॥ 52 ॥
तान् विषण्णान् सुरान् दृष्ट्वा चण्डिका प्राह सत्वरा ।
उवाच कालीं चामुण्डे विस्तीर्णं वदनं कुरु ॥ 53 ॥
मच्छस्त्रपातसम्भूतान् रक्तबिन्दून्महासुरान् ।
रक्तबिन्दोः प्रतीच्छ त्वं वक्त्रेणानेन वेगिना ॥ 54 ॥
भक्षयन्ती चर रणे तदुत्पन्नान्महासुरान् ।
एवमेष क्षयं दैत्यः क्षीणरक्तो गमिष्यति ॥ 55 ॥
भक्ष्यमाणास्त्वया चोग्रा न चोत्पत्स्यन्ति चापरे ।
इत्युक्त्वा तां ततो देवी शूलेनाभिजघान तम् ॥ 56 ॥
मुखेन काली जगृहे रक्तबीजस्य शोणितम् ।
ततोऽसावाजघानाथ गदया तत्र चण्डिकाम् ॥ 57 ॥
न चास्या वेदनां चक्रे गदापातोऽल्पिकामपि ।
तस्याहतस्य देहात्तु बहु सुस्राव शोणितम् ॥ 58 ॥
यतस्ततस्तद्वक्त्रेण चामुण्डा सम्प्रतीच्छति ।
मुखे समुद्गता येऽस्या रक्तपातान्महासुराः ॥ 59 ॥
तांश्चखादाथ चामुण्डा पपौ तस्य च शोणितम् ।
देवी शूलेन वज्रेण बाणैरसिभिर्ऋष्टिभिः ॥ 60 ॥
जघान रक्तबीजं तं चामुण्डापीतशोणितम् ।
स पपात महीपृष्ठे शस्त्रसंघसमाहतः ॥ 61 ॥

नीरक्तश्च महीपाल रक्तबीजो महासुरः।
ततस्ते हर्षमतुलमवापुस्त्रिदशा नृप ॥62॥
तेषां मातृगणो जातो ननर्तासृङ्मदोद्धतः ॥ ॐ ॥63॥

इति श्री मार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
रक्तबीजवधो नामाष्टमोऽध्यायः ॥8॥



नवमोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ बन्धूककाञ्चननिभं रुचिराक्षमालां
पाशांकुशौ च वरदां निजबाहुदण्डैः।
बिभ्राणमिन्दुशकलाभरणं त्रिनेत्र-
मर्धाम्बिकेशमनिशं वपुराश्रयामि ॥

'ॐ' राजोवाच ॥ 1 ॥

विचित्रमिदमाख्यातं भगवन् भवता मम।
देव्याश्चरितमाहात्म्यं रक्तबीजवधाश्रितम् ॥ 2 ॥
भूयश्चेच्छाम्यहं श्रोतुं रक्तबीजे निपातिते ।
चकार शुम्भो यत्कर्म निशुम्भश्चातिकोपनः ॥ 3 ॥

ऋषिरुवाच ॥ 4 ॥

चकार कोपमतुलं रक्तबीजे निपातिते ।
शुम्भासुरो निशुम्भश्च हतेष्वन्येषु चाहवे ॥ 5 ॥
हन्यमानं महासैन्यं विलोक्यामर्षमुद्वहन् ।
अभ्यधावन्निशुम्भोऽथ मुख्ययासुरसेनया ॥ 6 ॥
तस्याग्रतस्तथा पृष्ठे पार्श्वयोश्च महासुराः।
संदष्टौष्ठपुटाः क्रुद्धा हन्तुं देवीमुपाययुः ॥ 7 ॥
आजगाम महावीर्यः शुम्भोऽपि स्वबलैर्वृतः ।
निहन्तुं चण्डिकां कोपात्कृत्वा युद्धं तु मातृभिः ॥ 8 ॥
ततो युद्धमतीवासीद्देव्या शुम्भनिशुम्भयोः।
शरवर्षमतीवोग्रं मेघयोरिव वर्षतोः ॥ 9 ॥
चिच्छेदास्ताञ्छरांस्ताभ्यां चण्डिका स्व शरोत्करैः।
ताडयामास चांगेषु शस्त्रौघैरसुरेश्वरौ ॥ 10 ॥
निशुम्भो निशितं खड्गं चर्म चादाय सुप्रभम् ।
अताडयन्मूर्ध्नि सिंहं देव्या वाहनमुत्तमम् ॥ 11 ॥
ताडिते वाहने देवी क्षुरप्रेणासिमुत्तमम् ।
निशुम्भस्याशु चिच्छेद चर्म चाप्यष्टचन्द्रकम् ॥ 12 ॥
छिन्ने चर्मणि खड्गे च शक्तिं चिक्षेप सोऽसुरः ।
तामप्यस्य द्विधा चक्रे चक्रेणाभिमुखागताम् ॥ 13 ॥

कोपाध्मातो निशुम्भोऽथ शूलं जग्राह दानवः।
आयातं मुष्टिपातेन देवी तच्चाप्यचूर्णयत् ॥ 14 ॥
आविध्याथ गदां सोऽपि चिक्षेप चण्डिकां प्रति ।
सापि देव्या त्रिशूलेन भिन्ना भस्मत्वमागता ॥ 15 ॥
ततः परशुहस्तं तमायान्तं दैत्यपुंगवम् ।
आहत्य देवी बाणौघैरपातयत भूतले ॥ 16 ॥
तस्मिन्निपतिते भूमौ निशुम्भे भीमविक्रमे ।
भ्रातर्यतीव संक्रुद्धः प्रययौ हन्तुमम्बिकाम् ॥ 17 ॥
स रथस्थस्तथात्युच्चैर्गृहीतपरमायुधैः।
भुजैरष्टाभिरतुलैर्व्याप्याशेषं बभौ नभः ॥ 18 ॥
तमायान्तं समालोक्य देवी शंखमवादयत् ।
ज्याशब्दं चापि धनुषश्चकारातीव दुःसहम् ॥ 19 ॥
पूरयामास ककुभो निजघण्टास्वनेन च ।
समस्तदैत्यसैन्यानां तेजोवधविधायिना ॥ 20 ॥
ततः सिंहो महानादैस्त्याजितेभमहामदैः।
पूरयामास गगनं गां तथैव दिशो दश ॥ 21 ॥
ततः काली समुत्पत्य गगनं क्ष्मामताडयत् ।
कराभ्यां तन्निनादेन प्राक्स्वनास्ते तिरोहिताः ॥ 22 ॥
अट्टाट्टहासमशिवं शिवदूती चकार ह ।
तैः शब्दैरसुरास्त्रेसुः शुम्भः कोपं परं ययौ ॥ 23 ॥
दुरात्मंस्तिष्ठ तिष्ठेति व्याजहाराम्बिका यदा ।
तदा जयेत्यभिहितं देवैराकाशसंस्थितैः ॥ 24 ॥
शुम्भेनागत्य या शक्तिर्मुक्ता ज्वालातिभीषणा।
आयान्ती वह्निकूटाभा सा निरस्ता महोल्कया ॥ 25 ॥
सिंहनादेन शुम्भस्य व्याप्तं लोकत्रयान्तरम् ।
निर्घातनिःस्वनो घोरो जितवानवनीपते ॥ 26 ॥
शुम्भमुक्ताञ्छरान्देवी शुम्भस्तत्प्रहिताञ्छरान् ।
चिच्छेद स्वशरैरुग्रैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ 27 ॥
ततः सा चण्डिका क्रुद्धा शूलेनाभिजघान तम् ।
स तदाभिहतो भूमौ मूर्च्छितो निपपात ह ॥ 28 ॥
ततो निशुम्भः सम्प्राप्य चेतनामात्तकार्मुकः।
आजघान शरैर्देवीं कालीं केसरिणं तथा ॥ 29 ॥

पुनश्च कृत्वा बाहूनामयुतं दनुजेश्वरः।
चक्रायुधेन दितिजश्छादयामास चण्डिकाम् ॥ 30 ॥
ततो भगवती क्रुद्धा दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी ।
चिच्छेद तानि चक्राणि स्वशरैः सायकांश्च तान् ॥ 31 ॥
ततो निशुम्भो वेगेन गदामादाय चण्डिकाम् ।
अभ्यधावत वै हन्तुं दैत्यसेनासमावृतः ॥ 32 ॥
तस्यापतत एवाशु गदां चिच्छेद चण्डिका ।
खड्गेन शितधारेण स च शूलं समाददे ॥ 33 ॥
शूलहस्तं समायान्तं निशुम्भममरार्दनम् ।
हृदि विव्याध शूलेन वेगाविद्धेन चण्डिका ॥ 34 ॥
भिन्नस्य तस्य शूलेन हृदयान्निःसृतोऽपरः।
महाबलो महावीर्यस्तिष्ठेति पुरुषो वदन् ॥ 35 ॥
तस्य निष्क्रामतो देवी प्रहस्य स्वनवत्ततः।
शिरश्चिच्छेद खड्गेन ततोऽसावपतद्भुवि ॥ 36 ॥
ततः सिंहश्चखादोग्रं दंष्ट्राक्षुण्णशिरोधरान् ।
असुरांस्तांस्तथा काली शिवदूती तथापरान् ॥ 37 ॥
कौमारीशक्तिनिर्भिन्नाः केचिन्नेशुर्महासुराः।
ब्रह्माणीमन्त्रपूतेन तोयेनान्ये निराकृताः ॥ 38 ॥
माहेश्वरीत्रिशूलेन भिन्नाः पेतुस्तथापरे ।
वाराहीतुण्डघातेन केचिच्चूर्णीकृता भुवि ॥ 39 ॥
खण्डं खण्डं च चक्रेण वैष्णव्या दानवाः कृताः।
वज्रेण चैन्द्रीहस्ताग्रविमुक्तेन तथापरे ॥ 40 ॥
केचिद्विनेशुरसुराः केचिन्नष्टा महाहवात् ।
भक्षिताश्चापरे कालीशिवदूतीमृगाधिपैः ॥ ॐ ॥ 41 ॥

इति श्री मार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
निशुम्भवधो नाम नवमोऽध्यायः ॥ 9 ॥



दशमोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ उत्तप्तहेमरुचिरां रविचन्द्रवह्नि-
नेत्रां धनुश्शरयुतांकुशपाशशूलम् ।
रम्यैर्भुजैश्च दधतीं शिवशक्तिरूपां
कामेश्वरीं हृदि भजामि धृतेन्दुलेखाम् ॥

'ॐ' ऋषिरुवाच ॥ 1 ॥

निशुम्भं निहतं दृष्ट्वा भ्रातरं प्राणसम्मितम् ।
हन्यमानं बलं चैव शुम्भः क्रुद्धोऽब्रवीद्वचः ॥ 2 ॥
बलावलेपाद्दुष्टे त्वं मा दुर्गे गर्वमावह ।
अन्यासां बलमाश्रित्य युद्ध्यसे यातिमानिनी ॥ 3 ॥

देव्युवाच ॥ 4 ॥

एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा ।
पश्यैता दुष्ट मय्येव विशन्त्यो मद्विभूतयः ॥ 5 ॥
ततः समस्तास्ता देव्यो ब्रह्माणीप्रमुखा लयम् ।
तस्या देव्यास्तनौ जग्मुरेकैवासीत्तदाम्बिका ॥ 6 ॥

देव्युवाच ॥ 7 ॥

अहं विभूत्या बहुभिरिह रूपैर्यदास्थिता।
तत्संहृतं मयैकैव तिष्ठाम्याजौ स्थिरो भव ॥ 8 ॥

ऋषिरुवाच ॥ 9 ॥

ततः प्रववृते युद्धं देव्याः शुम्भस्य चोभयोः।
पश्यतां सर्वदेवानामसुराणां च दारुणम् ॥ 10 ॥
शरवर्षैः शितैः शस्त्रैस्तथास्त्रैश्चैव दारुणैः।
तयोर्युद्धमभूद्भूयः सर्वलोकभयंकरम् ॥ 11 ॥
दिव्यान्यस्त्राणि शतशो मुमुचे यान्यथाम्बिका ।
बभञ्ज तानि दैत्येन्द्रस्तत्प्रतीघातकर्तृभिः ॥ 12 ॥
मुक्तानि तेन चास्त्राणि दिव्यानि परमेश्वरी ।
बभञ्ज लीलयैवोग्रहुंकारोच्चारणादिभिः ॥ 13 ॥

ततः शरशतैर्देवीमाच्छादयत सोऽसुरः।
सापि तत्कुपिता देवी धनुश्चिच्छेद चेषुभिः ॥14॥
छिन्ने धनुषि दैत्येन्द्रस्तथा शक्तिमथाददे ।
चिच्छेद देवी चक्रेण तामप्यस्य करे स्थिताम् ॥15॥
ततः खड्गमुपादाय शतचन्द्रं च भानुमत् ।
अभ्यधावत्तदा देवीं दैत्यानामधिपेश्वरः ॥16॥
तस्यापतत एवाशु खड्गं चिच्छेद चण्डिका ।
धनुर्मुक्तैः शितैर्बाणैश्चर्म चार्ककरामलम् ॥17॥
हताश्वः स तदा दैत्यश्छिन्नधन्वा विसारथिः।
जग्राह मुद्गरं घोरमम्बिकानिधनोद्यतः ॥18॥
चिच्छेदापततस्तस्य मुद्गरं निशितैः शरैः।
तथापि सोऽभ्यधावत्तां मुष्टिमुद्यम्य वेगवान् ॥19॥
स मुष्टिं पातयामास हृदये दैत्यपुंगवः।
देव्यास्तं चापि सा देवी तलेनोरस्यताडयत् ॥20॥
तलप्रहाराभिहतो निपपात महीतले ।
स दैत्यराजः सहसा पुनरेव तथोत्थितः ॥21॥
उत्पत्य च प्रगृह्योच्चैर्देवीं गगनमास्थितः।
तत्रापि सा निराधारा युयुधे तेन चण्डिका ॥22॥
नियुद्धं खे तदा दैत्यश्चण्डिका च परस्परम् ।
चक्रतुः प्रथमं सिद्धमुनिविस्मयकारकम् ॥23॥
ततो नियुद्धं सुचिरं कृत्वा तेनाम्बिका सह ।
उत्पात्य भ्रामयामास चिक्षेप धरणीतले ॥24॥
स क्षिप्तो धरणीं प्राप्य मुष्टिमुद्यम्य वेगितः।
अभ्यधावत दुष्टात्मा चण्डिकानिधनेच्छया ॥25॥
तमायान्तं ततो देवी सर्वदैत्यजनेश्वरम् ।
जगत्यां पातयामास भित्त्वा शूलेन वक्षसि ॥26॥
स गतासुः पपातोर्व्यां देवीशूलाग्रविक्षतः।
चालयन् सकलां पृथ्वीं साब्धिद्वीपां सपर्वताम् ॥27॥
ततः प्रसन्नमखिलं हते तस्मिन् दुरात्मनि ।
जगत्स्वास्थ्यमतीवाप निर्मलं चाभवन्नभः ॥28॥
उत्पातमेघाः सोल्का ये प्रागासंस्ते शमं ययुः ।
सरितो मार्गवाहिन्यस्तथासंस्तत्र पातिते ॥29॥

ततो देवगणाः सर्वे हर्षनिर्भरमानसाः ।
बभूवुर्निहते तस्मिन् गन्धर्वा ललितं जगुः ॥ 30 ॥
अवादयंस्तथैवान्ये ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
ववुः पुण्यास्तथा वाताः सुप्रभोऽभूद्दिवाकरः ॥ 31 ॥
जज्वलुश्चाग्नयः शान्ताः शान्ता दिग्जनितस्वनाः ॥ॐ ॥ 32 ॥

इति श्री मार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
शुम्भवधो नाम दशमोऽध्यायः ॥ 10 ॥



एकादशोऽध्यायः

ध्यानम्

'ॐ' बालरविद्युतिमिन्दुकिरीटां तुंगकुचां नयनत्रययुक्ताम् ।
स्मेरमुखीं वरदांकुशपाशाभीतिकरां प्रभजे भुवनेशीम् ॥

'ॐ' ऋषिरुवाच ॥ 1 ॥

देव्या हते तत्र महासुरेन्द्रे
सेन्द्राः सुरा वह्निपुरोगमास्ताम् ।
कात्यायनीं तुष्टुवुरिष्टलाभाद्
विकाशिवक्त्राब्ज विकाशिताशाः ॥2॥
देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद
प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य ।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं
त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य ॥3॥
आधारभूता जगतस्त्वमेका
महीस्वरूपेण यतः स्थितासि ।
अपां स्वरूपस्थितया त्वयैत-
दाप्यायते कृत्स्नमलंघ्यवीर्ये ॥4॥
त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या
विश्वस्य बीजं परमासि माया ।
सम्मोहितं देवि समस्तमेतत्
त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः ॥5॥
विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु ।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्
का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः ॥6॥
सर्वभूता यदा देवी स्वर्गमुक्ति प्रदायिनी ।
त्वं स्तुता स्तुतये का वा भवन्तु परमोक्तयः ॥7॥
सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते ।
स्वर्गापवर्गदे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥8॥
कलाकाष्ठादिरूपेण परिणामप्रदायिनि ।
विश्वस्योपरतौ शक्ते नारायणि नमोऽस्तु ते ॥9॥

सर्वमंगलमांगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ 10॥
सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि ।
गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ 11 ॥
शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ 12॥
हंसयुक्तविमानस्थे ब्रह्माणीरूपधारिणि ।
कौशाम्भ:क्षरिके देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ 13॥
त्रिशूलचन्द्राहिधरे महावृषभवाहिनि ।
माहेश्वरीस्वरूपेण नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ 14॥
मयूरकुक्कुटवृते महाशक्तिधरेऽनघे ।
कौमारीरूपसंस्थाने नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ 15॥
शंखचक्रगदाशाङ्‌र्गगृहीतपरमायुधे ।
प्रसीद वैष्णवीरूपे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ 16॥
गृहीतोग्रमहाचक्रे दंष्ट्रोद्धृतवसुंधरे ।
वराहरूपिणि शिवे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ 17॥
नृसिंहरूपेणोग्रेण हन्तुं दैत्यान् कृतोद्यमे ।
त्रैलोक्यत्राणसहिते नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ 18॥
किरीटिनि महावज्रे सहस्रनयनोज्ज्वले ।
वृत्रप्राणहरे चैन्द्रि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ 19॥
शिवदूतीस्वरूपेण हतदैत्यमहाबले ।
घोररूपे महारावे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ 20॥
दंष्ट्राकरालवदने शिरोमालाविभूषणे।
चामुण्डे मुण्डमथने नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ 21॥
लक्ष्मि लज्जे महाविद्ये श्रद्धे पुष्टिस्वधे ध्रुवे।
महारात्रि महाऽविद्ये नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ 22॥
मेधे सरस्वति वरे भूति बाभ्रवि तामसि ।
नियते त्वं प्रसीदेशे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ 23॥
सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते ।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥ 24॥
एतत्ते वदनं सौम्यं लोचनत्रयभूषितम् ।
पातु न: सर्वभीतिभ्य: कात्यायनि नमोऽस्तु ते ॥ 25॥

ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम् ।
त्रिशूलं पातु नो भीतेर्भद्रकालि नमोऽस्तु ते ॥ 26 ॥
हिनस्ति दैत्यतेजांसि स्वनेनापूर्य या जगत् ।
सा घण्टा पातु नो देवि पापेभ्योऽनः सुतानिव ॥ 27 ॥
असुरासृग्वसापंकचर्चितस्ते करोज्ज्वलः ।
शुभाय खड्गो भवतु चण्डिके त्वां नता वयम् ॥ 28 ॥
रोगानशेषानपहंसि तुष्टा
रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान् ।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां
त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति ॥ 29 ॥
एतत्कृतं यत्कदनं त्वयाद्य
धर्मद्विषां देवि महासुराणाम् ।
रूपैरनेकैर्बहुधाऽऽत्ममूर्तिं
कृत्वाम्बिके तत्प्रकरोति कान्या ॥ 30 ॥
विद्यासु शास्त्रेषु विवेकदीपे-
ष्वाद्येषु वाक्येषु च का त्वदन्या।
ममत्वगर्तेऽतिमहान्धकारे
विभ्रामयत्येतदतीव विश्वम् ॥ 31 ॥
रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च नागा
यत्रारयो दस्युबलानि यत्र ।
दावानलो यत्र तथाब्धिमध्ये
तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वम् ॥ 32 ॥
विश्वेश्वरि त्वं परिपासि विश्वं
विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम् ।
विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति
विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः ॥ 33 ॥
देवि प्रसीद परिपालय नोऽरिभीते-
र्नित्यं यथासुरवधादधुनैव सद्यः।
पापानि सर्वजगतां प्रशमं नयाशु
उत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान् ॥ 34 ॥
प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि विश्वार्तिहारिणि ।
त्रैलोक्यवासिनामीड्ये लोकानां वरदा भव ॥ 35 ॥

देव्युवाच ॥ 36 ॥

वरदाहं सुरगणा वरं यन्मनसेच्छथ ।
तं वृणुध्वं प्रयच्छामि जगतामुपकारकम् ॥ 37 ॥

देवा ऊचुः ॥ 38 ॥

सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि।
एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम् ॥ 39 ॥

देव्युवाच ॥ 40 ॥

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते अष्टाविंशतिमे युगे।
शुम्भो निशुम्भश्चैवान्यावुत्पत्स्येते महासुरौ ॥ 41 ॥
नन्दगोपगृहे जाता यशोदागर्भसम्भवा ।
ततस्तौ नाशयिष्यामि विन्ध्याचलनिवासिनी ॥ 42 ॥
पुनरप्यतिरौद्रेण रूपेण पृथिवीतले ।
अवतीर्य हनिष्यामि वैप्रचित्तांस्तु दानवान् ॥ 43 ॥
भक्षयन्त्याश्च तानुग्रान् वैप्रचित्तान्महासुरान् ।
रक्ता दन्ता भविष्यन्ति दाडिमीकुसुमोपमाः ॥ 44 ॥
ततो मां देवताः स्वर्गे मर्त्यलोके च मानवाः ।
स्तुवन्तो व्याहरिष्यन्ति सततं रक्तदन्तिकाम् ॥ 45 ॥
भूयश्च शतवार्षिक्यामनावृष्ट्यामनम्भसि ।
मुनिभिः संस्तुता भूमौ सम्भविष्याम्ययोनिजा ॥ 46 ॥
ततः शतेन नेत्राणां निरीक्षिष्यामि यन्मुनीन् ।
कीर्तयिष्यन्ति मनुजाः शताक्षीमिति मां ततः ॥ 47 ॥
ततोऽहमखिलं लोकमात्मदेहसमुद्भवैः ।
भरिष्यामि सुराः शाकैरावृष्टेः प्राणधारकैः ॥ 48 ॥
शाकम्भरीति विख्यातिं तदा यास्याम्यहं भुवि ।
तत्रैव च वधिष्यामि दुर्गमाख्यं महासुरम् ॥ 49 ॥
दुर्गा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति ।
पुनश्चाहं यदा भीमं रूपं कृत्वा हिमाचले ॥ 50 ॥
रक्षांसि भक्षयिष्यामि मुनीनां त्राणकारणात् ।
तदा मां मुनयः सर्वे स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्तयः ॥ 51 ॥

भीमा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति ।
यदारुणाख्यस्त्रैलोक्ये महाबाधां करिष्यति ॥ 52 ॥
तदाहं भ्रामरं रूपं कृत्वाऽसंख्येयषट्पदम् ।
त्रैलोक्यस्य हितार्थाय वधिष्यामि महासुरम् ॥ 53 ॥
भ्रामरीति च मां लोकास्तदा स्तोष्यन्ति सर्वतः ।
इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति ॥ 54 ॥
तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम् ॥ ॐ ॥ 55 ॥

इति श्री मार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
देव्याः स्तुतिर्नामैकादशोऽध्यायः ॥ 11 ॥



द्वादशोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां
कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम् ।
हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं
बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे ॥

'ॐ' देव्युवाच ॥ 1 ॥

एभिः स्तवैश्च मां नित्यं स्तोष्यते यः समाहितः ।
तस्याहं सकलां बाधां नाशयिष्याम्यसंशयम् ॥ 2 ॥
मधुकैटभनाशं च महिषासुरघातनम् ।
कीर्तयिष्यन्ति ये तद्वद् वधं शुम्भनिशुम्भयोः ॥ 3 ॥
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां चैकचेतसः ।
श्रोष्यन्ति चैव ये भक्त्या मम माहात्म्यमुत्तमम् ॥ 4 ॥
न तेषां दुष्कृतं किंचिद् दुष्कृतोत्था न चापदः ।
भविष्यति न दारिद्र्यं न चैवेष्टवियोजनम् ॥ 5 ॥
शत्रुतो न भयं तस्य दस्युतो वा न राजतः ।
न शस्त्रानलतोयौघात्कदाचित्सम्भविष्यति ॥ 6 ॥
तस्मान्ममैतन्माहात्म्यं पठितव्यं समाहितैः ।
श्रोतव्यं च सदा भक्त्या परं स्वस्त्ययनं हि तत् ॥ 7 ॥
उपसर्गानशेषांस्तु महामारी समुद्भवान् ।
तथा त्रिविधमुत्पातं माहात्म्यं शमयेन्मम ॥ 8 ॥
यत्रैतत्पठ्यते सम्यङ्नित्यमायतने मम ।
सदा न तद्विमोक्ष्यामि सांनिध्यं तत्र मे स्थितम् ॥ 9 ॥
बलिप्रदाने पूजायामग्निकार्ये महोत्सवे ।
सर्वं ममैतच्चरितमुच्चार्यं श्राव्यमेव च ॥ 10 ॥
जानताऽजानता वापि बलिपूजां तथा कृताम् ।
प्रतीच्छिष्याम्यहं प्रीत्या वह्निहोमं तथा कृतम् ॥ 11 ॥
शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी ।
तस्यां ममैतन्माहात्म्यं श्रुत्वा भक्तिसमन्वितः ॥ 12 ॥
सर्वाबाधाविनिर्मुक्तो धनधान्यसुतान्वितः ।
मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः ॥ 13 ॥

श्रुत्वा ममैतन्माहात्म्यं तथा चोत्पत्तयः शुभाः।
पराक्रमं च युद्धेषु जायते निर्भयः पुमान् ॥ 14 ॥
रिपवः संक्षयं यान्ति कल्याणं चोपपद्यते।
नन्दते च कुलं पुंसां माहात्म्यं मम शृण्वताम् ॥ 15 ॥
शान्तिकर्मणि सर्वत्र तथा दुःस्वप्नदर्शने ।
ग्रहपीडासु चोग्रासु माहात्म्यं शृणुयान्मम ॥ 16 ॥
उपसर्गाः शमं यान्ति ग्रहपीडाश्च दारुणाः।
दुःस्वप्नं च नृभिर्दृष्टं सुस्वप्नमुपजायते ॥ 17 ॥
बालग्रहाभिभूतानां बालानां शान्तिकारकम् ।
संघातभेदे च नृणां मैत्रीकरणमुत्तमम् ॥ 18 ॥
दुर्वृत्तानामशेषाणां बलहानिकरं परम् ।
रक्षोभूतपिशाचानां पठनादेव नाशनम् ॥ 19 ॥
सर्वं ममैतन्माहात्म्यं मम सन्निधिकारकम् ।
पशुपुष्पार्घ्यधूपैश्च गन्धदीपैस्तथोत्तमैः ॥ 20 ॥
विप्राणां भोजनैर्होमैः प्रोक्षणीयैरहर्निशम् ।
अन्यैश्च विविधैर्भोगैः प्रदानैर्वत्सरेण या ॥ 21 ॥
प्रीतिर्मे क्रियते सास्मिन् सकृत्सुचरिते श्रुते ।
श्रुतं हरति पापानि तथाऽऽरोग्यं प्रयच्छति ॥ 22 ॥
रक्षां करोति भूतेभ्यो जन्मनां कीर्तनं मम ।
युद्धेषु चरितं यन्मे दुष्टदैत्यनिबर्हणम् ॥ 23 ॥
तस्मिञ्छ्रुते वैरिकृतं भयं पुंसां न जायते ।
युष्माभिः स्तुतयो याश्च याश्च ब्रह्मर्षिभिः कृताः ॥ 24 ॥
ब्रह्मणा च कृतास्तास्तु प्रयच्छन्ति शुभां मतिम् ।
अरण्ये प्रान्तरे वापि दावाग्निपरिवारितः ॥ 25 ॥
दस्युभिर्वा वृतः शून्ये गृहीतो वापि शत्रुभिः।
सिंहव्याघ्रानुयातो वा वने वा वनहस्तिभिः ॥ 26 ॥
राज्ञा क्रुद्धेन चाज्ञप्तो वध्यो बन्धगतोऽपि वा ।
आघूर्णितो वा वातेन स्थितः पोते महार्णवे ॥ 27 ॥
पतत्सु चापि शस्त्रेषु संग्रामे भृशदारुणे ।
सर्वाबाधासु घोरासु वेदनाभ्यर्दितोऽपि वा ॥ 28 ॥
स्मरन्ममैतच्चरितं नरो मुच्येत संकटात् ।
मम प्रभावात्सिंहाद्या दस्यवो वैरिणस्तथा ॥ 29 ॥
दूरादेव पलायन्ते स्मरतश्चरितं मम ॥ 30 ॥

ऋषिरुवाच ॥ 31 ॥

इत्युक्त्वा सा भगवती चण्डिका चण्डविक्रमा ॥ 32 ॥
पश्यतामेव देवानां तत्रैवान्तरधीयत ।
तेऽपि देवा निरातंका: स्वाधिकारान् यथा पुरा ॥ 33 ॥
यज्ञभागभुज: सर्वे चक्रुर्विनिहतारय: ।
दैत्याश्च देव्या निहते शुम्भे देवरिपौ युधि ॥ 34 ॥
जगद्विध्वंसिनि तस्मिन् महोग्रेऽतुलविक्रमे ।
निशुम्भे च महावीर्ये शेषा: पातालमाययु: ॥ 35 ॥
एवं भगवती देवी सा नित्यापि पुन: पुन: ।
सम्भूय कुरुते भूप जगत: परिपालनम् ॥ 36 ॥
तयैतन्मोह्यते विश्वं सैव विश्वं प्रसूयते ।
सा याचिता च विज्ञानं तुष्टा ऋद्धिं प्रयच्छति ॥ 37 ॥
व्याप्तं तयैतत्सकलं ब्रह्माण्डं मनुजेश्वर ।
महाकाल्या महाकाले महामारीस्वरूपया ॥ 38 ॥
सैव काले महामारी सैव सृष्टिर्भवत्यजा ।
स्थितिं करोति भूतानां सैव काले सनातनी ॥ 39 ॥
भवकाले नृणां सैव लक्ष्मीर्वृद्धिप्रदा गृहे ।
सैवाभावे तथाऽलक्ष्मीर्विनाशायोपजायते ॥ 40 ॥
स्तुता सम्पूजिता पुष्पैर्धूपगन्धादिभिस्तथा ।
ददाति वित्तं पुत्रांश्च मतिं धर्मे गतिं शुभाम् ॥ ॐ ॥ 41 ॥

इति श्री मार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
फलस्तुतिर्नाम द्वादशोऽध्याय: ॥ 12 ॥



त्रयोदशोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम् ।
पाशांकुशवराभीतीर्धारयन्तीं शिवां भजे ॥

'ॐ' ऋषिरुवाच ॥ 1 ॥

एतत्ते कथितं भूप देवीमाहात्म्यमुत्तमम् ।
एवं प्रभावा सा देवी ययेदं धार्यते जगत् ॥ 2 ॥
विद्या तथैव क्रियते भगवद्विष्णुमायया।
तया त्वमेष वैश्यश्च तथैवान्ये विवेकिनः ॥ 3 ॥
मोह्यन्ते मोहिताश्चैव मोहमेष्यन्ति चापरे ।
तामुपैहि महाराज शरणं परमेश्वरीम् ॥ 4 ॥
आराधिता सैव नृणां भोगस्वर्गापवर्गदा ॥ 5 ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ 6 ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा सुरथः स नराधिपः ॥ 7 ॥
प्रणिपत्य महाभागं तमृषिं शंसितव्रतम् ।
निर्विण्णोऽतिममत्वेन राज्यापहरणेन च ॥ 8 ॥
जगाम सद्यस्तपसे स च वैश्यो महामुने ।
संदर्शनार्थमम्बाया नदीपुलिनसंस्थितः ॥ 9 ॥
स च वैश्यस्तपस्तेपे देवीसूक्तं परं जपन् ।
तौ तस्मिन् पुलिने देव्याः कृत्वा मूर्तिं महीमयीम् ॥ 10 ॥
अर्हणां चक्रतुस्तस्याः पुष्पधूपाग्नितर्पणैः।
निराहारौ यताहारौ तन्मनस्कौ समाहितौ ॥ 11 ॥
ददतुस्तौ बलिं चैव निजगात्रासृगुक्षितम् ।
एवं समाराधयतोस्त्रिभिर्वर्षैर्यतात्मनोः ॥ 12 ॥
परितुष्टा जगद्धात्री प्रत्यक्षं प्राह चण्डिका ॥ 13 ॥

देव्युवाच ॥ 14 ॥

यत्प्रार्थ्यते त्वया भूप त्वया च कुलनन्दन ।
मत्तस्तत्प्राप्यतां सर्वं परितुष्टा ददामि तत् ॥ 15 ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ 16 ॥

ततो वव्रे नृपो राज्यमविभ्रंश्यन्यजन्मनि ।
अत्रैव च निजं राज्यं हतशत्रुबलं बलात् ॥ 17 ॥
सोऽपि वैश्यस्ततो ज्ञानं वव्रे निर्विण्णमानसः ।
ममेत्यहमिति प्राज्ञः संगविच्युतिकारकम् ॥ 18 ॥

देव्युवाच ॥ 19 ॥

स्वल्पैरहोभिर्नृपते स्वं राज्यं प्राप्स्यते भवान् ॥ 20 ॥
हत्वा रिपूनस्खलितं तव तत्र भविष्यति ॥ 21 ॥
मृतश्च भूयः सम्प्राप्य जन्म देवाद्विवस्वतः ॥22 ॥
सावर्णिको नाम मनुर्भवान् भुवि भविष्यति ॥ 23 ॥
वैश्यवर्य त्वया यश्च वरोऽस्मत्तोऽभिवाञ्छितः ॥ 24 ॥
तं प्रयच्छामि संसिद्ध्यै तव ज्ञानं भविष्यति ॥ 25 ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ 26 ॥

इति दत्त्वा तयोर्देवी यथाभिलषितं वरम् ॥ 27 ॥
बभूवान्तर्हिता सद्यो भक्त्या ताभ्यामभिष्टुता ।
एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः ॥ 28 ॥
सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः ॥ 29 ॥
एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः ।
सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः ॥ क्लीं ॐ ॥

इति श्री मार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
सुरथ-वैश्ययोर्वरप्रदानं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ 13 ॥



उपसंहारः

विनियोगः

श्रीगणपतिर्जयति। ॐ अस्य श्रीनवार्णमन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयः, गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि, श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः, ऐं बीजम्, ह्रीं शक्तिः, क्लीं कीलकम्, श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यासः

ब्रह्मविष्णुरुद्रऋषिभ्यो नमः, शिरसि। गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्छन्दोभ्यो नमः, मुखे। महाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीदेवताभ्यो नमः, हृदि। ऐं बीजाय नमः, गुह्ये। ह्रीं शक्तये नमः, पादयोः। क्लीं कीलकाय नमः, नाभौ।

'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे' ।

करन्यासः

ॐ ऐं अंगुष्ठाभ्यां नमः। ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः। ॐ क्लीं मध्यमाभ्यां नमः। ॐ चामुण्डायै अनामिकाभ्यां नमः। ॐ विच्चे कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

हृदयादिन्यासः

ॐ ऐं हृदयाय नमः। ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा। ॐ क्लीं शिखायै वषट्। ॐ चामुण्डायै कवचाय हुम्। ॐ विच्चे नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे अस्त्राय फट्।

अक्षरन्यासः

ॐ ऐं नमः, शिखायाम्। ॐ ह्रीं नमः, दक्षिणनेत्रे। ॐ क्लीं नमः, वामनेत्रे। ॐ चां नमः, दक्षिणकर्णे। ॐ मुं नमः, वामकर्णे। ॐ डां नमः, दक्षिणनासापुटे। ॐ यैं नमः, वामनासापुटे। ॐ विं नमः, मुखे। ॐ च्चें नमः, गुह्ये।

दिङ्न्यासः

ॐ ऐं प्राच्यै नमः। ॐ ऐं आग्नेय्यै नमः। ॐ ह्रीं दक्षिणायै नमः। ॐ ह्रीं नैर्ऋत्यै नमः। ॐ क्लीं प्रतीच्यै नमः। ॐ क्लीं वायव्यै नमः। ॐ चामुण्डायै उदीच्यै नमः। ॐ चामुण्डायै ऐशान्यै नमः। ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ऊर्ध्वायै नमः। ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे भूम्यै नमः।

ध्यानम्

खड्‌गं चक्रगदेषुचापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिर:
शंखं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वांगभूषावृताम् ।
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम् ॥ 1 ॥
अक्षस्रक्परशुं गदेषुकुलिशं पद्मं धनुष्कुण्डिकां ।
दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम् ।
शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तै: प्रसन्नाननां
सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम् ॥ 2 ॥
घण्टाशूलहलानि शंखमुसले चक्रं धनु: सायकं
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम् ।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम् ।। 3 ॥

'ऐं ह्रीं अक्षमालिकायै नम:' ।

ॐ मां माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि ।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ॥
ॐ अविघ्नं कुरु माले त्वं गृह्णामि दक्षिणे करे ।
जपकाले च सिद्ध्यर्थं प्रसीद मम सिद्धये ॥
ॐ अक्षमालाधिपतये सुसिद्धिं देहि देहि सर्वमन्त्रार्थसाधिनि
साधय साधय सर्वसिद्धिं परिकल्पय परिकल्पय मे स्वाहा।



न्यासः

गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादान्महेश्वरि ॥

करन्यासः

ॐ ह्रीं अंगुष्ठाभ्यां नमः। ॐ चं तर्जनीभ्यां नमः। ॐ डिं मध्यमाभ्यां नमः। ॐ कां अनामिकाभ्यां नमः। ॐ यैं कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ ह्रीं चण्डिकायै करतलकर-पृष्ठाभ्यां नमः।

हृदयादिन्यासः

ॐ खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा ।
शंखिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा ॥ हृदयाय नमः।
ॐ शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके ।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च ॥ शिरसे स्वाहा।
ॐ प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे ।
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ॥ शिखायै वषट्।
ॐ सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते ।
यानि चात्यर्थघोराणि तै रक्षास्मांस्तथा भुवम् ॥ कवचाय हुम्।
ॐ खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके ।
करपल्लवसंगीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः ॥ नेत्रत्रयाय वौषट्।
ॐ सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते ।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥ अस्त्राय फट्।

ध्यानम्

ॐ विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां
कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम् ।
हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं
बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे ॥

ऋग्वेदोक्तं देवीसूक्तम्

ॐ अहमित्यष्टर्चस्य सूक्तस्य वागाम्भृणी ऋषिः, सच्चित्सुखात्मकः सर्वगतः परमात्मा देवता, द्वितीयाया ऋचो जगती, शिष्टानां त्रिष्टुप् छन्दः, देवीमाहात्म्यपाठे विनियोगः ।

ध्यानम्

ॐ सिंहस्था शशिशेखरा मरकतप्रख्यैश्चतुर्भिर्भुजैः
शंखं चक्रधनुःशरांश्च दधती नेत्रैस्त्रिभिः शोभिता ।
आमुक्तांगदहारकंकणरणत्कांचीरणन्नूपुरा
दुर्गा दुर्गतिहारिणी भवतु नो रत्नोल्लसत्कुण्डला ॥

देवीसूक्तम्

ॐ अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः ।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥ 1 ॥

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते ॥ 2 ॥

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्य्यावेशयन्तीम् ॥ 3 ॥

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः
प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम् ।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि
श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि ॥ 4 ॥

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं
देवेभिरुत मानुषेभिः ।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि
तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥ 5 ॥

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ॥ 6 ॥

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम
योनिरप्स्वन्तः समुद्रे।

ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वो-
तामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि ॥ 7 ॥
अहमेव वात इव प्रवाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा ।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना संबभूव ॥ 8 ॥



दुर्गाद्वात्रिंशन्नाममाला



ॐ दुर्गा दुर्गार्तिशमनी दुर्गापद्विनिवारिणी ।
दुर्गमच्छेदिनी दुर्गसाधिनी दुर्गनाशिनी ॥

दुर्गतोद्धारिणी दुर्गनिहन्त्री दुर्गमापहा ।
दुर्गमज्ञानदा दुर्गदैत्यलोकदवानला ॥

दुर्गमा दुर्गमालोका दुर्गमात्मस्वरूपिणी ।
दुर्गमार्गप्रदा दुर्गमविद्या दुर्गमाश्रिता ॥

दुर्गमज्ञानसंस्थाना दुर्गमध्यानभासिनी ।
दुर्गमोहा दुर्गमगा दुर्गमार्थस्वरूपिणी ॥

दुर्गमासुरसंहन्त्री दुर्गमायुधधारिणी ।
दुर्गमांगी दुर्गमता दुर्गम्या दुर्गमेश्वरी ॥

दुर्गभीमा दुर्गभामा दुर्गभा दुर्गदारिणी ।

श्री-महिषासुरमर्दिनी-स्तोत्रम्

अयि गिरिनन्दिनि नन्दितमेदिनि विश्वविनोदिनि नन्दिनुते
गिरिवरविन्ध्यशिरोऽधिनिवासिनि विष्णुविलासिनि जिष्णुनुते।
भगवति हे शितिकण्ठकुटुम्बिनि भूरिकुटुम्बिनि भूतिकृते
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥ 1 ॥

सुरवरवर्षिणि दुर्धरधर्षिणि दुर्मुखमर्षिणि हर्षरते
त्रिभुवनपोषिणि शंकरतोषिणि किल्विषमोषिणि घोषरते।
दनुजनिरोषिणि दितिसुतरोषिणि दुर्मदशोषिणि सिन्धुसुते
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥ 2 ॥

अयि जगदम्बमदम्ब कदम्बवनप्रियवासिनि हासरते
शिखरिशिरोमणितुंगहिमालयशृंगनिजालय मध्यगते।
मधुमधुरे मधुकैटभगंजिनि कैटभभंजिनि रासरते
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥ 3 ॥

अयि शतखण्ड विखण्डितरुण्ड वितुण्डितशुण्ड गजाधिपते
रिपुगजगण्ड विदारणचण्ड पराक्रमशौण्ड मृगाधिपते।
निजभुजदण्ड निपातितचण्डविपातितमुण्डभटाधिपते
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥ 4 ॥

अयिरणदुर्मद शत्रुवधोदित दुर्धरनिर्जर शक्तिभृते
चतुरविचारधुरीणमहाशिव दूतकृत्त प्रमथाधिपते।
दुरितदुरीह दुराशयदुर्मति दानवदूतकृतान्तमते
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥ 5 ॥

अयि शरणागतवैरिवधूवर वीरवराभयदायकरे
त्रिभुवन मस्तक शूलविरोधि शिरोऽधिकृतामल शूलकरे।
दुमिदुमितामर दुन्दुभिनाद मुहुर्मुखरीकृत दिङ्निकरे
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥ 6 ॥

अयि निजहुंकृतिमात्र निराकृत धूम्रविलोचन धूम्रशते
समरविशोषित शोणितबीज समुद्भवशोणित बीजलते।
शिव शिव शुम्भनिशुम्भमहाहव तर्पित भूत पिशाचरते
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥ 7 ॥

धनुरनुषंग रणक्षणसंग परिस्फुरदंग नटत्कटके
कनक पिशंगपृषत्कनिषंगरसद्भटशृंग हतावटुके।
कृतचतुरंग बलक्षितिरंग घटद्बहुरंग रटद्वटुके
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥8॥

जय जय जप्यजये जय शब्दपरस्तुति तत्पर विश्वनुते
झणझणझिञ्झिमि झिंकृतनूपुर शिंजितमोहित भूतपते।
नटितनटार्ध नटीनटनायक नाटितनाट्य सुगानरते
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥9॥

अयि सुमनः सुमनः सुमनः सुमनः सुमनोहर कान्तियुते
श्रितरजनी रजनी रजनी रजनी रजनीकर वक्त्रवृते।
सुनयनविभ्रमरभ्रमरभ्रमरभ्रमरभ्रमराधिपते
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥10॥

महितमहाहव वल्लभतल्लिक वल्लितरल्लित भल्लिरते
विरचितवल्लिक पल्लिकमल्लिक झिल्लिकभिल्लिक वर्गवृते।
श्रुतकृतफुल्ल समुल्लसितारुणतल्लजपल्लव सल्ललिते
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥11॥

अविरलगण्डगलन्मदमेदुर मत्तमतंगज राजपते
त्रिभुवनभूषणभूतकलानिधि रूपपयोनिधि राजसुते।
अयि सुदतीजन लालसमानस मोहनमन्मथ राजसुते
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥12॥

कमलदलामल कोमलकान्ति कलाकलितामल भाललते।
सकलविलास कलानिलयक्रम केलिचलत्कल हंसकुले।
अलिकुलसंकुल कुवलय मण्डल मौलिमिलद्वकुलालिकुले
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥13॥

करमुरलीरववीजितकूजित लज्जितकोकिल मंजुमते
मिलितपुलिन्द मनोहरगुंजित रंजितशैल निकुंजगते।
निजगणभूत महाशबरीगण रंगणसम्भृत केलिरते
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥14॥

कटितटपीत दुकूलविचित्र मयूखतिरस्कृत चण्डरुचे
प्रणतसुरासुर मौलिमणिस्फुरदंशुलसन्नख चन्द्ररुचे ।

जितकनकाचल मौलिमदोर्जित निर्भरकुञ्जर कुम्भकुचे
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥ 15 ॥

विजित सहस्रकरैक सहस्रकरैक सहस्रकरैकनुते
कृतसुरतारक संगरतारक संगरतारक सूनुसुते।
सुरथसमाधि समानसमाधि समाधिसमाधि सुजातरते
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥ 16 ॥

पदकमलं करुणानिलये वरिवस्यति योऽनुदिनं सु शिवे
अयि कमले कमलानिलये कमलानिलयः स कथं न भवेत्।
तव पदमेव परंपदमित्यनुशीलयतो मम किं न शिवे
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥ 17 ॥

कनकलसत्कल शीकजलैरनुषिञ्चति तेऽङ्गणरङ्गभुवम्
भजति स किं न शचीकुचकुंभ नटीपरिरम्भ सुखानुभवम्।
तवचरणं शरणं करवाणि मृडानि सदा मयि देहि शिवं
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥ 18 ॥

तव विमलेन्दुकलं वदनेन्दुमलं सकलं ननु कूलयते
किमु पुरुहूतपुरीन्दुमुखी सुमुखीभिरसौ विमुखीक्रियते।
मम तु मतं शिवनामधने भवती कृपया किमु न क्रियते
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥ 19 ॥

अयि मयि दीनदयालुतया कृपयैव त्वया भवितव्यमुमे
अयि जगतो जननि कृपयासि यथासि तथाऽनुमितासिरते।
यदुचितमत्र भवत्युररी कुरुतादुरुतापमपाकुरुते
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥ 20 ॥



अथ तन्त्रोक्तं देवीसूक्तम्

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥1॥
रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमो नमः ।
ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः ॥2॥
कल्याण्यै प्रणतां वृद्ध्यै सिद्ध्यै कुर्मो नमो नमः ।
नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमः ॥3॥
दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै ।
ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः ॥4॥
अतिसौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमो नमः ।
नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः ॥5॥
या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥6॥
या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥7॥
या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥8॥
या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥9॥
या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥10॥
या देवी सर्वभूतेषुच्छायारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥11॥
या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥12॥
या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥13॥
या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥14॥

या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ 15 ॥

या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ 16 ॥

या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ 17 ॥

या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ 18 ॥

या देवी सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥19॥

या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ 20 ॥

या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ 21 ॥

या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ 22 ॥

या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ 23 ॥

या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ 24 ॥

या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ 25 ॥

या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ 26 ॥

इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या ।
भूतेषु सततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नमः ॥ 27 ॥

चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद्व्याप्य स्थिता जगत् ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ 28 ॥

स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रया-
त्तथा सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता ।

करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी
शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः ॥ 29 ॥
या साम्प्रतं चोद्धतदैत्यतापितै-
रस्माभिरीशा च सुरैर्नमस्यते ।
या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः
सर्वापदो भक्तिविनम्रमूर्तिभिः ॥ 30 ॥

नवार्ण मंत्र जप

'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे'



अथ प्राधानिकं रहस्यम्

ॐ अस्य श्रीसप्तशतीरहस्यत्रयस्य नारायण ऋषिरनुष्टुप्छन्दः, महाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवता यथोक्तफलावाप्त्यर्थं जपे विनियोगः ।

राजोवाच

भगवन्नवतारा मे चण्डिकायास्त्वयोदिताः ।
एतेषां प्रकृतिं ब्रह्मन् प्रधानं वक्तुमर्हसि ॥1॥
आराध्यं यन्मया देव्याः स्वरूपं येन च द्विज।
विधिना ब्रूहि सकलं यथावत्प्रणतस्य मे ॥2॥

ऋषिरुवाच

इदं रहस्यं परममनाख्येयं प्रचक्षते ।
भक्तोऽसीति न मे किञ्चित्तवावाच्यं नराधिप ॥3॥
सर्वस्याद्या महालक्ष्मीस्त्रिगुणा परमेश्वरी।
लक्ष्यालक्ष्यस्वरूपा सा व्याप्य कृत्स्नं व्यवस्थिता ॥4॥
मातुलुंगं गदां खेटं पानपात्रं च बिभ्रती।
नागं लिंगं च योनिं च बिभ्रती नृप मूर्धनि ॥5॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभा तप्तकाञ्चनभूषणा।
शून्यं तदखिलं स्वेन पूरयामास तेजसा ॥6॥
शून्यं तदखिलं लोकं विलोक्य परमेश्वरी।
बभार परमं रूपं तमसा केवलेन हि ॥7॥
सा भिन्नाञ्जनसंकाशा दंष्ट्रांकितवरानना ।
विशाललोचना नारी बभूव तनुमध्यमा ॥8॥
खड्गपात्रशिरःखेटैरलंकृतचतुर्भुजा
कबन्धहारं शिरसा बिभ्राणा हि शिरःस्रजम् ॥9॥
सा प्रोवाच महालक्ष्मीं तामसी प्रमदोत्तमा ।
नाम कर्म च मे मातर्देहि तुभ्यं नमो नमः ॥10॥
तां प्रोवाच महालक्ष्मीस्तामसीं प्रमदोत्तमाम् ।
ददामि तव नामानि यानि कर्माणि तानि ते ॥11॥
महामाया महाकाली महामारी क्षुधा तृषा ।
निद्रा तृष्णा चैकवीरा कालरात्रिर्दुरत्यया ॥12॥

इमानि तव नामानि प्रतिपाद्यानि कर्मभिः।
एभिःकर्माणि ते ज्ञात्वा योऽधीते सोऽश्नुते सुखम् ॥ 13 ॥
तामित्युक्त्वा महालक्ष्मीः स्वरूपमपरं नृप ।
सत्त्वाख्येनातिशुद्धेन गुणेनेन्दुप्रभं दधौ ॥ 14 ॥
अक्षमालांकुशधरा वीणापुस्तकधारिणी ।
सा बभूव वरा नारी नामान्यस्यै च सा ददौ ॥ 15 ॥
महाविद्या महावाणी भारती वाक् सरस्वती ।
आर्या ब्राह्मी कामधेनुर्वेदगर्भा च धीश्वरी ॥ 16 ॥
अथोवाच महालक्ष्मीर्महाकालीं सरस्वतीम् ।
युवां जनयतां देव्यौ मिथुने स्वानुरूपतः ॥ 17 ॥
इत्युक्त्वा ते महालक्ष्मीः ससर्ज मिथुनं स्वयम् ।
हिरण्यगर्भौ रुचिरौ स्त्रीपुंसौ कमलासनौ ॥ 18 ॥
ब्रह्मन् विधे विरिञ्चेति धातरित्याह तं नरम् ।
श्री पद्मे कमले लक्ष्मीत्याह माता च तां स्त्रियम् ॥ 19 ॥
महाकाली भारती च मिथुने सृजतः सह ।
एतयोरपि रूपाणि नामानि च वदामि ते ॥ 20 ॥
नीलकण्ठं रक्तबाहुं श्वेतांगं चन्द्रशेखरम् ।
जनयामास पुरुषं महाकाली सितां स्त्रियम् ॥ 21 ॥
स रुद्रः शंकरः स्थाणुः कपर्दी च त्रिलोचनः ।
त्रयी विद्या कामधेनुः सा स्त्री भाषाक्षरा स्वरा ॥ 22 ॥
सरस्वती स्त्रियं गौरीं कृष्णं च पुरुषं नृप ।
जनयामास नामानि तयोरपि वदामि ते ॥ 23 ॥
विष्णुः कृष्णो हृषीकेशो वासुदेवो जनार्दनः।
उमा गौरी सती चण्डी सुन्दरी सुभगा शिवा ॥ 24 ॥
एवं युवतयः सद्यः पुरुषत्वं प्रपेदिरे ।
चक्षुष्मन्तो नु पश्यन्ति नेतरेऽतद्विदो जनाः ॥ 25 ॥
ब्रह्मणे प्रददौ पत्नीं महालक्ष्मीर्नृप त्रयीम् ।
रुद्राय गौरीं वरदां वासुदेवाय च श्रियम् ॥ 26 ॥
स्वरया सह सम्भूय विरिञ्चोऽण्डमजीजनत् ।
बिभेद भगवान् रुद्रस्तद् गौर्या सह वीर्यवान् ॥ 27 ॥
अण्डमध्ये प्रधानादि कार्यजातमभून्नृप।
महाभूतात्मकं सर्वं जगत्स्थावरजंगमम् ॥ 28 ॥

पुपोष पालयामास तल्लक्ष्म्या सह केशवः ।
संजहार जगत्सर्वं सह गौर्या महेश्वरः ॥29॥
महालक्ष्मीर्महाराज सर्वसत्त्वमयीश्वरी ।
निराकारा च साकारा सैव नानाभिधानभृत् ॥30॥
नामान्तरैर्निरूप्यैषा नाम्ना नान्येन केनचित् ॥ ॐ ॥31॥

इति प्राधानिकं रहस्यं सम्पूर्णम्



अथ वैकृतिकं रहस्यम्

ऋषिरुवाच

ॐ त्रिगुणा तामसी देवी सात्त्विकी या त्रिधोदिता ।
सा शर्वा चण्डिका दुर्गा भद्रा भगवतीर्यते ॥ 1 ॥
योगनिद्रा हरेरुक्ता महाकाली तमोगुणा।
मधुकैटभनाशार्थं यां तुष्टावाम्बुजासनः ॥ 2 ॥
दशवक्त्रा दशभुजा दशपादाञ्जनप्रभा।
विशालया राजमाना त्रिंशल्लोचनमालया ॥ 3 ॥
स्फुरद्दशनदंष्ट्रा सा भीमरूपापि भूमिप ।
रूपसौभाग्यकान्तीनां सा प्रतिष्ठा महाश्रियः ॥ 4 ॥
खड्गबाणगदाशूलचक्रशंखभुशुण्डिभृत् ।
परिघं कार्मुकं शीर्षं निश्च्योतद्रुधिरं दधौ ॥ 5 ॥
एषा सा वैष्णवी माया महाकाली दुरत्यया ।
आराधिता वशीकुर्यात् पूजाकर्तुश्चराचरम् ॥ 6 ॥
सर्वदेवशरीरेभ्यो याऽऽविर्भूतामितप्रभा।
त्रिगुणा सा महालक्ष्मीः साक्षान्महिषमर्दिनी ॥ 7 ॥
श्वेतानना नीलभुजा सुश्वेतस्तनमण्डला।
रक्तमध्या रक्तपादा नीलजंघोरुरुन्मदा ॥ 8 ॥
सुचित्रजघना चित्रमाल्याम्बरविभूषणा ।
चित्रानुलेपना कान्तिरूपसौभाग्यशालिनी ॥ 9 ॥
अष्टादशभुजा पूज्या सा सहस्रभुजा सती।
आयुधान्यत्र वक्ष्यन्ते दक्षिणाधःकरक्रमात् ॥ 10 ॥
अक्षमाला च कमलं बाणोऽसिः कुलिशं गदा ।
चक्रं त्रिशूलं परशुः शंखो घण्टा च पाशकः ॥ 11 ॥
शक्तिर्दण्डश्चर्म चापं पानपात्रं कमण्डलुः।
अलंकृतभुजामेभिरायुधैः कमलासनाम् ॥ 12 ॥
सर्वदेवमयीमीशां महालक्ष्मीमिमां नृप।
पूजयेत्सर्वलोकानां स देवानां प्रभुर्भवेत् ॥ 13 ॥
गौरीदेहात्समुद्भूता या सत्त्वैकगुणाश्रया ।
साक्षात्सरस्वती प्रोक्ता शुम्भासुरनिबर्हिणी ॥ 14 ॥

दधौ चाष्टभुजा बाणमुसले शूलचक्रभृत् ।
शंखं घण्टां लांगलं च कार्मुकं वसुधाधिप ॥ 15 ॥
एषा सम्पूजिता भक्त्या सर्वज्ञत्वं प्रयच्छति ।
निशुम्भमथिनी देवी शुम्भासुरनिबर्हिणी ॥ 16 ॥
इत्युक्तानि स्वरूपाणि मूर्तीनां तव पार्थिव ।
उपासनं जगन्मातुः पृथगासां निशामय ॥ 17 ॥
महालक्ष्मीर्यदा पूज्या महाकाली सरस्वती।
दक्षिणोत्तरयोः पूज्ये पृष्ठतो मिथुनत्रयम् ॥ 18 ॥
विरञ्चिः स्वरया मध्ये रुद्रो गौर्या च दक्षिणे ।
वामे लक्ष्म्या हृषीकेशः पुरतो देवतात्रयम् ॥ 19 ॥
अष्टादशभुजा मध्ये वामे चास्या दशानना ।
दक्षिणेऽष्टभुजा लक्ष्मीर्महतीति समर्चयेत् ॥ 20 ॥
अष्टादशभुजा चैषा यदा पूज्या नराधिप ।
दशानना चाष्टभुजा दक्षिणोत्तरयोस्तदा ॥ 21 ॥
कालमृत्यू च सम्पूज्यौ सर्वारिष्टप्रशान्तये।
यदा चाष्टभुजा पूज्या शुम्भासुरनिबर्हिणी ॥ 22 ॥
नवास्याः शक्तयः पूज्यास्तदा रुद्रविनायकौ।
नमो देव्या इति स्तोत्रैर्महालक्ष्मीं समर्चयेत् ॥ 23 ॥
अवतारत्रयार्चायां स्तोत्रमन्त्रास्तदाश्रयाः ।
अष्टादशभुजा चैषा पूज्या महिषमर्दिनी ॥ 24 ॥
महालक्ष्मीर्महाकाली सैव प्रोक्ता सरस्वती ।
ईश्वरी पुण्यपापानां सर्वलोकमहेश्वरी ॥ 25 ॥
महिषान्तकरी येन पूजिता स जगत्प्रभुः।
पूजयेज्जगतां धात्रीं चण्डिकां भक्तवत्सलाम् ॥ 26 ॥
अर्घ्यादिभिरलंकारैर्गन्धपुष्पैस्तथाक्षतैः
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्नानाभक्ष्यसमन्वितैः ॥ 27 ॥
रुधिराक्तेन बलिना मांसेन सुरया नृप।
(बलिमांसादिपूजेयं विप्रवर्ज्या मयेरिता ॥
तेषां किल सुरामांसैर्नोक्ता पूजा नृप क्वचित् ।)
प्रणामाचमनीयेन चन्दनेन सुगन्धिना ॥ 28 ॥
सकर्पूरैश्च ताम्बूलैर्भक्तिभावसमन्वितैः।
वामभागेऽग्रतो देव्याश्छिन्नशीर्षं महासुरम् ॥ 29 ॥
पूजयेन्महिषं येन प्राप्तं सायुज्यमीशया।

दक्षिणे पुरत: सिंहं समग्रं धर्ममीश्वरम् ॥30॥
वाहनं पूजयेद्देव्या धृतं येन चराचरम् ।
कुर्याच्च स्तवनं धीमांस्तस्या एकाग्रमानस: ॥31॥
तत: कृताञ्जलिर्भूत्वा स्तुवीत चरितैरिमै: ।
एकेन वा मध्यमेन नैकेनेतरयोरिह ॥32॥
चरितार्धं तु न जपेज्जपञ्छिद्रमवाप्नुयात् ।
प्रदक्षिणानमस्कारान् कृत्वा मूर्ध्नि कृताञ्जलि: ॥33॥
क्षमापयेज्जगद्धात्रीं मुहुर्मुहुरतन्द्रित: ।
प्रतिश्लोकं च जुहुयात्पायसं तिलसर्पिषा ॥34॥
जुहुयात्स्तोत्रमन्त्रैर्वा चण्डिकायै शुभं हवि: ।
भूयो नामपदैर्देवीं पूजयेत्सुसमाहित: ॥35॥
प्रयत: प्राञ्जलि: प्रह्व: प्रणम्यारोप्य चात्मनि ।
सुचिरं भावयेदीशां चण्डिकां तन्मयो भवेत् ॥36॥
एवं य: पूजयेद्भक्त्या प्रत्यहं परमेश्वरीम् ।
भुक्त्वा भोगान् यथाकामं देवीसायुज्यमाप्नुयात् ॥37॥
यो न पूजयते नित्यं चण्डिकां भक्तवत्सलाम् ।
भस्मीकृत्यास्य पुण्यानि निर्दहेत्परमेश्वरी ॥38॥
तस्मात्पूजय भूपाल सर्वलोकमहेश्वरीम् ।
यथोक्तेन विधानेन चण्डिकां सुखमाप्स्यसि ॥39॥

इति वैकृतिकं रहस्यं सम्पूर्णम्



अथ मूर्तिरहस्यम्

ऋषिरुवाच

ॐ नन्दा भगवती नाम या भविष्यति नन्दजा।
स्तुता सा पूजिता भक्त्या वशीकुर्याज्जगत्त्रयम् ॥ 1 ॥
कनकोत्तमकान्ति: सा सुकान्तिकनकाम्बरा ।
देवी कनकवर्णाभा कनकोत्तमभूषणा ॥ 2 ॥
कमलांकुशपाशाब्जैरलंकृतचतुर्भुजा
इन्दिरा कमला लक्ष्मी: सा श्री रुक्माम्बुजासना ॥ 3 ॥
या रक्तदन्तिका नाम देवी प्रोक्ता मयानघ ।
तस्या: स्वरूपं वक्ष्यामि शृणु सर्वभयापहम् ॥ 4 ॥
रक्ताम्बरा रक्तवर्णा रक्तसर्वांगभूषणा ।
रक्तायुधा रक्तनेत्रा रक्तकेशातिभीषणा ॥ 5 ॥
रक्ततीक्ष्णनखा रक्तदशना रक्तदन्तिका ।
पतिं नारीवानुरक्ता देवी भक्तं भजेज्जनम् ॥ 6 ॥
वसुधेव विशाला सा सुमेरुयुगलस्तनी ।
दीर्घौ लम्बावतिस्थूलौ तावतीव मनोहरौ ।। 7 ॥
कर्कशावतिकान्तौ तौ सर्वानन्दपयोनिधी।
भक्तान् सम्पाययेद्देवी सर्वकामदुघौ स्तनौ ॥ 8 ॥
खड्गं पात्रं च मुसलं लांगलं च बिभर्ति सा ।
आख्याता रक्तचामुण्डा देवी योगेश्वरीति च ॥ 9 ॥
अनया व्याप्तमखिलं जगत्स्थावरजंगमम् ।
इमां य: पूजयेद्भक्त्या स व्याप्नोति चराचरम् ॥ 10 ॥
(भुक्त्वा भोगान् यथाकामं देवीसायुज्यमाप्नुयात् ।)
अधीते य इमं नित्यं रक्तदन्त्या वपु:स्तवम् ।
तं सा परिचरेद्देवी पतिं प्रियमिवांगना ॥ 11 ॥
शाकम्भरी नीलवर्णा नीलोत्पलविलोचना ।
गम्भीरनाभिस्त्रिवलीविभूषिततनूदरी ॥ 12 ॥
सुकर्कशसमोतुंगवृत्तपीनघनस्तनी।
मुष्टिं शिलीमुखापूर्णं कमलं कमलालया ॥ 13 ॥
पुष्पपल्लवमूलादिफलाढ्यं शाकसञ्चयम् ।
काम्यानन्तरसैर्युक्तं क्षुत्तृण्मृत्युभयापहम् ॥ 14 ॥

कार्मुकं च स्फुरत्कान्ति बिभ्रती परमेश्वरी ।
शाकम्भरी शताक्षी सा सैव दुर्गा प्रकीर्तिता ॥ 15 ॥
विशोका दुष्टदमनी शमनी दुरितापदाम् ।
उमा गौरी सती चण्डी कालिका सा च पार्वती ॥ 16 ॥
शाकम्भरीं स्तुवन् ध्यायञ्जपन् सम्पूजयन्नमन् ।
अक्षय्यमश्नुते शीघ्रमन्नपानामृतं फलम् ॥ 17 ॥
भीमापि नीलवर्णा सा दंष्ट्रादशनभासुरा ।
विशाललोचना नारी वृत्तपीनपयोधरा ॥ 18 ॥
चन्द्रहासं च डमरुं शिरः पात्रं च बिभ्रती।
एकवीरा कालरात्रिः सैवोक्ता कामदा स्तुता ॥ 19 ॥
तेजोमण्डलदुर्धर्षा भ्रामरी चित्रकान्तिभृत् ।
चित्रानुलेपना देवी चित्राभरणभूषिता ॥ 20 ॥
चित्रभ्रमरपाणिः सा महामारीति गीयते ।
इत्येता मूर्तयो देव्या याः ख्याता वसुधाधिप ॥ 21 ॥
जगन्मातुश्चण्डिकायाः कीर्तिताः कामधेनवः ।
इदं रहस्यं परमं न वाच्यं कस्यचित्त्वया ॥ 22 ॥
व्याख्यानं दिव्यमूर्तीनामभीष्टफलदायकम् ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन देवीं जप निरन्तरम् ॥ 23 ॥
सप्तजन्मार्जितैर्घोरैर्ब्रह्महत्यासमैरपि ।
पाठमात्रेण मन्त्राणां मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ 24 ॥
देव्या ध्यानं मया ख्यातं गुह्याद् गुह्यतरं महत् ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सर्वकामफलप्रदम् ॥ 25 ॥
(एतस्यास्त्वं प्रसादेन सर्वमान्यो भविष्यसि ।
सर्वरूपमयी देवी सर्वं देवीमयं जगत् ।
अतोऽहं विश्वरूपां तां नमामि परमेश्वरीम् ।)

इति मूर्तिरहस्यं सम्पूर्णम्



श्री अम्बाजी की आरती

जय अम्बे गौरी मैया जय श्यामागौरी ।
तुमको निशिदिन ध्यावत हरि ब्रह्मा शिव री ॥1॥ जय अम्बे॰
माँग सिंदूर विराजत टीको मृगमदको ।
उज्ज्वलसे दोउ नैना, चन्द्रवदन नीको ॥2॥ जय अम्बे॰
कनक समान कलेवर रक्ताम्बर राजै ।
रक्त-पुष्प गल माला, कण्ठनपर साजै ॥3॥ जय अम्बे॰
केहरि वाहन राजत, खड्ग खपर धारी ।
सुर-नर-मुनि-जन सेवत, तिनके दुखहारी ॥4॥ जय अम्बे॰
कानन कुण्डल शोभित, नासाग्रे मोती ।
कोटिक चंद्र दिवाकर सम राजत ज्योती ॥5॥ जय अम्बे॰
शुम्भ निशुम्भ विदारे, महिषासुर-घाती ।
धूम्रविलोचन नैना निशिदिन मदमाती ॥6॥ जय अम्बे॰
चण्ड मुण्ड संहारे, शोणितबीज हरे ।
मधु कैटभ दोउ मारे, सुर भयहीन करे ॥7॥ जय अम्बे॰
ब्रह्माणी, रुद्राणी तुम कमलारानी।
आगम-निगम-बखानी, तुम शिव पटरानी ॥8॥ जय अम्बे॰
चौंसठ योगिनि गावत, नृत्य करत भैरूँ।
बाजत ताल मृदंगा औ बाजत डमरू ॥9॥ जय अम्बे॰
तुम ही जग की माता, तुम ही हो भरता ।
भक्तन की दुःख हरता सुख सम्पति करता ॥10॥ जय अम्बे॰
भुजा चार अति शोभित, वर-मुद्रा धारी ।
मनवाञ्छित फल पावत, सेवत नर-नारी ॥11॥ जय अम्बे॰
कंचन थाल विराजत अगर कपुर बाती ।
(श्री) मालकेतु में राजत कोटिरतन ज्योती ॥12॥ जय अम्बे॰
(श्री) अम्बेजी की आरति जो कोइ नर गावै।
कहत शिवानंद स्वामी, सुख सम्पति पावै ॥13॥ जय अम्बे॰



मंत्र पुष्पाञ्जली

ॐ गणानां त्वा गणपति ँ हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्। ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिस्सीद सादनम्। ॐ हंस हंसाय विद्महे परमहंसाय धीमहि। तन्नो हंसः प्रचोदयात्। ॐ नमो हिरण्यबाहवे हिरण्यवर्णाय हिरण्यरूपाय हिरण्यपतये अम्बिकापतये उमापतये पशुपतये नमो नमः॥ ऋत ँ सत्यं परं ब्रह्म पुरुषं कृष्णपिंगलम्। ऊर्ध्व रेतं विरूपाक्षं विश्वरूपाय वै नमो नमः॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

ॐ अम्बेऽअम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन। ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम्। ॐ राजाधिराजाय प्रसह्य साहिने नमो वयं वैश्रवणाय कुर्महे॥ स मे कामान्कामकामाय मह्यं कामेश्वरो वैश्रवणो ददातु॥ कुवेराय वैश्रवणायामहाराजाय नमः। ॐ स्वस्ति साम्राज्यं भौज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमेष्ठयं राज्यं महाराज्यमाधिप-त्यमयं समन्तपर्यायै स्यात् सार्व भौमस्सार्व्वायुषांतादापरार्धात् पृथिव्यैसमुद्रपर्यन्तायाऽए-कराडिति तदप्येषश्लोकोभिगीतो मरुतः परिवेष्टारोमरुत्तस्यावसन्गृहे॥ आवी क्षितस्य कामप्रेविश्वेदेवाः सभासद इति॥ ॐ व्विश्वतश्चक्षुरुतव्वि श्वतोमुखोव्विश्वतोव्वाहुरुत-व्विश्वतस्पात्॥ सम्बाहुभ्यान्धमतिसंपत त्रैर्द्यावाभूमीजनयन्देवऽएक॥

मंत्रपुष्पाञ्जलिं समर्पयामि।

प्रदक्षिणा

यानि कानि च पापानि ज्ञाताज्ञातकृतानि च।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति प्रदक्षिणपदे पदे ॥



श्रीदुर्गामानस-पूजा

उद्यच्चन्दनकुंकुमारुणपयोधाराभिराप्लावितां
नानानर्घ्यमणिप्रवालघटितां दत्तां गृहाणाम्बिके ।
आमृष्टां सुरसुन्दरीभिरभितो हस्ताम्बुजैर्भक्तितो
मातः सुन्दरि भक्तकल्पलतिके श्रीपादुकामादरात् ॥1॥
देवेन्द्रादिभिरर्चितं सुरगणैरादाय सिंहासनं
चञ्चत्काञ्चनसंचयाभिरचितं चारुप्रभाभास्वरम् ।
एतच्चम्पककेतकीपरिमलं तैलं महानिर्मलं
गन्धोद्वर्तनमादरेण तरुणीदत्तं गृहाणाम्बिके ॥2॥
पश्चाद्देवि गृहाण शम्भुगृहिणि श्रीसुन्दरि प्रायशो
गन्धद्रव्यसमूहनिर्भरतरं धात्रीफलं निर्मलम् ।
तत्केशान् परिशोध्य कंकतिकया मन्दाकिनीस्रोतसि
स्नात्वा प्रोज्ज्वलगन्धकं भवतु हे श्रीसुन्दरि त्वन्मुदे ॥3॥
सुराधिपतिकामिनीकरसरोजनालीधृतां
सचन्दनसकुंकुमागुरुभरेण विभ्राजिताम् ।
महापरिमलोज्ज्वलां सरसशुद्धकस्तूरिकां
गृहाण वरदायिनि त्रिपुरसुन्दरि श्रीप्रदे ॥4॥
गन्धर्वामरकिन्नरप्रियतमासंतानहस्ताम्बुज-
प्रस्तारैर्ध्रियमाणमुत्तमतरं काश्मीरजापिञ्जरम् ।
मातर्भास्वरभानुमण्डललसत्कान्तिप्रदानोज्ज्वलं
चैतन्निर्मलमातनोतु वसनं श्रीसुन्दरि त्वन्मुदम् ॥5॥
स्वर्णाकल्पितकुण्डले श्रुतियुगे हस्ताम्बुजेमुद्रिका
मध्ये सारसना नितम्बफलके मञ्जीरमङ्घ्रिद्वये ।
हारो वक्षसि कंकणौ क्वणरणत्कारौ करद्वन्द्वके
विन्यस्तं मुकुटं शिरस्यनुदिनं दत्तोन्मदं स्तूयताम् ॥6॥
ग्रीवायां धृतकान्तिकान्तपटलं ग्रैवेयकं सुन्दरं
सिन्दूरं विलसल्ललाटफलके सौन्दर्यमुद्राधरम् ।
राजत्कज्जलमुज्ज्वलोत्पलदलश्रीमोचने लोचने
तद्दिव्यौषधिनिर्मितं रचयतु श्रीशाम्भवि श्रीप्रदे ॥7॥
अमन्दतरमन्दरोन्मथितदुग्धसिन्धूद्भवं
निशाकरकरोपमं त्रिपुरसुन्दरि श्रीप्रदे ।

गृहाण मुखमीक्षितुं मुकुरबिम्बमाविद्रुमै-
विनिर्मितमघच्छिदे रतिकराम्बुजस्थायिनम् ॥8॥
कस्तूरीद्रवचन्दनागुरुसुधाधाराभिराप्लावितं
चञ्चच्चम्पकपाटलादिसुरभिद्रव्यैः सुगन्धीकृतम् ।
देवस्त्रीगणमस्तकस्थितमहारत्नादिकुम्भव्रजै-
रम्भः शाम्भवि संभ्रमेण विमलं दत्तं गृहाणाम्बिके ॥9॥
कह्लारोत्पलनागकेसरसरोजाख्यावलीमालती-
मल्लीकैरवकेतकादिकुसुमै रक्ताश्वमारादिभिः।
पुष्पैर्माल्यभरेण वै सुरभिणा नानारसस्रोतसा
ताम्राम्भोजनिवासिनीं भगवतीं श्रीचण्डिकां पूजये ॥10॥
मांसीगुग्गुलचन्दनागुरुरजः कर्पूरशैलेयजै-
र्माध्वीकैः सह कुंकुमैः सुरचितैः सर्पिर्भिरामिश्रितैः ।
सौरभ्यस्थितिमन्दिरे मणिमये पात्रे भवेत् प्रीतये
धूपोऽयं सुरकामिनीविरचितः श्रीचण्डिके त्वन्मुदे ॥11॥
घृतद्रवपरिस्फुरद्रुचिररत्नयष्ट्यान्वितो
महातिमिरनाशनः सुरनितम्बिनीनिर्मितः।
सुवर्णचषकस्थितः सघनसारवर्त्यान्वित-
स्तव त्रिपुरसुन्दरि स्फुरति देवि दीपो मुदे ॥12॥
जातीसौरभनिर्भरं रुचिकरं शाल्योदनं निर्मलं
युक्तं हिंगुमरीचजीरसुरभिद्रव्यान्वितैर्व्यञ्जनैः।
पक्वान्नेन सपायसेन मधुना दध्याज्यसम्मिश्रितं
नैवेद्यं सुरकामिनीविरचितं श्रीचण्डिके त्वन्मुदे ॥13॥
लवंगकलिकोज्ज्वलं बहुलनागवल्लीदलं
सजातिफलकोमलं सघनसारपूगीफलम् ।
सुधामधुरिमाकुलं रुचिररत्नपात्रस्थितं
गृहाण मुखपंकजे स्फुरितमम्ब ताम्बूलकम् ॥14॥
शरत्प्रभवचन्द्रमः स्फुरितचन्द्रिकासुन्दरं
गलत्सुरतरंगिणीललितमौक्तिकाडम्बरम्
गृहाण नवकाञ्चनप्रभवदण्डखण्डोज्ज्वलं
महात्रिपुरसुन्दरि प्रकटमातपत्रं महत् ॥15॥
मातस्त्वन्मुदमातनोतु सुभगस्त्रीभिः सदाऽऽन्दोलितं
शुभ्रं चामरमिन्दुकुन्दसदृशं प्रस्वेददुःखापहम् ।

सद्योऽगस्त्यवसिष्ठनारदशुकव्यासादिवाल्मीकिभिः
स्वे चित्ते क्रियमाण एव कुरुतां शर्माणि वेदध्वनिः ॥16॥
स्वर्गांगणे वेणुमृदंगशंखभेरीनिनादैरुपगीयमाना ।
कोलाहलैराकलिता तवास्तु विद्याधरीनृत्यकलासुखाय ॥17॥
देवि भक्तिरसभावितवृत्ते प्रीयतां यदि कुतोऽपि लभ्यते ।
तत्र लौल्यमपि सत्फलमेकं जन्मकोटिभिरपीह न लभ्यम् ॥18॥
एतैः षोडशभिः पद्यैरुपचारोपकल्पितैः ।
यः परां देवतां स्तौति स तेषां फलमाप्नुयात् ॥19॥



देवी-अपराध-क्षमापन-स्तोत्रम्

न मन्त्रं नो यन्त्रं तदपि च न जाने स्तुतिमहो
न चाह्वानं ध्यानं तदपि च न जाने स्तुतिकथा:।
न जाने मुद्रास्ते तदपि च न जाने विलपनं
परं जाने मातस्त्वदनुसरणं क्लेशहरणम् ॥1॥

विधेरज्ञानेन द्रविणविरहेणालसतया
विधेयाशक्यत्वात्तव चरणयोर्या च्युतिरभूत्।
तदेतत्क्षन्तव्यं जननि सकलोद्धारिणि शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥2॥

पृथिव्यां पुत्रास्ते जननि बहव: सन्ति सरला:
परं तेषां मध्ये विरलतरलोऽहं तव सुत:।
मदीयोऽयं त्याग: समुचितमिदं नो तव शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥3॥

जगन्मातर्मातस्तव चरणसेवा न रचिता
न वा दत्तं देवि द्रविणमपि भूयस्तव मया।
तथापि त्वं स्नेहं मयि निरुपमं यत्प्रकुरुषे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥4॥

परित्यक्ता देवा विविधविधिसेवाकुलतया
मया पञ्चाशीतेरधिकमपनीते तु वयसि।
इदानीं चेन्मातस्तव यदि कृपा नापि भविता
निरालम्बो लम्बोदरजननि कं यामि शरणम् ॥5॥

श्वपाको जल्पाको भवति मधुपाकोपमगिरा
निरातङ्को रङ्को विहरति चिरं कोटिकनकै:।
तवापर्णे कर्णे विशति मनुवर्णे फलमिदं
जन: को जानीते जननि जपनीयं जपविधौ ॥6॥

चिताभस्मालेपो गरलमशनं दिक्पटधरो
जटाधारी कण्ठे भुजगपतिहारी पशुपति:।
कपाली भूतेशो भजति जगदीशैकपदवीं
भवानि त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटीफलमिदम् ॥7॥

न मोक्षस्याकाङ्क्षा भवविभववाञ्छापि च न मे
न विज्ञानापेक्षा शशिमुखि सुखेच्छापि न पुनः।
अतस्त्वां संयाचे जननि जननं यातु मम वै
मृडानी रुद्राणी शिव शिव भवानीति जपतः ॥8॥
नाराधितासि विधिना विविधोपचारैः
किं रुक्षचिन्तनपरैर्न कृतं वचोभिः।
श्यामे त्वमेव यदि किञ्चन मय्यनाथे
धत्से कृपामुचितमम्ब परं तवैव ॥9॥
आपत्सु मग्नः स्मरणं त्वदीयं
करोमि दुर्गे करुणार्णवेशि।
नैतच्छठत्वं मम भावयेथाः
क्षुधातृषार्ता जननीं स्मरन्ति ॥10॥
जगदम्ब विचित्रमत्र किं
परिपूर्णा करुणास्ति चेन्मयि।
अपराधपरम्परापरं
न हि माता समुपेक्षते सुतम् ॥11॥
मत्समः पातकी नास्ति पापघ्नी त्वत्समा न हि।
एवं ज्ञात्वा महादेवि यथायोग्यं तथा कुरु ॥12॥

इति श्रीशंकराचार्यविरचितं देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रं सम्पूर्णम्



सिद्धकुञ्जिकास्तोत्रम्

शिव उवाच

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि कुञ्जिकास्तोत्रमुत्तमम् ।
येन मन्त्रप्रभावेण चण्डीजाप: शुभो भवेत् ॥ 1 ॥
न कवचं नार्गलास्तोत्रं कीलकं न रहस्यकम् ।
न सूक्तं नापि ध्यानं च न न्यासो न च वार्चनम् ॥ 2 ॥
कुञ्जिकापाठमात्रेण दुर्गापाठफलं लभेत् ।
अति गुह्यतरं देवि देवानामपि दुर्लभम् ॥ 3 ॥
गोपनीयं प्रयत्नेन स्वयोनिरिव पार्वति ।
मारणं मोहनं वश्यं स्तम्भनोच्चाटनादिकम् ।
पाठमात्रेण संसिद्ध्येत् कुञ्जिकास्तोत्रमुत्तमम् ॥ 4 ॥

अथ मन्त्रः

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ॥ ॐ ग्लौं हुं क्लीं जूं स:
ज्वालय ज्वालय ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल
ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ज्वल हं सं लं क्षं फट् स्वाहा
॥ इति मन्त्र: ॥

नमस्ते रुद्ररूपिण्यै नमस्ते मधुमर्दिनि।
नम: कैटभहारिण्यै नमस्ते महिषार्दिनि ॥ 1 ॥
नमस्ते शुम्भहन्त्र्यै च निशुम्भासुरघातिनि ॥ 2 ॥
जाग्रतं हि महादेवि जपं सिद्धं कुरुष्व मे ।
ऐंकारी सृष्टिरूपायै ह्रींकारी प्रतिपालिका ॥ 3 ॥
क्लींकारी कामरूपिण्यै बीजरूपे नमोऽस्तु ते ।
चामुण्डा चण्डघाती च यैकारी वरदायिनी ॥ 4 ॥
विच्चे चाभयदा नित्यं नमस्ते मन्त्ररूपिणि ॥5 ॥
धां धीं धूं धूर्जटे: पत्नी वां वीं वूं वागधीश्वरी ।
क्रां क्रीं क्रूं कालिका देवी शां शीं शूं मे शुभं कुरु ॥ 6 ॥
हुं हुं हुंकाररूपिण्यै जं जं जं जम्भनादिनी ।
भ्रां भ्रीं भ्रूं भैरवी भद्रे भवान्यै ते नमो नम: ॥ 7 ॥
अं कं चं टं तं पं यं शं वीं दुं ऐं वीं हं क्षं

धिजाग्रं धिजाग्रं त्रोटय त्रोटय दीप्तं कुरु कुरु स्वाहा ॥
पां पीं पूं पार्वती पूर्णा खां खीं खूं खेचरी तथा ॥ 8 ॥
सां सीं सूं सप्तशती देव्या मन्त्रसिद्धिं कुरुष्व मे ॥
इदं तु कुञ्जिकास्तोत्रं मन्त्रजागर्तिहेतवे ।
अभक्ते नैव दातव्यं गोपितं रक्ष पार्वति ॥
यस्तु कुञ्जिकया देवि हीनां सप्तशतीं पठेत् ।
न तस्य जायते सिद्धिररण्ये रोदनं यथा ॥

इति श्रीरुद्रयामले गौरीतन्त्रे शिवपार्वतीसंवादे कुञ्जिकास्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

॥ ॐ तत्सत् ॥



क्षमा-प्रार्थना

अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया ।
दासोऽयमिति मां मत्वा क्षमस्व परमेश्वरि ॥ 1 ॥
आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम् ।
पूजां चैव न जानामि क्षम्यतां परमेश्वरि ॥ 2 ॥
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वरि।
यत्पूजितं मया देवि परिपूर्णं तदस्तु मे ॥ 3 ॥
अपराधशतं कृत्वा जगदम्बेति चोच्चरेत् ।
यां गतिं समवाप्नोति न तां ब्रह्मादय: सुरा: ॥ 4 ॥
सापराधोऽस्मि शरणं प्राप्तस्त्वां जगदम्बिके ।
इदानीमनुकम्प्योऽहं यथेच्छसि तथा कुरु ॥ 5 ॥
अज्ञानाद्विस्मृतेर्भ्रान्त्या यन्न्यूनमधिकं कृतम् ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देवि प्रसीद परमेश्वरि ॥ 6 ॥
कामेश्वरि जगन्मात: सच्चिदानन्दविग्रहे।
गृहाणार्चामिमां प्रीत्या प्रसीद परमेश्वरि ॥ 7 ॥
गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादात्सुरेश्वरि ॥ 8 ॥

॥ श्री दुर्गार्पणमस्तु ॥



देवीमयी

तव च का किल न स्तुतिरम्बिके !
सकलशब्दमयी किल ते तनुः।
निखिलमूर्तिषु मे भवदन्वयो
मनसिजासु बहिःप्रसरासु च ॥

इति विचिन्त्य शिवे ! शमिताशिवे !
जगति जातमयत्नवशादिदम् ।
स्तुतिजपार्चनचिन्तनवर्जिता
न खलु काचन कालकलास्ति मे ॥



शान्ति पाठ

असतो मा सद्गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्माऽमृतं गमय।
सर्वेषां स्वस्तिर्भवतु।
सर्वेषां शान्तिर्भवतु।
सर्वेषां पूर्णं भवतु।
सर्वेषां मंगलं भवतु।
लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु।

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनात् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देव देव ।।

हरि ॐ तत्सत्





ब्रह्माण्डीय शक्ति मनुष्य शरीर में कुण्डलिनी और प्राण के रूप में अभिव्यक्त होती है। गतिशील प्राण-शक्ति का निश्चल आधार कुण्डलिनी है। कुण्डलिनी आदिशक्ति है, जो मूलाधार चक्र में प्रसुप्त, प्रच्छन्न अवस्था में पड़ी रहती है। सभी जैव और अजैव पदार्थों के आधार रूप में यह एक विद्युतशक्ति है, प्रचण्ड, गुप्त, शक्तिशाली आदिशक्ति है। इसकी आकृति कुण्डलिनी मारे सर्प के समान है। कुण्डलिनी एक प्रसुप्त आध्यात्मिक शक्ति है। कुण्डलिनी की जागृति और सहस्रार में उसके शिव से संयोग से समाधि की अवस्था प्राप्त होती है।

एक रहस्यमय शक्ति, एक रहस्यमय वाणी कदम-कदम पर तुम्हारा मार्गदर्शन करेगी। देवी माँ पर पूर्ण और अटल विश्वास रखो। वही साधकों को मार्गदर्शन देती है। उसकी कृपा के बिना अपने उत्थान की प्रक्रिया में तुम एक इंच भी आगे नहीं बढ़ सकते।

– स्वामी शिवानन्द

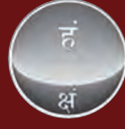
तन्त्र मातृशक्ति के प्रति समर्पण का शुद्ध विज्ञान है। तन्त्र में हम भगवान को मातृ-रूप में देखते हैं। भगवान को माँ ही होना चाहिए, क्योंकि माँ ही सृजन कर सकती है। वह गत्यात्मक शक्ति है। वही रक्षक भी है और संहारक भी। उसके ही आदेश से ग्रह-नक्षत्र, मानव और सारी सृष्टि चलती है।

– स्वामी सत्यानन्द

शिव की शक्ति को उनकी अर्द्धांगिनी, शक्ति, दुर्गा या काली के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। जैसे पति-पत्नी परिवार की सुख-सुविधाओं का ख्याल रखते हैं, उसी प्रकार शिव और शक्ति जगत् के कार्यों की देखभाल में लगे रहते हैं।

– स्वामी शिवानन्द


देवी



SATYANANDA YOGA
BIHAR YOGA

देवी पुस्तक में स्वामी शिवानन्द एवं स्वामी सत्यानन्द सरस्वती की शिक्षाओं से जगत् जननी, देवी माँ के विभिन्न रूपों, अभिव्यक्तियों तथा विश्व की विभिन्न परम्पराओं में देवी की अवधारणा का संकलन किया गया है। शक्ति की उपासना विश्व की एक सबसे प्राचीन और व्यापक परम्परा है। ईश्वर की कृपा प्राप्त करने के लिए देवी माँ की पूजा सबसे शक्तिशाली विधि है।

इस पुस्तक के अंत में सम्पूर्ण दुर्गा सप्तशती का मूल पाठ भी दिया गया है। दुर्गा सप्तशती में दृष्टान्त के माध्यम से मुक्ति के मार्ग में आने वाली मुख्य बाधाओं का वर्णन किया गया है। यदि हम सच्चे मन से देवी माँ की आराधना करें, तो हम उनकी कृपा से इन बाधाओं पर विजय प्राप्त कर सकते हैं।

'देवी का सम्बन्ध किसी धर्म, समूह या सम्प्रदाय से नहीं है। देवी भगवान की चैतन्य शक्ति है। देवी तथा इससे सम्बन्धित अन्य स्वरूप ईश्वर को मानव के ज्ञान और समझ की सीमा में लाने के लिए हैं।'

– स्वामी शिवानन्द



[bar code here]

ISBN : 978-81-86336-48-9